एक कदम आगे
सम्पादन : ममता कालिया
एक कदम आगे

शिक्षा विभाग राजस्था।

के लिय

सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बिस्सों का चौक, बीकानेर
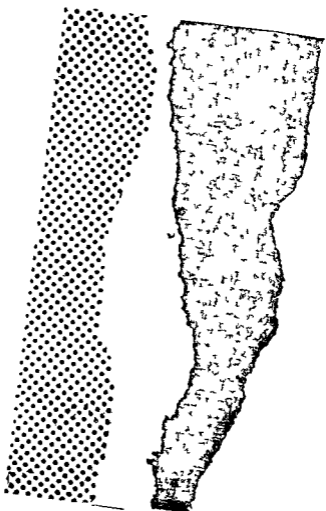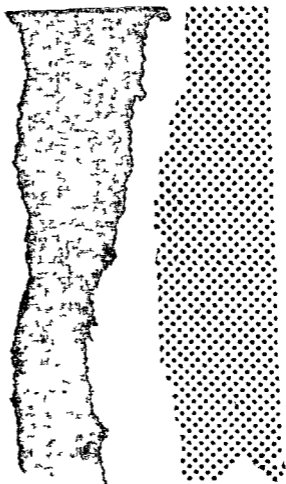
सम्पादन

ममता कालिया

आमुख

मेरे विचार मे अब विभाग की शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना का परिचय देने की आवश्यकता नही रही है। इस सुपरिचित योजना के अन्तर्गत प्रकाशित शिक्षक रचनाकारों की साहित्यिक कृतियो का सर्वत्र स्वागत हुआ है और देश की शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओ म इन प्रकाशनों की चर्चा हुई है। प्रसन्नता का विषय है कि साहित्य सृजन को गति देने मे राजस्थान ने अन्य राज्यों के समक्ष एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

योजना के प्रारम्भिक वर्षों मे प्रयत्न यह रहा कि शिक्षक साहित्यकारो की सर्जनात्मक प्रतिभा को प्रकाश मे लाया जाय। एक सीमा तक विभाग का यह प्रयास सफल रहा है। वस्तुत शिक्षक दिवस प्रकाशनो ने राज्य मे शिक्षक साहित्यकारो की एक पीढ़ी तैयार की है। राज्य के इन अग्रणी रचनाकारो न नई-नई विधाओ और शैलियो में नये-नये प्रयोग किये हैं और अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा को अभिव्यक्ति दी है। इनकी रचनाओ ने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान कायम की है। अब आवश्यकता यह है कि अधिकाधिक सख्या मे नये-नये लेखक इन प्रकाशनो से प्रेरित होकर अपनी लेखन प्रतिभा को विकसित करें।

शिक्षक दिवस प्रकाशनों को पल्लवित, पुष्पित करने में देश के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। समय समय पर हमारे अनुरोध पर इन प्रख्यात साहित्यकारों ने प्रकाशनों का सपादन-दायित्व वहन कर अकुरित होते रचनाकर्मियों का मार्ग प्रशस्त किया।

आज तक इस योजना के अन्तर्गत कुल इक्सठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। संख्यात्मक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस वर्ष के पाँच प्रकाशन और उनके संपादक हैं—

१ एक कदम आगे (कहानी संकलन) संपा० ममता कालिया
२ लगभग जीवन (कविता संकलन) संपा० लीलाधर जगूड़ी
३ जीवन यात्रा का कोनाज/न० ?
(निबंध संकलन) संपा० डॉ० जगदीश जोशी
४ कोरणी कलम री
(राजस्थानी संकलन) संपा० अन्नाराम सुदामा
५ यह किताब बच्चों की
(बाल साहित्य) संपा० डॉ० हरिकृष्ण देवसरे।

सम्पादकों को अपनी अपनी विधाओं में महारत हासिल है। इन यशस्वी सम्पादकों ने अल्पावधि में ही ढेर सारी रचनाओं में से चयन कर संपादन किया इसके लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। मुझे विश्वास है इनके द्वारा संपादित प्रकाशनों का पाठक स्वागत करेंगे।

बच्चों के लिए एक अलग पुस्तक प्रकाशित किया जाना इस वर्ष के प्रकाशनों की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। विश्वास है बच्चों को बाल वर्ष में अपने अध्यापकों की यह सौगात पसंद आयेगी।

मैं सभी रचनाकारों को, जिनकी रचनाएँ इन प्रकाशनों के लिए चुनी गई अथवा नहीं भी चुनी गई, बधाई देता हूँ क्योंकि सभी के सम्मिलित प्रयास से ही इन पुस्तकों का प्रकाशन संभव हो सका है। पुस्तकों के प्रकाशक का भी मैं आभारी हूँ।

अनिल बोर्दिया
निदेशक, प्राथमिक एवं माध्यमिक
शिक्षा राजस्थान, बीकानेर।

भूमिका के बहाने बातचीत

जब-जब कोई बात बहुत अच्छी या बहुत बुरी लगती है, तब-तब कहानी की शुरुआत होती है। जब जब कुछ अच्छा लग जाता है, मन सुमन बन जाता है, जब जब कुछ नागवार गुजरता है, मन में बड़ी भीषण भड़भड़ाहट उठती है जैसे पुल पर से रेल धड़धड़ाती निकल जाती है, जैसे घुटने पर रख कर सूखी लकड़ी तोड़ी जाती है, जैसे आँधी मे किवाड़ भड़भड़ाते उठते हैं···

इन कहानियों को पढ़कर मुझे बार-बार यही लगा कि जो स्थितियाँ / मन स्थितियां मुझे लिखने के लिए उकसाती हैं, वे ही, प्रस्तुत संकलन के मेरे लेखक मित्रों को उकसाती रही है। समस्त रचनाएं मैं एक बारगी पढ़ गई। दो चार रचनाओं को छोड़कर, सभी प्रकाशन के योग्य है, ऐसा मुझे लगा, पृष्ठ-संख्या का प्रतिबन्ध न होता तो यह संकलन इस वक्त दूना होता। इनमे अधिकांश नाम अपेक्षाकृत नए हैं—लीला शर्मा, अब्दुल मालिक खान, भगवतीप्रसाद गौतम, चुन्नीलाल भट्ट, निशान्त आदि। कुछ परिचित हस्ताक्षर भी हैं—सावित्री परमार, अरनी राबर्ट्स, सावर दइया, जनकराज पारीक। इन सबको पढ़ते हुए मुझे लगातार ऐसा महसूस होता रहा जैसे मैं ताजी, कच्ची, सौंधी मिट्टी के प्यालो को छू रही हूँ। जिन्दगी की अनगढ़ सच्चाइयाँ, औसत नौकरी-पेशा इन्सान का रोजमर्रा का संघर्ष, मँहगाई का मातम, अपनेपन का अवमूल्यन और इन सब के बीच वह संवेदनशील आदमी जो 'बिच्छू-बूटा'-सा किसी करवट चैन नहीं पा रहा, वह चीख उठने के लिए मजबूर है।

'आज हजारी काका भी नही है, कमू काकी भी नही हैं पर मुझे पत्नी के कथन के सन्दर्भ मे उन दोनो की याद गहरे तक साल गई है। कहाँ वे अनपढ किन्तु उदारमना गुजर दम्पति और कहाँ यह डिग्रीधारिणी तथाकथित सभ्य और सुसस्कृत परिवार से आई मेरी पत्नी ऋचा। और माया इसने पढी है उसमे प्यार व्यापार का ही पर्याय होता होगा, अन्यथा वह ऐसी बात कभी नही कहती। प्यार का व्याकरण ही कुछ दूसरा होता है, जो स्कूली किताबो मे नही मिलता।' स्वातन्त्र्योतर भारत मे भौतिक प्रगति की राह से जहाँ हम सचेत बनते गए हैं वहाँ नैतिक, भावनात्मक स्तर पर अचेत बनते गए हैं। यह और ऐसे अनेक कडवे सत्य इन कहानियों मे उद्घाटित हुए है।

सकलन के लिए आई सभी कहानियो का भावपक्ष बेहद सशक्त और शिल्प पक्ष अपेक्षाकृत अशक्त रहा। सवेदना के स्तर पर कही कोई न्यूनता अथवा पिछडापन नही मिला। इन रचनाकारो म भी जीवन के शाश्वत मूल्यो की पूरी पकड है, इन्हे भी सम्बन्धो मे आते शिथिल परायेपन के पिन उतनी ही शिद्दत से चुभते हैं। मुरलीधर शर्मा 'विमल' की कहानी 'अन्त्येष्टि' मे, पिता पुत्र से कहता है अपनी शादी तथा दो जामो के कर्ज के बकाया रुपये चुका दो, फिर चले जाना।' 'प्यार का व्याकरण' मे लेखक महसूस करता है कि 'शहर जाकर गाव का आदमी मौसम की तरह बदल जाता है।'

एक सफल रचना मात्र भाव नही, वरन् सही सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे उसकी भावाभिव्यक्ति होती है। इसके लिए जरूरत होती है पुराने दिग्गजो को आत्मसात् करने के साथ साथ समकालीन समर्थ लेखन के पठन-पाठन की। लिखना एक प्रकार का प्रशिक्षण होता है जो जितना माजा जाय उतना प्रखर बनता है। इस स्तर पर कई कहानियाँ फीकी पड गई। राजस्थान शासन को चाहिए कि सभी समकालीन साहित्यिक पत्रिकाए प्रदेश के दूरदराज जिलो मे भी उपलब्ध कराए। प्रेमचन्द, यशपाल, अज्ञेय, रेणु, उग्र, अमरकान्त, नागार्जुन जैसे कथाकारो के सग्रह प्रत्येक लायब्रेरी म उपलब्ध होने चाहिए। अच्छी कहानी लिखने के लिए अच्छी कहानिया पढनी चाहिये। अपनी खूबी और खामी की परख तभी हो

सकती है। साथ ही तात्कालिक समस्याओं के सन्दर्भ मे समकालीन दृष्टि भी अपेक्षित है। बिना समकालीन बोध के कोई भी रचना अपनी प्रासंगिकता स्थापित नही कर सकती। शिल्प के कच्चेपन के बावजूद श्रीमती लीला शर्मा की रचना 'राष्ट्रीय पशु' मे यह बोध लक्षित हुआ है

'थानेदार साहब', सरकार को चाहिए कि टाइगर की बजाय कुत्ते को राष्ट्रीय पशु घोषित कर दे।'

उस दिन पूरे चालीस डडे खाने के बाद भी कराहने की बजाय मैं सोच रहा था, 'काश हम गरीबो को राष्ट्रीय पशु घोषित कर दिया जावे।'

'गरीबी हटाओ' नारे की निरर्थकता, बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे तनावपूर्ण वर्ग-विषमता, और इस सबके ऊपर 'गरीब' जनता का यह तीखा आत्म-बोध, सब इस कहानी मे बडे पुरअसर तरीके से सप्रेषित हुआ है। लेखिका का यह कथन कितना सटीक है, 'हमे डर लगता है आसपास की कोठियों मे रहने वाले कुत्तो से। दिन भर वे बधे रहते हैं और उनके मालिक खुले। रात मे मालिक बध जाते हैं और कुत्ते खुले हो जाते हैं। ये कुत्ते चोरो पर कम और हम जैसे निशाचारो पर ज्यादा ध्यान देते हैं। शायद वे समझते हो कि उनके मालिकों को गरीबो से ज्यादा खतरा हो।' कुछ कुछ इसी तरह की चेतना अरनी रावर्ट्स की रचना 'आम आदमी' मे है

'अचानक दो डॉक्टर इस तरह प्रकट हुए वहाँ जैसे भक्तो को भगवान ने दर्शन दे दिया हो। लोगों के निराश चेहरो पर आशा की लकीरें दिखाई देने लगी। उनके चेम्बरों के आगे मरीज कतारबद्ध खडे हो गए। पत्नी से बीमार बच्ची लेकर वह भी लाइन मे लग गया। कोई एक घटे बाद उसका नम्बर आया। इस बीच बच्ची कई बार रो चुकी थी। शरीर बुरी तरह तप रहा था उसका। वह स्वय भी थक कर चूर हो चुका था। जैसे तैसे वह डॉक्टर तक पहुँचा। पान की पीक से भरे हुए मुँह से डॉक्टर ने पूछा, 'क्या है ?'

'बच्ची बीमार है' उसने सहमी हुई सी आवाज म कहा।

'हुआ क्या है ?' इस बार तेज आवाज में कहा डॉक्टर ने।

'बहुत तेज बुखार है, दो दिन से बुखार टूटा नहीं है।'

'हूँ', डॉक्टर ने हुँकार भरी और कागज पर कुछ लिखने लगा। वह चाहता था डॉक्टर बच्ची का मुआयना करे। साहस जुटा कर बोला, 'सा'ब' एक बार आप जाँच कर लेते तो ठीक रहता।' चीख पड़ा डॉक्टर 'मुझे आर्डर देता है वे·· बच्ची को देख नहीं रहा तो और क्या कर रहा हूँ—साले—तुम्हारे गुलाम हैं क्या ? चौबीस घंटे तुम्हारे कामों में ही लगे रहें। ऐसे ही लाट साहब बनने हो तो पैसा खर्च करो, कराओ इलाज।'

अधिकांश कहानियों में रचनाकारों ने निम्न वर्ग का संघर्ष, दर्द और मोहभंग चित्रित किया है। ये कहानियाँ भोगे हुए यथार्थ पर आधारित हैं। इनमें कुछ सशक्त बन पड़ी हैं जैसे लीला शर्मा, अरनी रॉबर्ट्स, सागर दइया, भगवतीलाल व्यास, निशान्त की रचनाएँ। माधव नागदा की कहानी 'जंगल का कायदा' अपनी आंचलिकता के कारण विशिष्ट रही। इसी प्रकार मजीदीमल सैनी की रचना 'इंटरव्यू' अपने चौंकाने वाले तत्व के बावजूद रोचक थी। ऐसी ही एक और कहीं अधिक गहरे तक कचोटने वाली रचना जनकराज पारीक की 'बिंदो की लाश' थी। उन्होंने बेहद सशक्त थीम पर कहानी लिखने का प्रयत्न किया। अस्तित्व का संघर्ष, एक दूसरे के मुँह से कौर छीनने की आपाधापी, समाज के निम्नतम वर्ग में फैले अमानवीय भ्रष्टाचार की कारुणिकता इस कहानी में बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त हुई।

'बैल के खड़े होते ही बिंदो का दिल बैठ गया।'

इससे अलग धरातल पर सम्बन्धों की विरूपता मुरलीधर शर्मा 'विमल' की कहानी 'अन्त्येष्टि' व भगवतीलाल शर्मा की कहानी 'सम्बन्ध में व्यक्त हुई है। पढ़ने वाला सोचता रह जाता है कि कौन सा आघात ज्यादा जानलेवा होता है, अर्थ का या मर्म का ?

बहुत व्यापक स्तर पर व्याप्त एक सामाजिक बुराई को भी कई कहानियों में चुनौती दी गई है। सत्यपालसिंह "दहेज का साँप' व

मीठालाल खत्री की 'एक और स्वरूप' दहेज की समस्या व उसका समाधान लेकर चली हैं। मेरा विचार है कि दहेज-विरोध का स्वर केवल नवोदित ही क्यों, प्रतिष्ठित कथाकारों में से भी उठना चाहिए, तभी बदलाव की पृष्ठभूमि तैयार हो सकेगी। साहित्य की सामाजिक जिम्मेदारी भी होती है। प्रेमचन्द अपने अन्तिम दिनों तक इन कुरीतियों के खिलाफ सृजनात्मक स्तर पर अपनी आवाज़ उठाते रहे थे।

प्रस्तुत कहानियों का संसार अपनी अतिपरिचितता के कारण कहीं कहीं सपाट फीका उबाऊ तो लगता है किन्तु बेजान नहीं। इसी दैनिकता के जूझते हुए, हमारा अध्यापक अपनी जिजीविषा ढूंढ निकालता है। उससे कहानी के नाम पर, हम किसी सनसनीखेज मसौदे की उम्मीद नहीं कर सकते। हां इतना जरूर है मेरे ये रचनाकार मित्र कहानी की शैली, भाषासौष्ठव और कसाव में कहीं ज्यादा तीखापन पैदा कर सकते हैं। इसके लिए सतत अभ्यास के साथ साथ उन्हें अधिकाधिक कहानियाँ पढ़ने का शौक भी डालना होगा। जो कहानियाँ इस संकलन में नहीं आ पाई हैं उनके लिए मुझे अफसोस और असन्तोष रहेगा। क्या ही अच्छा हो अगर राजस्थान शासन अगले वर्ष से कहानी के एक की जगह दो संकलन प्रकाशित करने की योजना बनाये। शिक्षक के अवसर पर उनका यह सृजनात्मक प्रयास बेहद अच्छा है, खास तौर पर तब, जब अन्य प्रदेशों में शिक्षक दिवस पर केवल कुछ छात्रों को शिक्षकों के लिए चन्दा बटोरने के अपमानजनक कार्य में लगाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया जाता है।

प्राचार्य,
महिला सेवा सदन डिग्री कॉलेज
इलाहाबाद।

—ममता कालिया

अनुक्रम

राष्ट्रीय पशु

□ लीला शर्मा

मेरा और उसका इतना ही सम्पर्क रहा है कि कभी-कभी रात में घर आने के लिए हम दोनों एक साथ गली में प्रवेश करते हैं। वह रात देर तक एक स्थानीय अखबार का सांध्य-संस्करण सड़कों पर बेचता फिरता है और मैं ट्यूशनें पढ़ाता फिरता हूं। अपनी गली में जब हम दोनों एक साथ घुसते हैं तो बड़ी खुशी होती है। वह मुझे अपना रक्षक समझता है और मैं उसे। रक्षा ? चोर डाकुओं से नहीं। हमारे पास ऐसा कुछ नहीं होता है जिसके लिये चोर-डाकू अपना समय बरबाद करें। हमें गली के शेरों से डर लगता है, बावजूद इसके कि हमारे *हाथ में लाठी होती है। लाठी तो होती है पर चलाने का अधिकार नहीं है।* क्योंकि कानून का राज है जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला नहीं है।

गली के कुत्ते हमें कुछ नहीं कहते हैं। उन्हें आपस में लड़ने से ही फुरसत नहीं मिलती। कभी-कभी हम दोनों निशाचरों को देखकर भौंक पड़ते हैं कि जब सब लोग सोये हुए हों तो शोर मचाने और आपस में झगड़ने का अधिकार केवल कुत्तों का होता है। तुम लोग अपनी टूटी जूतियों की पदचाप से हमारा ध्यान क्यों भंग करते हो। हमें डर लगता है आसपास की कोठियों में रहने वाले कुत्तों से। दिन भर वे बंधे रहते हैं और उनके मालिक खुले। रात में मालिक बंध जाते हैं और कुत्ते खुले हो जाते हैं। ये कुत्ते चोरों पर कम और हम जैसे निशाचरों पर ज्यादा ध्यान देते हैं। शायद वे समझते हों कि उनके मालिकों को गरीबों से ज्यादा खतरा हो।

आज दूसरी रात में भी मैं अकेला ही गली से गुजर रहा हूं। साथी या तो बीमार है या रोजगार ने घंटे बढ़ा दिये होंगे। तेजी से चलने और कोठियों

के कुत्तो के भय से पसीना-पसीना हो रहा हू । घर पहुच कर रजाई मे घुसने की बजाय हाफ्ता हुआ पसीना पोंछता हू ।

"कल रात को आपको किसी कुत्ते ने तो नही काट लिया था ?" पत्नी ने सवाल किया ।

"सिवाय एक कुतिया के किसी ने नही काटा मुझे आज तक । पर तुम क्यो पूछ रही हो ?"

'पहले बताइए आपने कुतिया किसे कहा ? मुझे ?"

"अरी भागवान तुम देवी हो । पाँच-पाँच देव सतानो की माँ हो । भला तुम्हे कुतिया कहूगा । वैसे यह गाली उस ही दी जाती है जिस पर, ज्यादा प्यार आये । तुम नाराज मत होना ।'

"कल ही तो आपने कहा था कि मैं तुम्हे सबस प्यारी लगती हू । आप मुझे "

"कल हम दोनो ही झूठ बोले थे । मुझे तुमसे ज्यादा प्यारी अपनी गरीबी है । न मैं और न यह कभी अलग होगे । तुम्हें भी तो मुझ से ज्यादा प्यार अपनी बीमारियो स है । बावजूद रोज दवाए लेने के तुमने अभी तक किसी भी बिमारी को अलविदा नहीं कहा है ।"

अस्पताल म मिलने वाली मुफ्त की दवाओ मे आज तक कोई ठीक हुआ है क्या ? एक साहब आये थे दिन म । पूछ रहे थे कि रात मे उनके कुत्ते ने मास्टरजी को काटा था क्या ? कुत्ता पागल तो नही है । पर हो सकता है अब हो जाये । बेचारे, खुद ही पैदल घूम-घूम कर पूछ रहे थे । हो सकता है, जिसको कुत्ते ने काटा हो उस मुआवजा देना चाहते हा ।"

मुझे रामलाल की याद आ गई । चाय की दूकान करता है । खुद पोस्ती है । दूकान पर ग्राहक भी ऐसे आत हैं जिन्हें डोडा-पोस्त का छिलका उबलवाना हो । उस एक बार चोट लग जाय तो महीना तक ठीक नही होती । अपने शरीर पर दो-तीन जगह पट्टिया बाधे एक बार वह तेज चल रही बस म बैठा था । बस दुर्घनाग्रस्त हो गई । रामलाल का कही खराच भी नही आई । बस मे बैठे चार मर गये और सैंतालीस घायल हो गये । रामलाल ने अपने शरीर पर जगह-जगह बधी पट्टिया खोल दी और चिल्लाने लगा । बस दुर्घटना मे मरने वाले के प्रत्येक के परिवार को एक हजार रुपये और घायलो को पाच-पाच सौ रुपये की सहायता राज्य सरकार ने दी । रामलाल न पूरे एक साल के पोस्त का इतजाम कर लिया । मैंने मन ही मन उसे कमीना कहा था ।

साहब के आने की बात सुनकर एक बार मेरे भी जी मे आई थी कि कह दू, हा आपके कुत्ते ने मुझे काटा है । लाओ दो क्या मुआवजा देते हो । पिंडली की यह चोट पेड पर चढकर सूखी लकडिया तोडते हुए नही आई थी ।

यहा आपके कुत्ते ने काटा था।

लेकिन पूरी योजना बनाने से पहले ही आत्मा ने मुझे गाली दे दी—कमीना। बडी बदतमीज और कायर है मेरी आत्मा। आज तक किसी दूसरे को इसने गाली नही निकाली। मुझे फौरन कह दिया—कमीना।

अपने से ही गाली खाकर सोचने की धारा दूसरी तरफ बह गई। कुत्ते ने मुझे नही काटा। किसी चोर के आने की खबर भी नही सुनी। कुत्ते ने जरूर उसे काटा होगा। उसे, जो लोगों को दुनिया भर की खबरें लाकर देता है। लेकिन उसे कुत्ते स ाटे जाने की खबर किसी ने न सुनी, न पढी। अगर वह कुत्ते को काट लेता तो ?

सुबह उठकर मैं सीधा उसके घर गया। वह लेटा हुआ था। मुझे देखकर अपनी फटी हुई चादर से दाहिनी टाग को ढकने की असफल कोशिश करने लगा।

"क्या, उस साहब के कुत्ते ने तुम्हें ही काटा था ?"

"हा, लेकिन किसी को पता नही चला," कहकर वह खिसियाता हुआ हँसा। फिर बोला, "तुम तो अपने ही आदमी लगते हो इसलिये तुम्हें बता दिया। किसी को बताना मत।"

"बडे बेवकूफ हो तुम ? मुझे पत्नी ने बताया कि वह साहब उस आदमी को ढूढता फिर रहा है जिसे उसके कुत्ते न काटा था। वह कुछ मुआवजा देना चाहता है।"

मेरी बात सुनकर वह जोर से हँसा। हँसने से उसे खासी आ गई। ढेर-सा बलगम थूकने के बाद बोला, "उस साहब के कुत्ते ने मुझे पिछले साल भी काटा था।"

"फिर साहब ने तुम्हें क्या दिया था ?"

"पूरे चालीस डडो का उपहार।"

उसने अपनी कहानी सुनाई। पिछले साल कुत्ते ने उसे काटा था। उसने कुत्ते को ढेला मारा। कुत्ता चिचियाया। साहब की आख खुल गई। बाहर भाग कर आये और कुत्ते को सहलाने लगे। कुत्ता चुप था पर साहब मुझ पर गुर्राये—तुम्हें सुबह देखूँगा।

दूसरे दिन पुलिस का सिपाही थानेदार के निमत्रण पर मुझे थाने मे ले गया। यह साहब भी वहा मौजूद थे।

मुझे देखते ही बोले, "हा हा यही है वह बदमाश जिसने मेरे मासूम कुत्ते की पिटाई की थी। पूरे चालीस रुपये खर्च हो गये मेरे, उसके इलाज पर।"

"पूरे चालीस रुपये ? ऐसी आपने उसे क्या दवाए दी ?" थानेदार ने पूछा।

'थानेदार साहब, दस रुपये की दवाए और पन सावर बीवी को दिये तब जाकर कुत्ते की तरफ से उसका जी टिका। तीस रुपये की वह बोतल आई है जो आपके पीछे रखी है।"

"अच्छा यह...अरे जमालुद्दीन ! इस बदमाश के पूरे चालीस डंडे लगा। कोठियों के कुत्ते बड़े नाजुक होते हैं। इस राक्षस के हत्थे वे चढ़ जायें तो उनमें क्या रहता होगा ?"

जमालुद्दीन मुझे मुआवजा देने लगा। थानेदार और वह साहब आपस में बतियाने लगे।

"आजकल कुत्तों के पिटने की शिकायतें कुछ ज्यादा ही आने लगी हैं। क्या किया जाये ?"

"थानेदार साहब, सरकार को चाहिए कि टाइगर की बजाय कुत्ते को राष्ट्रीय पशु घोषित कर दे।"

उस दिन पूरे चालीस डंडे खाने के बाद भी कराहने की बजाय मैं सोच रहा था। काश, हम गरीबों को राष्ट्रीय पशु घोषित कर दिया जाय।

उसकी कहानी सुनकर मैं भी सोच में पड़ गया।

"सुनो, तुम यह सोचकर ही क्यों रह गये ? कोशिश करो कि गरीबों को राष्ट्रीय पशु घोषित कर दिया जाय।"

"क्या आप भी हमारा साथ देंगे ?"

"अभी तो नहीं। अभी तो मुझे कइयों को पढ़ाना है। तुम कोशिश करो। अगर सफल होते दिखाई दो तो मुझे बताना। मैं भी तुम्हारे साथ शामिल हो जाऊँगा।"

"अगर असफल रहा तो आप साहब लोगों में शामिल हो जाओगे।"

"क्या बात करते हो तुम ? साहब लोग मुझे अपने में मिलाते ही कहां हैं।"

"साहब लोग आपको अपने में मिलाते नहीं हैं हमारे में आप मिलने के लिए तैयार नहीं हैं। जिधर सुविधा देखते हो उधर ही भागने की कोशिश करते हो। कब तक करोगे इस तरह ?'

लगता है यह आदमी अखबार बेचता ही नहीं, पढ़ता भी है। तभी तो बहकी-बहकी बातें कर रहा है।

नही, हर्गिज नही

□ सांवर दइया

करवट दर करवट !

सत्येन्द्र सारी रात बेचैन रहा। उसने सोने की भरपूर कोशिश की लेकिन नींद उसके साथ आंखमिचौनी-सी खेलती रही। जरा-सी देर के लिए उसकी आंख लगती। कुछ देर बाद वह चौंक उठता। उसकी आंखो के आगे दीपक का चेहरा तैरने लगता। फिर उसे यह अनुभव होता कि दीपक अब दीपक नही रहा। वह दीमक बन गया है ! उसका शरीर दीमक का ढेर है !

नही, नही ! वह दीपक की बात नही मान सकता। दीपक उसका मित्र है, लेकिन वह उसके हाथो बिका हुआ नही है। वह खिलौना नही कि चाबी भरते ही तालियां पीटने लगे !

सत्येन्द्र ने अपने जीवन मे कभी गलत कार्य न किए हो, ऐसा तो नही था। सम्बन्धो के दबाव म आकर उसने आटे मे नमक जितनी बेईमानी से किसी का भला करने तक की बात तो स्वीकार की थी, लेकिन किसी की जिद के लिए किसी का भी बुरा करने की स्थितियो से वह सदा टलता रहा। लोगो से सम्बन्ध भी बिगड़े, लेकिन उसने कभी परवाह नही की। तैरते हुए व्यक्ति के पांवो मे भारी पत्थर बांध देने के प्रस्ताव जब भी आये, वह उन्हें ठुकरा कर आगे बढ गया। मामूली सुविधाओ के लिए उसने कभी भी अपने भीतर की आवाज को दबाया नही। सत्येन्द्र जिन सुविधाओं को मामूली समझता था, उसके साथियो की दृष्टि में वे सुविधाए बड़ी होती थीं।

सत्येन्द्र ने निश्चय किया कि वह आज भी अपने भीतर मे उठ रही

आवाज भी दबने नहीं देगा। इस प्रसंग को लेकर उनके और दीपक के बीच दरार आती है तो आये।

सत्येन्द्र ने देखा कि सुबह होने वाली है।

जब सत्येन्द्र का ट्रांसफर यहाँ हुआ तब वह प्रसन्न हो उठा। उसने पिछले दो वर्ष उस उजाड़-से गाँव मे बड़ी मुश्किल से काटे थे। वे दो वर्ष यातना और ऊब से भरे हुए थे। ऊब का कारण था उस गाँव में अपने लायक साथी न मिलना। वहां लोगो की दुनिया का दायरा रोटी और औरत तक ही था। बाकी वहां क्या हो रहा है, इस बात से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। कुछ अध्यापक उसी गांव के थे। वे खेती और गाय-भैंस के धंधे मे व्यस्त रहते। वहां रहते हुए सत्येन्द्र अपने आप को उनके बीच मिसफिट महसूस करता रहता। सूरज ढलते ही कमरे मे घुस जाना पड़ता। खाना अपने हाथो से पकाना होता था। खाना खाकर बाहर निकलना सम्भव नही था। 'चौमासे' मे सांप, बिच्छू और 'आण्डी' का भय निरंतर बना रहता था।

सत्येन्द्र यहां ज्वाइन करने आया तो प्रसन्न था। यद्यपि यह स्थान शहर नहीं था। फिर भी वह सन्तुष्ट था। यह कस्बा काफी बड़ा था। सभी तरह की सुविधाएं उपलब्ध थी। खाने के लिए ढाबे भी थे। रहने-ठहरने को धर्मशालाएं थी। स्टेट लाइब्रेरी की ब्रांच थी।

सत्येन्द्र ने तीस रुपये महीने का कमरा लिया। इस धर्मशाला की ऊपरी मंजिल पर बने कमरे स्थायी रूप से किराये पर मिलते थे। वहां रहना सत्येन्द्र को सुविधा जनक लगा। स्कूल और बाजार सभी निकट थे वहां से। लाइब्रेरी भी बीस कदम के फासले पर थी।

लेकिन सत्येन्द्र को सप्ताह भर भी नही हुआ कि धर्मशाला छोड़नी पड़ी। उसका पुराना मित्र दीपक भी उसी विद्यालय मे था। जब सत्येन्द्र ने वहा ज्वाइन किया था तब दीपक किसी सेमिनार मे गया हुआ था। आते ही वह उसके गले लिपट गया। उसके आवास और भोजन की व्यवस्था के बारे मे पूछताछ की। चाय पीते हुए उसने सारी बातें दीपक को बतायी। दीपक ने नाराजगी से कहा—"सत्येन्द्र ! मेरे होते हुए तू धर्मशाला में ठहरे, यह अच्छा नहीं लगता। शाम को वहा से सामान उठा लाना। मेरे साथ रहना तुम।"

"लेकिन यार ! यह कोई पांच-सात दिन का काम तो है नही। जब यहा रहना ही है तब फिर अलग व्यवस्था करनी ही होगी...।"

'तू फैमिली लायेगा ?"

"नहीं ! अभी घरेलू स्थिति कुछ ठीक नही है। मा बीमार रहती है।

उन्हें दवा और सेवा दोनो की जरूरत है। यह सारी जिम्मेवारी मेरे पीछे तुम्हारी भाभी ने सम्भाल रखी है। लगता है साल-छ महीने तो उस वहीं रहना होगा। तब फिर क्या है! तू अकेला तो कहीं भी रह सकता है। और फिर मेरा मकान भी काफी बडा है। तेरे आने से मुझे कोई परेशानी नही होन वाली!"

"तू मेरी आदत तो जानता ही है। लगातार तेरा यह अहसान मैं वर्दाश्त नही कर सकूगा।"

"वह हिसाब होता रहेगा। लगता है तेरी इन आदतो और आदर्शों ने अभी तक पीछा नही छोडा है। लेकिन कोई बात नही! यहा तेरा कायाकल्प हो जायेगा।" कहकर दीपक ने ठहाका लगाया।

और उसी दिन सत्येन्द्र को वह अपने घर ले गया।

दीपक के घर की शान-शौकत देखकर सत्येन्द्र चकित-सा रह गया। उसने पूछा—"क्या बात है दीपक! कोई लॉटरी वॉटरी खुल गयी क्या?"

"लॉटरी तो नहीं खुली, हा, आँखें जरूर खुल गयी है!"

"मतलब आत्म-बोध हो गया?"

"आत्म-बोध ही समझ ले यार! पिछले कुछ वर्षों से लगातार यह अनुभव कर रहा हू कि इस दुनिया का दीन-धर्म सिर्फ पैसा है, पैसा। पैसा है तो इज्जत है।"

'तू अर्थ-दास कब से हो गया?" सत्येन्द्र ने हँसते हुए पूछा।

"मैं··?" दीपक ने ठहाका लगाया—"सिर्फ मैं ही नही, पूरी दुनिया अर्थदास है प्यारे! और जो पैसे का मूल्य नही समझते, वे पागल हैं!"

"लेकिन जिंदगी मे पैसा ही सब कुछ नहीं है!"

"यह बात किताबो म बहुत अच्छी लगती है। और तुम्हे जानकर प्रसन्न होना चाहिए कि पिछले वर्षों से तुम्हारे मित्र का विश्वास इन किताबी बातो से उठ गया है। हम स्कूल और कॉलेज लाइफ मे वे वाक्य सुनते थे ना, कि इफ मनी इज लॉस्ट, नथिंग इज लॉस्ट, इफ हेल्थ इज लॉस्ट, समथिंग इज लास्ट एण्ड इफ करेक्टर इज लॉस्ट, एवरीथिंग इज लॉस्ट! सब बकवास! साले जिन्दगी को देखते नही और सूक्तिया उगलते फिरते हैं।"

"तुम इन बातो को नही मानते?"

"मानता हू, लेकिन इन्हें अपने ढग से ठीक करके। अब मैं मानता हू कि इफ करेक्टर इज लॉस्ट, नथिंग इज लॉस्ट! बट इफ मनी इज लॉस्ट, एवरीथिंग इज लॉस्ट! हा तुम्हारी इफ हेल्थ इज लॉस्ट, समथिंग इज लॉस्ट, वाली बात उसी रूप म मानता हू। लेकिन प्यारे! यह हेल्थ भी बिना वेल्थ के नही बनती।"

"ये तुम्हारे विचार हैं। जरूरी नही मैं इनसे सहमत होऊँ।"

इसी बीच दीपक की पत्नी चाय ले आयी। दोनो चाय पीने लगे। दीपक ने कप रखते हुए कहा—बहरहाल मै तुम्हारे जैसे आदर्शवादी लोगो की कद्र करता हू। तुम दुनिया बदलना चाहते हो, यह अच्छी बात है। उसने एक ठहाका लगाया और फिर बोला—ससाली दुनिया वास्तव मे बदले या न बदले, लेकिन बातों से दुनिया बदल देने के सपने देखना…और उन सपनों के सहारे जीते रहना बुरा नही है।

"आज नही तो कल बदलेंगी।" सत्येन्द्र बोला।

"यह उम्मीद बुरी नही है। इसे सजोये रखो।' कहकर उसने एक ठहाका फिर लगाया थोड़ी देर बाद बोला—"अच्छा अब मैं ट्यूशन पढ़ाने जा रहा हू। तुम अपना सामान व्यवस्थित करो। रात मे फिर बातें करेंगे।"

"हा, अब तो बातें ही करेंगे!" सत्येन्द्र ने जरा व्यग्यात्मक मुद्रा म कहा। दीपक चला गया। सत्येन्द्र कमरे मे अपना सामान व्यवस्थित करने लगा।

दीपक के यहा रहते हुए लगभग एक महीना बीत गया।

सत्येन्द्र को दीपक की दिनचर्या अत्यधिक व्यस्त लगी। सुबह पाच बजे उठना और छ बजे तक तैयार होकर ट्यूशन पर निकल जाना। फिर सवा आठ तक घर पहुचना और फिर वहा दस बजे तक बीस-पच्चीस लडको का 'बैच' एक साथ निकालना। साढे दस से साढे चार तक स्कूल। फिर पाच बजे घर आकर चाय के साथ कुछ खा-पीकर फिर से ट्यूशन पर निकल जाना। रात को नौ बजे वापस लौटना। सुबह होते ही फिर वही दिनचर्या।

सत्येन्द्र ने अनुमान लगाया कि छ सात सौ रुपये प्रतिमाह तो दीपक सिर्फ ट्यूशन द्वारा ही कमा लेता है। उसकी पत्नी भी सर्विस मे है। वह हर महीने हजार रुपये बैंक मे जमा करवाता था। दीपक ब्याज का धधा भी करता था। कस्बे के गरीब लोग उससे उधार लेने आते थे। वह चार रुपये ब्याज लेता था। ब्याज की राशि रुपये देते समय ही काट लेता था। सौ रुपये लेने आया व्यक्ति छियानवे रुपये लेकर जाता।

शाम को स्कूल से लौटते समय दीपक ने सत्येन्द्र से कहा—"अब देख, हाफ इयरली एग्जाम आने वाले हैं। उसके बाद तुम्हें भी चार-पाच ट्यूशन दिलवा दूंगा।"

"मेरी रुचि कुछ कम ही है इस दिशा मे!"

"तुम्हें पैसे काटते हैं क्या?"

"मैं ट्यूशन को नासूर समझता हूं।" सत्येन्द्र बोला।

"मुझे तो तुम्ही पहले व्यक्ति मिले, जो यह कह रहे हो। लोग तो इस कस्बे में आते ही इसलिए हैं कि यहा ट्यूशन खूब हैं। वनियो की वस्ती है। इन सालो को जितना चूसा जाए, कम है।"

"और नही तो क्या! छ माही परीक्षा के बाद ही तो ट्यूशन का सीजन शुरू होता है।" साथ चल रहे शर्मा ने दीपक की बात का समर्थन किया।"

"अभी कितने ट्यूशन है, तुम्हारे ?" दीपक ने शर्मा से पूछा।

"दो सौ की ट्यूशन है। डेढ सौ का बैंच चलता है। हैं-हैं-हे! अगर छ माही की गणित की कापिया मेरे पास आ गयी तो फिर आगे चाँदी ही चाँदी है। साला को रगड कर रख दूगा। फिर अपने आप दौडे आयेंगे। तब बैंच का रंग जमेगा!"

"बैंच निकालने मे फायदा रहता है यार!" दीपक ने कहा।

सत्येन्द्र ने देखा सडक दो भागो में बट रही थी।

शर्मा बोला—"अच्छा यार, मैं चलता हू। इस समय पढाने जाना है। बहुत देर हो जायेगी।" शर्मा चला गया। कुछ देर बाद दीपक भी चला गया। सत्येन्द्र सोचता रहा कि यही स्कूल से छूटने के बाद अधिकाश अध्यापक इसी तरह दौडते-हाफते दिखायी देते हैं। ट्यूशन-दर-ट्यूशन। यहां से छूटकर वहा पहुचो। वहा से छूटकर फिर आगे···आगे और आगे! सबके बीच एक होड-सी कि कौन सबसे अधिक रुपयो की ट्यूशन करता है। स्टाफ रूम मे जब एक दूसरे की निन्दा-स्तुति चलती है, तब उन्ही प्रसगो मे सत्येन्द्र को जानने को मिला कि इन दिनो दीपक ही सबसे अधिक तेजी पर था। दूसरे अध्यापक भी अभी उसका "गोल्डन पीरियड" कबूल करते थे।

अर्द्ध वार्षिक परीक्षाए शुरू हो गयी।

सत्येन्द्र को लगा कि इन दिनो उसकी भी पूछ हो रही है। पता नही कैसे मालूम हुआ उन लोगों को कि उसके पास अग्रेजी की कापिया आयी हैं। आये दिन उसके पास कागज के पुर्जे आते, जिनमे दस-पन्द्रह विद्यार्थियो के परीक्षा क्रमाक होते। आजकल कोई न कोई अध्यापक किसी न किसी बहाने उसे होटल की तरफ खीच ले जाता। और फिर चाय नाश्ता करते हुए बातों ही बातो मे एक स्लिप उसकी ओर सरका देता—"सत्येन्द्र जी! सुना है इगलिश की कापिया आप जाँच रहे हैं" हें · ह···मे कुछ लडके अपने है। हें-हैं · जरा, इनका ध्यान रखना···अभी शुरू किये हैं "लडके पास होते रहते हैं तो इज्जत जमी रहती है "हैं हे" थोडा देख लेना आप!

सत्येन्द्र बिना कुछ कहे वह पुर्जा जेब मे रख लेता। उठते समय साथ वाला पूछता—आपके लडके हो तो कह दीजियेगा'''हम उन्हें निकाल देंगे। हें-हें'''इतना तो चलता ही है आपस मे। यही तो वक्त है जब हम एक दूसरे के काम आ सक्ते है। हें-हें।

''होगे तो जरूर कहूगा।'' कहने के बाद सत्येन्द्र सोचने लगा कि जिस प्रकार श्राद्ध पक्ष मे कौवों को सम्मान मिलता है, ठीक उसी प्रकार परीक्षा के दिनो मे अध्यापकों को भी सम्मान मिलने लगता है। छात्रों की छोडो, गली मोहल्ले के लोग भी—जिनके बच्चे पढ़ते हैं, सुविधा-असुविधा के बारे में पूछते नजर आते हैं। बाकी साल भर कोई नही पूछता कि मास्टर जी आपको कोई परेशानी तो नही है। यही हाल इन ट्यूशन पढाने वाले अध्यापकों का है। एक के बाद दूसरी ट्यूशन हथियाते चलेंगे, बिना इस बात की परवाह किये कि उसके लिए समय भी है या नहीं। एक घंटा पढाने के सत्तर-अस्सी रुपये होने चाहिए, मगर ये उसे बीस मे भी 'पकड' लेंगे। दीपक तर्क देता है—यार! इसमे अपना जाता ही क्या है? अपने बैंच म जहाँ पन्द्रह बैठते हैं, वहीं यह सोलहवा बैठ जाएगा। इसके बैठने से अपने बीस रुपये बढे ही, ऐसो को अलग समय तो देते नहीं हैं। बैंच की भीड मे क्या और कितना पल्ले पडता है छात्रों के, इससे अपने को कोई मतलब नही।''

''लेकिन यह अन्याय है।'' सत्येन्द्र कहता तो दीपक तपाक् से फिर बोल उठता—''ऐसा कर, तू इस पर एक शोध कर डाल कि जीवन के किन-किन क्षेत्रों मे कहाँ-कहाँ और कितना-कितना अन्याय हो रहा है। और कौन-कौन लोग कर रहे है? सच कहता हूँ, यह एक अद्वितीय कार्य होगा।'' फिर वह ठहाका लगाकर कहता—''अच्छा, अब मैं चलता हूँ अन्याय करने। रात को तेरे से एक खास बात करनी है।''

''तू भी अपने मुर्गों की लिस्ट दे रहा है क्या?'' सत्येन्द्र मजाक के मूड मे आ गया। उसकी तरफ आँख मार कर बोला—''लेकिन याद रखना बेटे! तेरे मुर्गों को मैं पास नही करूँगा।''

''मुझे पास नहीं करवाने! मै तो फेल करवाऊँगा।'' इतना कहकर दीपक चला गया।

रात को साढे नौ बजे दीपक लौटा। उस समय सत्येन्द्र कापियां जाँच रहा था। दीपक को वहाँ आया देखकर उसने पूछा—''हाँ, अब बता, क्या खास बात है?''

''चाय चलेगी?'' दीपक ने पूछा।

"चलेगी !" सत्येन्द्र ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—"हाँ, मैं भी तो सुनूं क्या है तेरी खास बात ?"

"ठहर भी। इतना बेताब क्यों हो रहा है ? तेरी हिम्मत देखने आया हूँ मैं।"

फिर दीपक पत्रिका के पन्ने उलटने लगा। चाय आ गयी। दोनों चाय पी चुके। दीपक बोला—"तेरे पास नवीं कक्षा की इगलिश की कापियाँ हैं ना ?"

"जिस बात का पता सारी दुनिया ने लगा लिया, वह तू अब पूछ रहा है ?"

सत्येन्द्र ने उसकी तरफ देखते हुए कहा—"मूर्ख स्साला !"

"तेरे जितना नहीं !" दीपक बोला—"खैर छोडो इसे। इसमें एक हजार बाइस रोल नम्बर वाले लड़के को अच्छी तरह रगड कर रखना है।" यहाँ अध्यापकों के बीच 'रगड कर रखना' शब्द जिस बात का प्रतीक था, उसे सत्येन्द्र भी समझ गया था। दीपक की बात सुनकर सत्येन्द्र को करेंट-सा छू गया। वह चौंक कर बोला—"आज तूने पी है क्या ?"

"मैं बिलकुल होश में हूँ।"

"तब फिर कैसी बातें कर रहा है ?'

"देख सत्येन्द्र ! इस साले को रगडना···और अच्छी तरह रगडना है। यह मेरी इज्जत का सवाल है। तुम्हें मेरी दोस्ती की सौगंध है !"

"देखो दीपक ! तुम बिना वजह सम्बन्ध बिगाड़ने वाली स्थितियाँ पैदा कर रहे हो। मैं तो इसे अब तक मजाक समझ रहा था। लेकिन तुम तो···।"

"हाँ सत्येन्द्र ! मैं चाहता हूँ यह लडका फेल हो। इस साले ने मुझे झांसा दिया। कहता था गुरुजी ! मैं आप से पढूंगा। अब हरामी ने उस रमेश से पढ़ना शुरू कर दिया। यह मेरी इन्सल्ट है ··मेरे साथ धोखा है !"

"यह तो उसकी मर्जी है। तुम्हें यह बात इस रूप में नहीं लेनी चाहिए।"

"सत्येन्द्र, तुम नहीं जानते। मैं पिछले आठ वर्षों से यहाँ जमा हुआ हूँ। जिसने भी मेरे साथ ऐसी हरकत की, वह हरामी तब तक पास नहीं हुआ, जब तक मेरे बैच में नहीं आया !" दीपक की साँसें तेजी से चलने लगीं—"मैं कहता हूँ, उसने मेरे से बात क्यों की ? जब बात की तो ट्यूशन शुरू क्यों नहीं की ? और फिर शुरू नहीं की तो कोई बात नहीं, वह हरामी रमेश के पास क्यों गया ? पिछले दो सालों से यह मेरे पास आता रहा है। इस बार वहाँ गया है तो उसे इसकी सजा भुगतनी पड़ेगी।"

"दीपक ! यह सर्वथा अनुचित है।"

"प्यार और युद्ध मे कुछ भी अनुचित नही होता।"

"लेकिन यह न तो प्यार का मामला है और न ही युद्ध का।"

"सत्येन्द्र, तू यहाँ नया है। तू नही जानता। यह युद्ध है युद्ध ! इस युद्ध म मुझे जीतना है। मैं जीतकर रहूँगा। तू समझता नही, आज एक लौंडा गया है, कल दस जायेंगे। उन दस के पीछे दूसरे दस हौंसला करेंगे ···। तू नही जानता, ट्यूशनका खेल इसी तरह तो चौपट होता है। यहाँ मेरे रहते वह पास नही हो सकता···।"

सत्येन्द्र ने आफ्त टालने के लिए कहा—"ऐसा है, अभी तुम सो जाओ। सुबह देखेंगे कि उसकी क्या स्थिति है ···।"

"तुम्हे मेरी यह बात माननी पडेगी सत्येन्द्र ! माननी पडेगी। यह मेरी इज्जत का सवाल है।"

सत्येन्द्र ने दीपक को उसके कमरे मे भेज दिया। वह लैम्प बुझाकर बिस्तर पर लेट गया।

करवट दर करवट !

सत्येन्द्र रात भर बेचैन रहा। उसकी आँखो के आगे बार-बार दीपक की आकृति तैरती रही। उसे लगने लगा कि दीपक अब नही रह गया है। वह दीपक से दीमक बन गया है। दीमक जो धीरे-धीरे लकडी को खोखला कर देती है ! एक दम कुछ भी पता नही चलता और लकडी खोखली होती रहती है। यहाँ इस कस्बे मे न जाने ऐसे कितने दीपक है जो दीमक बन चुके हैं। दीमक का यह ढेर चाट रहा है भावी पीढी को "शिक्षा मन्दिरो को··· भविष्य की रीढ को। निर्माण की आड मे हो रहा अदृश्य विध्वंस।

सत्येन्द्र ने यह कल्पना भी नही की थी कि व्यक्ति इस हद तक भी गिर सकता है। चार-छ अकों से फेल होने वाले विद्यार्थियो के लिए आयी सिफारिशें उसने स्वीकार की थी और उन्हे पास करता रहा था। किसी को ऑब्लाइज करने की दिशा मे उसने तीस-बत्तीस के तो छत्तीस कई बार किये थे, लेकिन छ के छत्तीस करने को कभी तैयार नही हुआ था। इसके लिए कई साथियो से थोडा बहुत तनाव भी रहा, लेकिन वह ऐसा हर तनाव झेल गया, अपने निश्चय से डिगा नही।

लेकिन आज की स्थिति बहुत विपरीत थी। यह अवसर पहली बार आया जब पास हो रहे लडके को फेल करने के लिए कहा गया था। वह भी अपने पुराने मित्र के द्वारा। दीपक इतना गिर जायेगा। ओफ्फ ! दीपक की

धारणा अनुचित है। वह जो करवाना चाहता है, सत्येन्द्र कभी नही करेगा। यह किसी भी कीमत पर नही हो सकता। उसके और दीपक के बीच दरार आती है तो आये। चाहे कुछ भी हो, वह ऐसा नही करेगा…हर्गिज नही करेगा।

सारी रात करवटें बदलता रहा सत्येन्द्र।

सुबह हुई।

सत्येन्द्र अपना सामान बांध चुका था। उसने धर्मशाला मे रहने का निश्चय कर लिया। दीपक ने उसे रोकना चाहा, जो कुछ रात को हुआ, उसे भूल जाने को भी कहा, लेकिन सत्येन्द्र ने उत्तर दिया—दीपक! तुम मेरे पुराने मित्र हो। लेकिन इन वर्षों के अन्तराल के बाद हमारे विचारो मे बहुत फर्क आ गया है। लगता है, अब हमारे रास्ते कभी एक नही हो सकेंगे।

दीपक ने मुस्कराने का प्रयास करते हुए कहा—मामूली बातो के लिए कभी दोस्ती को छोडा जाता है क्या?

सत्येन्द्र बोला—दीपक मैं किसी भी सम्बन्ध के दबाव मे आकर किसी के भविष्य को नष्ट नही कर सकता। थोडे गलत ढग से भी भला तो कर सकता हूँ, लेकिन किसी का बुरा हर्गिज नही करना चाहता।

और सत्येन्द्र वहां से चल पडा।

आम आदमी

□ ग्ररनी रॉबर्ट्स

उसने कभी सोचा ही नही था कि यह आम आदमी क्या होता है और इस आदमी का दर्द कैसा होता है। और हकीकत यह थी कि वह स्वय भी एक आम आदमी था। किसी प्राइमरी स्कूल में अध्यापक था वह। बँधी-बधाई तनखा और ढेर सी जिम्मेदारियों का बोझा। घर मे एक बीमार सी रहने वाली पत्नी और दो मरियल से बच्चे जिनमे से एक हमेशा बीमार रहता था और उसे अक्सर अस्पताल ले जाना पड़ता था। मकान उसका अपना जरूर था पर इस हद तक जर्जर हो चुका था कि कब ढह जाये इसका कुछ पता नही था। एक आशका सी सदैव उस मकान के साथ जुडी रहती थी।

उसे थोडा बहुत पढने-लिखने का शौक था। अपनी जेब 'एलाउ' नहीं करती थी कि वह साहित्यिक पत्रिकायें खरीद के पढ सके। स्कूल मे दो अखबार आते थे। वह अक्षर अक्षर चाट डालता अखबारो का। शाम को वह कस्बे की लाइब्रेरी में चला जाता था वहाँ थोडी पत्रिकायें आती थी—अक्सर आने के दो-तीन दिन मे कुछ पत्रिकायें गायब हो जाना आम बात थी। जो बच रहती थी वे पत्रिकायें भी इतनी खस्ता हालत मे होती थी, उनको हाथ मे लेते ही तिजतिजाहट सी होती थी लेकिन उन्हे भी पढ डालता था वह। दरअसल उस कस्बे के लोग पत्रिकाओ के पन्ने उलटने मे अधिक रुचि लेते थे बजाय उन्हे पढने के।

"मास्टरजी टाइम समाप्त हो गया लेबरेरी (लाइब्रेरी) का। सात बज गये हैं अब कल पढना बाकी का'—लाइब्रेरी का बूढा चपरासी सूचना देता तो वह हडबडा उठता। अपनी कलाई पर बँधी पुरानी-सी घडी देखता

वह। किताब वेदिली से बन्द करते हुये कहता—"भाई अभी तो दस मिनिट बाकी हैं सात बजने मे।"

"अरे दस मिनट का क्या है यह भी हो ही जायेंगे···खिड़की-दरवाजे वद करते-करते पूरे सात बज जायेंगे···। पढने का इतना शौक है तो ले जाओ इस पत्रिका को—पर कल सुबह आठ बजे से पहले ही पहुँचा जाना।"

चपरासी की बात पर वह खुश हो जाता। बगल मे किताब दबाते हुये वह दरवाजे की ओर लपक जाता, तुरन्त ही लौटते हुये जेब से एक बीडी निकाल कर चपरासी को देते हुए खीसें निपोर देता। "लो पीओ···बीडी पीओ··।"

चपरासी चुपचाप बीडी लेकर पीने लगता।

उसने उस वाचनालय के चपरासी से खासी दोस्ती गाँठ ली। अब अक्सर ही वह कोई न कोई पुस्तक या पत्रिका घर ले जाने लगा। उसकी पढने की गति खूब थी—सारी रात मे वह पुस्तक या पत्रिका चाट डालता था। अपनी ठडी बीवी मे उसे कोई रुचि नही थी। हफ्ते मे मुश्किल से एकाध बार ही वह हाथ लगाता था उसे—जब बस की बात नही रहती तो।

एक रात पत्नी बेचैन थी। बार-बार वह उसका ध्यान अपनी ओर आकर्पित कर रही थी। बच्चे रो-रुआकर सो चुके थे। वह हाँ, हूँ मे पत्नी को जवाब देते हुये पत्रिका पढता रहा था। अचानक पत्नी खीजकर रो उठी थी। रोते-रोते ही उसने कहा था—"अपने आप मे हर दम खोये रहते हैं, सोचते नही कि पत्नी की भी कुछ जरूरतें होती हैं।"

वह अचकचा गया। पत्नी ठीक ही कहती है, उसने सोचा। पत्रिका बद करके वह पत्नी के पलग पर आ गया। रोती हुयी पत्नी को प्यार से चुप कराया और पीठ पर हाथ फेरके प्यार करने लगा। उसके स्पर्श से पत्नी सहज हो गयी, वह उसे समर्पित हो गयी। कुछ देर बाद उसने पूछा—"आप पढते क्या हैं इन किताबो म ?"

अच्छा लगा उसे पत्नी का प्रश्न। "बहुत कुछ पढता हूँ कहानियाँ, कवितायें, लेख···आदि।"

"मैंने भी पढी हैं वेताल कथायें,···अच्छी लगती हैं।" पत्नी ने उत्साह से कहा। उसे हँसी आ गयी।

"अब वेताल कथाओ का जमाना बीत गया। और न अब समय रहा राजा रानियो की कहानियो का। अब हमारे और तुम्हारे जैसे साधारण लोगों की कहानियो का जमाना है।···समझी···।"

पत्नी हतप्रभ रह गयी। मुह पर हाथ रखके आश्चर्य से बोली—"हाय दैया···हमारी कहानियाँ हैं इसमे—तुम्हारा और मेरा नाम भी है ?"

कहते हुये वह शरमा भी गयी।

पत्नी की मूर्खता पर उसे हँसी आ गयी। उसने पत्नी से कहा कि वह नहीं समझेगी, अच्छा हो वह सो जाये। पत्नी स्वयं इस बहस में पड़ना नहीं चाहती थी। उसके चेहरे पर अब तनाव नहीं था कतई। वह संतुष्ट हो चुकी थी। पति का पढ़ना अब उसे नहीं अखर रहा था। वह अपने पलंग पर आ गया'''और पत्नी आराम से करवट लेकर सो गयी।

इन दिनों जो भी कहानी वह पढ़ रहा था उसमें एक बात खास तौर से आ रही थी—आम आदमी के इर्द गिर्द घूमती हुयी जिन्दगी और उसमें बिखरे दर्द। पहले तो उसे यह आम आदमी समझ में नहीं आया—फिर जैसे-जैसे उसने गहराई से कहानियों को पढ़ा तो महसूस हुआ कि यह आदमी, आम जिन्दगी का ही कोई एक व्यक्ति होता है। पहले तो उसे लगता था य कहानियाँ बेहद उबाऊ है, लेकिन फिर उसे अच्छी लगने लगी ये कहानियाँ। एक कहानी में उसने पढ़ा—मेहनत-मजदूरी देने वाला ठेकेदार, जवान मजदूर स्त्रियों को किसी न किसी बहाने अपने यहाँ बुलाता है और उनसे मुँह काला करता है। एक दिन एक युवती जिसके पेट में उस ठेकेदार का गर्भ रह जाता है, वह उसकी कारनी-करतूतों का पर्दाफाश कर देती है। ठेकेदार को जलील होना पड़ता है। मजदूरनी को वह बच्चा पालने के लिए खासी रकम देता है तथा एक घर की व्यवस्था करनी पड़ती है उसे। उसे लगा वह आम जिन्दगी की ही कहानी है। अक्सर ऐसा ही होता है।'' एक और कहानी में उसने पढ़ा—अपनी खूबसूरत पढ़ी-लिखी, फैशन परस्त और फिजूल खर्च करने वाली पत्नी के लिए वह क्लर्क रुपयों का गबन कर लेता है। इसको जैसे-तैसे चालाकी से 'एडजस्ट' कर देता है। फिर किसी से रिश्वत लेता है। यह उसकी आदत बन जाती है। और एक दिन 'एन्टी-करेप्शन' वाले जिनकी नजर बहुत दिनों से उस पर थी, उसे पकड़ लेते हैं।

उसे लगा—कहानी आधुनिक फैशनपरस्त स्त्रियों और रिश्वत खोरों पर खरी उतरती है। हर रोज कोई नई कहानी, नया पात्र और नई घटना · आम जिन्दगी से जुड़ी हुयी। अपने आप में उसने गर्व-सा महसूस किया कि वह भले ही प्राइमरी स्कूल का अध्यापक है तो क्या ? एक प्रबुद्ध पाठक तो है ही और प्रबुद्ध पाठक होने के नाते वह बुद्धिजीवी वर्ग में आ जाता है।

अगले दिन वह स्कूल नहीं जा पाया। गोद वाली लड़की बेहद बीमार हो गयी। उसने जेब टटोली, मात्र दस रुपये थे। वह चिन्ता में डूब गया कि मात्र दस रुपयों में क्या होगा ?

"तुम्हारे पास कुछ बचे हो तो दे दो, डॉक्टर ढेर-सी दवाइयाँ लिख देगा, सारी दवाइयाँ बाजार से खरीदनी होंगी।"

आपने तो मुझे अस्सी रुपये दिये थे इस बार। सब्जी वाले, दूध वाले, मकान के किराये और रोज के खर्चों मे बट गये। दो-एक रुपये जरूर होंगे। मैं तो सोच रही थी कि तुम्हारे पास होंगे।

वह खीज उठा। "मेरे पास कहा से आते। कट-कटा के मिलते ही पौने दो सौ हैं। कपडेवाला जान खा रहा था इतने दिनो से। उसे दिये। एक दो मास्टरो से उधार लिये थे होली पर, वह चुकाये। यह जूता भी तो नया खरीदा है।"

पत्नी चुप। कहे भी क्या। बच्ची को उसने कधे पर लादा। पत्नी ने अच्छी तरह से कपडा लपेट देना चाहा।

वह चीखा—"ओफह" इतना गदा कपडा लपेट रही हो। डॉक्टर के पास जा रहे हैं हम। जरा साफ कपडा लाओ। न हो तो धुली चादर ही ले आओ पलग की।"

"चादर ?" असमजस से पत्नी बोली, 'वह तो धुली हुई नही है। साबुन खतम हो गया था।"

"तुम जैसी फूहड औरतें ही गृहस्थी चौपट कर देती हैं ·।" एक भद्दी-सी गाली उसके ओठो पर आयी और रुक गयी, यह सोचकर कि वह एक मास्टर है और मास्टर को गाली नही देना चाहिए, बुरा-सा मुह बनाके वह चल पडा, साथ मे गदी-सी सूती साडी लपेटे हुए पत्नी भी।

अस्पताल मे भीड खूब थी। उदास और दुखी चेहरे और उनसे फूट पडने वाली कराहटें। बैंचें भरी हुई थी बीमारो और उनको लाने वालो से। डॉक्टर का इन्तजार कर रहे थे सब लोग। अन्य कर्मचारी डॉक्टर और नर्सें गप्पे मार रहे थे। तीन डॉक्टरो की नियुक्ति थी उस अस्पताल मे लेकिन अब तक एक का भी पता नही था। उसकी खीज बढ गयी। बरामदे मे वह खडा हो गया। कुछ दूर पर ही पत्नी बैठ गयी तो उसने बीमार बच्ची को पत्नी की गोद मे डाल दिया। कमीज पसीने से तर हो चुकी थी। उसने ऊपर के दो बटन खोल दिये। एक कम्पाउडर, नर्स से बात करता आता दिखाई दिया तो वह तेजी से उसके पास पहुँचा—"कम्पाउडर साहब, डा'क सा'ब कब आयेंगे ·"

कम्पाउडर उसका प्रश्न सुनकर बौखला गया। 'जो आता है हमसे यही पूछता है कि डा'क सा'ब कब आयेंगे, जैसे हम उनके आने-जाने की कोई खोज खबर रखते हों। · उनकी मर्जी है जब आयें और हो सकता है न भी आयें···।"

वह कुढ गया कम्पाउडर का उत्तर सुनकर। गुस्सा भी आया उस पर। उत्तर देने का और भी तरीका हो सकता है। झल्लाने के बजाय यह भी तो कह सकता था कि थोडी देर में आ जायेंगे। शहर के इस अस्पताल म

जब भी वह आया यही हालत पायी। एक डॉक्टर तो हमेशा अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस म लगा रहता है। बस आधे एक घंटे के लिये अस्पताल का चक्कर लगाता है और साइन मार के चलता होता है। कोई अपना दुखड़ा रोता तो वह डॉक्टर बड़ी निर्लज्जता से कहता— 'भाई यहाँ रोने से क्या होगा। मेरे घर आओ। वहाँ आराम से देखूँगा। पन्द्रह रुपये फीस के जरूर लगेंगे पर यहाँ के धक्के खाने से बच जाओगे और बढ़िया इलाज हो जायेगा।'

उस डाक्टर की शिकायतें भी खूब की गयी। कई पाँच-छः बार उसका तबादला भी हुआ पर हर बार उसने तबादला कैंसिल करवा दिया। अस्पताल म भी पेशेन्सिटी के नाम पर कुछ नही था। डॉक्टर और स्टोर कीपर अस्पताल की दवाइयाँ बाजार म बेच देते थे। और यह सब सर्वविदित था।

अचानक दो डॉक्टर इस तरह प्रकट हुये यहाँ जैसे भक्तों को भगवान ने दर्शन दे दिया हो। लोगों के निराश चेहरों पर आशा की लकीरें दिखाई देने लगी। उनके कैम्बरों के आगे मरीज कतारबद्ध खड़े हो गये। पत्नी से बीमार बच्ची लेकर वह भी लाइन में लग गया। कोई एक घंटे बाद उसका नम्बर आया। इस बीच बच्ची कई बार रो चुकी थी। शरीर बुरी तरह तप रहा था उसका। वह स्वयं भी थक कर चूर हो चुका था। जैसे तैसे वह डॉक्टर तक पहुँचा। पान की पीक से भरे हुये मुह से डॉक्टर ने पूछा— "क्या है ?'

"बच्ची बीमार है !" उसने सहमी हुयी-सी आवाज मे कहा।

"हुआ क्या है ?" इस बार तेज आवाज मे कहा डॉक्टर ने !

"बहुत तेज बुखार है ! दो दिन से बुखार टूटा नही है।..."

"हूँ" डॉक्टर ने हुंकार भरी और कागज पर कुछ लिखने लगा। वह चाहता था डॉक्टर बच्ची का मुआयना करे। साहस जुटाकर वह बोला— "सा'ब एक बार आप जाँच कर लेते तो ठीक रहता।..."

चीख पड़ा डॉक्टर—"मुझे ऑर्डर देता है के ' बच्ची को देख नही तो और क्या कर रहा हूँ—साले तुम्हारे गुलाम हैं क्या ? चौबीस घंटे तुम्हारे कामो मे ही लगे रहें। ऐसे ही लाट सा'ब बनते हो तो पैसा खर्च करो— कराओ इलाज !"

वह स्तब्ध रह गया। अपमानित हो गया बुरी तरह। इतने लोगों के आगे। डॉक्टर ने कागज लिखकर उसकी ओर फेंक दिया।

' मेडिकल स्टोर से पीने की दवा और गोलियाँ ले लेना। बाजार से ही इजेक्शन भी ले आना। लगा दिया जाएगा यहाँ पर।" उसने कागज को इस तरह उठा लिया जैसे जिन्दगी का दस्तावेज हो। मेडिकल स्टोर पर जाकर उसने दवाइयाँ ली। डॉक्टर ने तीन दिन की दवा लिखी थी। पैसे

र गर्म स्वभाव की थी। झाड़ू निकालने के समय प्राय
ी जबकि बिबो अपने हलके के प्रति पूर्णत: समर्पित थी,
वो अपनी झाड़ू के ओर से चमका कर रखती थी।
उत्सुकतावश पूछा, "तो बचेगा कैसे ?" बिबो मुस्कराई,
। हलका है।" उसकी आवाज में आत्माभिमान की खनक
नीचे आज तक कोई पशु नहीं मरा सत्रह साल की नौकरी
म, बच्चा-बच्चा जानता है कि मेरी झाड़ू की तासीर बहुत

कुँ इसम पूर्व ही बिबो की मुख-मुद्रा बदल गई। वह नितांत
गी, "और फिर क्यों मारे भगवान ? पाँच-सात रुपये का
नहीं।"
, रुपय ?" तारु नायक हैरत में डूबकर रुपयों के मुद्दे पर

" बिबो ने बताया और स्पष्ट किया कि संसार में जो आता
। और करायी अच्छी न हो तो जल्दी भी जाता है, पशु तो
ना बंद कर देते हैं तो जाने का समय भी नजदीक खिसक
मरता है उस पर उसी जमादारनी का अधिकार होता है। वह
ययोग कर सकती है।
-सात रुपय का इसम क्या मतलब ?" तारु नायक ने विह्वल

' बिबो ने बात साफ की। "हम इन मवेशियों का इस्तेमाल
र खींचने वाले तारगियों को बेच देते हैं। अच्छी काठी का कोई
दस-बारह रुपयों में बिक जाता है, पर इस बैल के तो सात
रोकर देगा।" बिबो के दिल में छिपी हुई खुशी होठों पर
रन रुपये तुम्हें किस बात के ?" तारु ने भुन-भुनाकर पूछा।
फिर कानून ही ऐसा है।" बिबो ने भयभीत स्वर में कहा,
ो दिलवाए भगवान, मवेशियों के माम की कमाई। मैं तो वैसे
ही।'
ान है।" तारु का ध्यान वापस तड़पते हुए बैल की ओर
ाल देकर देखते हैं, थोड़ी गर्मी आ जाएगी शरीर में।"
ा पुराना गुड़ थोड़ा-बहुत ?" तारु ने एकदम मेरे ऊपर

र करने के लिये उचित शब्द ढूँढ़ ही रहा था कि कायम बोला,
ान यहाँ मिल जाएगी, काले

बिंवो की झाड़ू

□ जनकराज पारीक

बैल अपने आखिरी दमो पर था। उसका पेट बुरी तरह फूला हुआ था। रह-रहकर उसके चारो पैर एक झटके के साथ हिल पडते थे। उसकी आँखें वद थी और मुह से लगातार झाग गिर रहे थे। हम लोग उसके चारो तरफ घेरा डाल कर खडे थे। जीवण ने कहा, "सिहागो वाली ढाणी का लगता है।"

तारू नायक ने वताया, "छोटी सादडी का है, बूढा हो लिया था, कई दिनो से बीमार चल रहा था इसलिये धनपते ने रस्सी खोल दी।"

अभी सुबह हुई थी। रातो-रात यह बैल गुसाइयो के घर के आगे आकर पड गया था। अब हम उसे तडफते हुए देख रहे थे और नाना प्रकार की जिज्ञासाए कर रहे थे कि बिंवो ने सजीदगी मे कहा, 'वचना मुश्किल है।" फिर कुछ चिंतन मुद्रा मे बोली, "वच भी सक्ता है।"

हम सवकी दृष्टि एकाएक बिंवो की ओर उठ गयी। तारू नायक दातुन कर रहा था। थूक की पिचकारी एक तरफ छोडते हुए बोला, "कैसे ?"

"हड्डियाँ निकली पडी हैं। बूढा होकर बैसके पडा है। चरायी भी ठीक नही हुई लगती, जाएगा।" बिंवो ने विशेषज्ञ की हैसियत से कहा और हम सबने सहमति मे सर हिलाते हुए 'हूँ' कहकर उसकी पुष्टि की।

बिंवो का पूरा नाम बिमला था पर हम सब आदर से उसे बिंवो कहते थे। नगर परिषद मे उसकी सत्रह साल की सर्विस थी। तेलीपाडा से लेकर रामदेव जी के मदिर तक वही झाड़ू निकालती थी और यह हलका बिंवो का हलका कहलाता था। गुसाइयों का घर तेलीपाडा की नुक्कड पर था और उसके आगे बुन्नी का हलका शुरू हो जाता था। वहाँ की जमादारनी बुन्नी बहुत

तुनक मिजाजी और गर्म स्वभाव की थी। झाड़ू निकालने के समय प्राय. नसवार सूंघती रहती जबकि बिबो अपने हलके के प्रति पूर्णत. समर्पित थी, गलियो और सडको को अपनी झाड़ू के जोर से चमका कर रखती थी।

जीवण ने उत्सुकतावश पूछा, "तो बचेगा कैसे?" बिबो मुस्कराई, "भैया, यह बिबो का हलका है।" उसकी आवाज मे आत्माभिमान की खनक थी, "मेरी झाड़ू के नीचे आज तक कोई पशु नहीं मरा सत्रह साल की नौकरी हो गयी म्यूनसपल्टी मे, बच्चा-बच्चा जानता है कि मेरी झाड़ू की तासीर बहुत ठडी है।"

हम कुछ पूछें इससे पूर्व ही बिबो की मुख-मुद्रा बदल गई। वह नितात विरक्त-भाव से बोली, "और फिर क्यो मारे भगवान ? पाँच-सात रुपये का लोभ-लालच मुझे है नही।"

"पाँच सात रुपये ?" ताहनायक हैरत मे डूबकर रुपयो के मुद्दे पर आ गया।

"पू है न।" बिबो ने बताया और स्पष्ट किया कि ससार मे जो आता है वह जाता भी है। और चरायी अच्छी न हो तो जल्दी भी जाता है, पशु तो बेचारे जब काम देना बद कर देते है तो जाने का समय भी नजदीक खिसक आता है। कोई पशु मरता है उसपर उसी जमादारनी का अधिकार होता है। वह उसका चाहे जो उपयोग कर सकती है।

"पर पाँच-सात रुपये का इसमे क्या मतलब ?" तारूनायक ने विह्वल होकर पूछा।

"ऐसा है," बिबो ने बात साफ की। "हम इन मवेशियो का इस्तेमाल नही करते हैं, खाल खीचने वाले तारगियो को बेच देते है। अच्छी काठी का कोई जवान पशु हो तो दस-बारह रुपयो मे बिक जाता है, पर इस बैल के तो सात रुपये भी कोई रो-रोकर देगा।" बिबो के दिल मे छिपी हुई खुशी होंठो पर आ ही गई। "लेकिन रुपये तुम्हे किस बात के ?" तारू ने भुन-भुनाकर पूछा।

"यह तो फिर कानून ही ऐसा है।" बिबो ने भयभीत स्वर मे कहा, "और मुझे काहे को दिलवाए भगवान, मवेशियो के मास की कमाई। मैं तो वैसे भी खाकर खुश नही।"

"ठीक बात है।" तारू का ध्यान वापस तडपते हुए बैल की ओर गया। "गुड की नाल देकर देखते हैं, थोडी गर्मी आ जाएगी शरीर मे।"

"पडा होगा पुराना गुड थोडा-बहुत ?" तारू ने एकदम मेरे ऊपर हमला किया।

मैं इनकार करने के लिये उचित शब्द ढूँढ ही रहा था कि कायम बोला, "एक भेली तो अपने यहाँ मिल जाएगी, काले गुड की।"

"बहुत बढ़िया।" जीवण बोला, "नाल मैं ले आता हूं।" "यूं कौन-सा अपने इसे अमर-पट्टा लिख देंगे।" बिंबो उदास स्वर में बोली, "मरना है उसने तो मरना है। आज नहीं तो कल, आई को टालना अपने हाथ मे है कहाँ।" फिर थोड़ा रुककर अपनी आतरिक इच्छा दबाते हुए बुझे स्वर में बोली, "लेकिन आदमी को अपनी कोशिश तो करनी चाहिए।"

"भई, अपना फर्ज बनता है।" तारू ने कुटिल हँसी हँसते हुए कहा।

"जरूर पूरा करो।" कहकर बिंबो एक तरफ हटकर अपने काम मे जुट गई।

गुड की नाल बैल के मुह मे देने से पूर्व तारू ने हमे हिदायत दी कि बैल के जबड़े पकड़ कर उसका मुँह खोलें। दूर से बिंबो ने सलाह दी कि बैल के मुह मे दांत हैं नही, इसलिये तारू के ही जबड़े खोलकर नाल दे दो। बेचारे का मुँह मीठा हो जाएगा तो मीठा-मीठा बोलेगा।

कासम ने कहा कि मसखरी छोड़ो और काम की बात करो। कासम की बात का मुझ पर वाजिब असर हुआ। मैं समझदारो की तरह आगे बढ़ा और दोनो हाथो से बैल के जबड़े ऊपर-नीचे खीचते हुए उसका मुह खोल दिया। जीवण ने गुड की नाल बैल के मुह मे उँडेल दी और सीग पकड़ कर उसकी गुद्दी मे थपकी देने लगा। दो चार मिनट तक बारीकी से निरीक्षण करने के बाद तारूनायक बोला, "खड़ा करते हैं।"

"घर ले जाकर बांध ले। सपूत हाळी हो गया तो खेत मे काम आएगा।" बिंबो ने जले-भुने स्वर मे कहा। जिसे हम सबने अनसुना कर दिया चिंतित मुद्रा मे बैल के चारो ओर एक चक्कर लगाने के बाद तारू ने उसकी पूँछ पकड़ ली और उसे उठाने का यत्न करने लगा। अपने-अपने फर्ज को पहचानते हुए हम सभी सक्रिय हुए। मैंने बैल के दोनो सीग पकड़कर उसके मुह को सीधा किया। कासम उसकी कूई पकड़कर उसे उठाने की कोशिश मे जुट गया। तारू ने उसकी पूँछ उमेठी और ऊँचे स्वर मे बोला, 'जोर लगाओ।'

"हाई शा ऽ ऽ ऽ।" हमने नारा लगाया और एक झटके के साथ बैल को खड़ा कर दिया।

बैल के खड़े होते ही बिंबो का दिल बैठ गया, इस बात का पता हमें उसके चेहरे से लगा। लेकिन हम सब उस समय परमार्थ भाव से ओत-प्रोत थे और जीवदया की सुखद अनुभूति मे विभोर थे इसलिये बिंबो पर बिना किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी किये हम अपने हाथ-पैर झाड़ते हुए सभ्य नागरिक बनने लगे।

'सब मे एक-सी जान होती है, आदमी हो या पशु,' 'बेजुबान जानवर की आत्मा आशीष देगी' और 'बड़ा अच्छा हुआ जी' जैसे जुमलो का परस्पर

आदान प्रदान करते हुए हम तीन पैरों पर खड़े बैल को गद्-गद् भाव से देख रहे थे। बैल का एक पैर बेकार हो चुका था। वह तीन पैरों पर खड़ा कांप रहा था।

'टिच्, टिच्, टिच्" तारू नायक ने दातुन से बैल के पुट्ठों को कोंचते हुए टिचकारी दी, बैल ने गर्दन झुकाकर अगले दोनों पैरों पर जोर दिया, पिछले पैर को एक झटके के साथ हवा में उछाला और एक कदम आगे बढ़ गया। तारू नायक पर इसका अच्छा असर हुआ और उसने अपने मैले कुचैले, ऊबड़-खाबड़ दांत हम सब के अवलोकनार्थ प्रदर्शित कर दिये। दातुन को फेंक-कर उसने पीक थूकी और कान पर टंगी हुई अधजली बीड़ी सुलगा ली, धुएँ के साथ-साथ उसने मुह स एक विचित्र सी ध्वनि निकाली, "हाय्, हाय्, हाय्, त्, त् त्।' इस बार बैल ने एक साथ दो-तीन कदम लिये और फिर रुक कर बुरी तरह हांफने लगा।

"लेजा, लेजा अपनी अम्मा के हलके मे, सात मे से तीन तुझे भी मिल जाएँगे।" बिन्नो ने बहुत उदास स्वर मे कहा।

तारू नायक सब कुछ अनसुना कर गया और आत्म-विस्मृत-सा बोला, "बच जाएगा। ठो, ठो, ठो" कहकर उसने एक बार फिर बैल को पीछे से धकेला। अब बैल कुन्नी के हलके स केवल पांच-सात कदम दूर रह गया था।

काम पर जाने की जल्दी और बैल को बचाने की साहसिक गाथा घर पर सुनाने की विह्वलता मन मे लिए हम लोग पूरे वृत्तात को रोमांचक भाषा मे गढ़ते हुए अपने-अपने घर की ओर चल दिये।

अपने-अपने काम पर जाते समय हम लोगों ने सरसरी निगाह से देखा—बैल यथास्थान खड़ा था। सूरज चढ़ आया था और धूप चिल-चिला रही थी। झाड़ू निकालती हुई बिन्नो काफी दूर निकल गई थी, जैसे अब बैल से उसका कोई लेना-देना नहीं रह गया था। सेवाराम की धर्मार्थ प्याऊ के पास तारू नायक कुन्नी की डिबिया स बहुत नाजुकी के साथ नसवार की चुटकी भर कर अपने नथुनों म ठूंस रहा था और बड़े आत्मीय भाव से कुछ भेद भरी बातों पर विचार कर रहा था। कुन्नी बड़े व्यापारिक ढग मे मुस्करा रही थी और तारू नायक बड़े अनुनय विनय की मुद्रा म किसी खास मुद्दे पर कुन्नी को राजी करने मे प्रयत्नशील था। बैल अपने तीनों पैरों पर खड़ा थर-थर कांप रहा था, 'अब गिरा और तब गिरा' जैसी नाजुक स्थिति पर सरसरी निगाह डालते हुए हमने अपनी-अपनी राह ली और अपनी बंधी-बंधाई दिनचर्या मे गुम हो गये।

शाम को जब वापस लौटे तो हैरत म डूब गये। हम लोगों के बीवी-बच्चे घर से निकलकर चबूतरों पर आ खड़े हुए थे और एकाग्र-भाव से बिन्नो का मर्म भेदी भाषण को सुन रहे थे। बिन्नो ने सारे मुहल्ले को गालियों से ओत-

प्रोत कर रखा था। झाड़ू की मूठ पर कुहनी टेके वह जीवण के चबूतरे पर बैठी थी। उसका स्वर यद्यपि ऊँचा था फिर भी वह लगभग रुदन की मुद्रा म कह रही थी, "पहली बात तो मेरी झाड़ू के नीचे भगवान मारे ही क्यो किसी मवेशी को और दूसरी बात साली हमने सीखी ही नहीं।'

हम दूसरी बात का आशय नही समझ पाये इसलिये एकाएक हम सबकी दृष्टि प्रश्न-वाचक हो गयी और बिंदो ने बिना पूछे ही स्पष्टीकरण देना शुरू कर दिया, ' एक तो साले तारिये नायक को सात म से दो रुपये कमीशन दो, दूसरा उसका दिल राजी करो मुफ्त मे, सो भाई, गैर मर्द की जाँघ के नीचे कुन्नी लेट सकती है, बिंदो नही मैं अपनी झाड़ू की कमाई खाती हूँ, माँग की नही।" बिंदो ने दुखी मन से कहा और बात हमारी समझ म आ गयी। हमारी निगाह एकाएक बैल की ओर गयी, सेवाराम को धर्मार्थ प्याऊ के दूसरी तरफ बैल कुन्नी के हरके म मृतप्राय पडा था। अब उसकी जीभ स्थायी तौर पर बाहर आ चुकी थी और जबडो के आस-पास झाग के चट्ठे सूख रहे थे, उसका सारा जिस्म नीला पड चुका था। लम्बा वक्फा देकर उसके चारो पैर धीमे से थिरक उठते थे और हर थिरकन आखिरी थिरकन जान पडती थी बैल के पिछले पैरो स कुछ हटकर तारू नायक बैठा बीडी पी रहा था बैल के खुले मुह के पास बैठी कुन्नी निरापद भाव स नसवार सूँघ रही थी जैसे बैल के मरने की प्रतीक्षा मे समय काट रही हो। बैल की धीमी पडती हुई कपन के साथ कभी-कभार तारू नायक कुन्नी की आंखो मे झाकता हुआ निहायत फूहड ढग से अपने पीले दाँत प्रदर्शित कर रहा था।

हम लगा जैसे शिकार के पास दोनो शिकारी विद्यमान हैं। पूरा दृश्य तैयार है, सिर्फ फोटोग्राफर की कमी रह गयी है। मैंने हिकारत के साथ तारू नायक के पीले दाँतो और कुन्नी के नसवार मे लिथडे हुए नथुनो को देखा और महसूस किया जैसे बैल की प्रतिक्षण लुप्त होती हुई चेतना के साथ तारूनायक की उत्तेजना बढती जा रही है।

काले द्वीप की फागुनी धूप...

□ सावित्री परमार

होस्टल कम्पाउण्ड मे बडी शाति थी, छुट्टियाँ चल रही थीं इसलिये अधिकाश कमरो मे ताले झूल रहे थे। बाहर लॉन में तीन चार मजदूर मशीन से घास काट रहे थे। दक्षिण वाली गैलरी मे लायब्रेरी खुली हुई थी। पेडो से छनकर बासती गुनगुनी धूप हरी दूब पर तितलियो की तरह छिटकी हुई थी। कही किसी खुले कमरे की खिडकी से खनखनाती हसी के कतरे हवा के साथ उडकर धुनी कच्ची रुई सी मुलामियत का अहसास भरा रहे थे।

उसने एक उडती-सी नजर पूरे वातावरण पर डाली। पीली रोसो मे धधकते लाल गुलाबी गुलाब मुस्करा उठे। एक मीठी गध उसे सहला गई। उमग की श्वेत फाख्ता मन मे फुदकी और उसकी सासो मे जैसे अधीरता का सोता बह चला। उसने तुरन्त खादी एम्पोरियम से खरीदे गये ताजा बैग से पैसे निकाल कर टैक्सी का किराया चुकाया और अटेची उठाकर दाई ओर जाने वाले जीने से चढकर ऊपर की बाल्कनी मे आ गई। मन के किसी कोने मे दुविधा ने भी छोटा सा आकार ले लिया था कि कही वह इधर उधर न चला गया हो ! या हो सकता है नीचे लाइब्रेरी मे ही हो ! इस खुशगवार मौसम मे क्या पता किसी मित्र के साथ पहाडी पगडण्डियो से नीचे उतर गया हो ? खैर, देखा जायेगा, कही गया भी होगा तो शहर से बाहर तो जायेगा नही, लेकिन ताला बद मिला तो ?

इन्ही शकित विचारो में तैरते उतराते उसने पूरी बालकनी और साइड का कारीडोर पार किया। अचानक उसके पाव रुक से गये। मन की खुशी ओठो पर काप उठी" ओह गॉड, यह तो यहाँ है। मन हुआ कि खुमार भरी हवा मे

एक जोरदार सीटी उछाल दे, लेकिन जल्दी ही उसने इस बचकाने ख्याल को झटके से हटा दिया।

उसका कोने वाला कमरा खुला हुआ था। भीतर से गिटार की आवाज आ रही थी। कोई बड़ी बेचैनी सी धुन निकल रही थी, ऐसी धुन जो मन के तारों को छूकर मथ डाले, मूक वेदना की असख्य लहरें दौड़ा दे। उसे लगा जैसे गिटार की यह संगीत-ध्वनि नहीं है, बल्कि बहुत दूर पहाड़ों के पीछे कोई दर्द से धीरे-धीरे कराह रहा हो या सागर की चौड़ी छाती पर पवन सिर धुन रहा हो। उसका मन एकदम उदास सा होकर व्याकुल हो उठा, पर तुरन्त ही एक चैन की सास भी आई चलो मिल तो गया, कलाई पर नजर डाली सुबह के नौ बजे थे, पाव फिर उठे, वह कमरे के द्वार तक आ गई। गिटार उसी तरह से थरथरा रहा था।

हवा के झोंके से द्वार पर लटका हरा पर्दा उसके आचल से टकरा गया। बहुत अच्छा लगा। आहिस्ता से वह कमरे म आई। एक किनारे धीरे स अटेची रखी और चुपचाप खिड़की के पास वाली कुर्सी पर बैठ गई।

देहरादून की सुबह अपनी पूरी ताजगी के साथ कमरे मे मौजूद थी, बाहर साफ चिकनी देहरादून की चौडी सडक अण्डाकार मोड लेकर लेटी हुई थी। तीसरी मंजिल की इस खिडकी से ओस भीगी खपरैल के ढलवा मकान खिलौनो की तरह लग रहे थे। आस पास थे हरियाली से लदे लम्बे लम्बे पेड। छज्जो पर फूलो के गुच्छे सजाये बेलें फैली हुई थीं।

मकानो के आगे सफेद किंगडी लगाये लाल बजरी के गलियारे बडे प्यारे लग रहे थे। ढेर-ढेर हरियाली के गुलदस्तो मे फूलो के रूप सजाये बडे आराम से बैठा था देहरादून ··

खिडकी से नजर हटाकर वह एकटक उसे देखने लगी वह अब भी बड़ी तन्मयता से गिटार बजा रहा था। हवा के हल्के स्पर्श से उसके माथे पर रेशमी बालो के घुँघराले भवर मचल रहे थे। खुली सीपी सी आँखो पर झुकी पुतलियां जाने किस स्वप्न मे डूबी हुई शहतूत की कोंपल की तरह काप रही थीं। गिटार की लय का विकल दर्द शायद उसके मन मे भी छू रहा था, तभी तो उसका पूरा चेहरा किसी अनाम गीत का अर्थ बना हुआ था। उसके चेहरे की सुनहरी रंगत और भी गुलाबी हो उठी थी। एक मासूम सी अकेली मुस्कान उसके ओठो के कोनो पर छा रही थी, आँखें कभी खिडकी और कभी दिवारो की ओर रह रहकर उठ जाती थी· लेकिन, लेकिन उन खजन-सी सुन्दर आँखो को जाने किस जन्म के अभिशाप का प्रायश्चित करना पड रहा था। यह किस श्राप का फल था कि उनसे रोशनी का पूरा आकाश छीन लिया गया था। झील की तरह उज्ज्वल और नीलम की तरह चमकीली पुतलियो के बेशकीमती हीरे

लेकर भी वह अधकार के काले सागर में तैर रही थी, राह भूले थके हारे मृग की तरह इधर-उधर दिशाहीन भटक रही थी। जन्म से लेकर अब तक की उम्र के सफर में दौड़ते भागते जाने कितनी आहत हो चुकी होगी? आत्मा के भीतर फैले किस अव्यक्त प्रकाश की उगली थामी होगी? किस अज्ञात सकेत पर जीवन के पगु क्षण कर्मठ बनाये होगे? कैसे ' आखिर कैसे इतना सुन्दर सग-मरमरी यूनानी मूर्तियो सा तराशा हुआ यह व्यक्तित्व इतनी ऊची शिक्षा, विनम्रता और जीविका लेकर सवरा होगा? उसके मन में फिर कोई टीस सी उठी।

उसे याद आया वह दिन, जब वह पिछले वर्ष इसी फागुन के सीजन मे ही देहरादून का सहस्त्र फाल देख रही थी—तभी पीछे से किसी का धक्का लगा था। सैलानियों की काफी भीड़ थी, उसने झुझलाकर पीछे मुड़कर देखा तो काला चश्मा लगाये एक बहुत ही सुदर्शन युवक को बड़ी ही मोहक मुस्कान लिये खड़ा पाया, भव्य परिवेश, चमचमाते काले जूते और हाथ में एक मोटी जिल्द वाली पुस्तक। वह उसी झुझलाहट से बोली थी—कमाल है आपका भी—क्या दिखाई नही देता?— कहकर वह उसी ठसके से आगे बढ़ने ही वाली थी कि पीछे से बड़ी घुटी घुटी आवाज आई थी—रियली मैडम, यू आर राईट आफ कोर्स—दिखाई नही देता—बात यह है कि मेरा दोस्त मुझे यहा खड़ा करके किसी काम से गया है पीछे से किसी ने टक्कर दी, सम्भल नही पाया, आपको इसलिये तकलीफ हुई, क्षमा करें। और तभी वह दोस्त आया, उसे लेकर वह चल दिया। वह और उसकी फ्रेण्ड निमि जड़ होकर रह गई थी। —ओह! इस नेत्रहीन को क्षणभर में कितना कटु व्यवहार सौप डाला था और उसका प्रत्युत्तर कितना मधुर—पर मधुरता छू कहा पाई? लगा जैसे एक कोड़ा कस कर लगा हो।

तभी घास पर एक छोटी सी डायरी पैर से टकराई। अरे! यही तो खड़ा था वह! निमि ने उसे उठा लिया, दोनो ने पढ़ा उसमे होस्टल का पता, कालेज का नाम था, उसी से जाना कि वह अग्रेजी का प्रोफेसर था।

उस दिन से लेकर आज तक मतलब पूरे वर्ष का एक नया ही जीवन-दृति हास रहा है। अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के लिये कितने अन्तर्द्वन्द्वो मे अपने आपको, घर वालो को डाला है, कितना इस मिहिर को परेशान होना पड़ा है। इस स्वीकृति के लिये उसे कितने विरोध सहने पड़े। बड़े भाई कैप्टीन का, बड़ी डाक्टर दीदी का, पुलिस आफीसर पिता का और दिल की मरीज मा का और सबसे अधिक इस मिहिर का, उसने अपने घर में सभी को यही समझाया था कि मिहिर म क्या कमी है? वह इगलिश में एम०ए० है प्रोफेसर है, सभ्य-सुसस्कृत है, सगीत का ज्ञाता है, व्यवहारशील और बातचीत

मे प्रभावशाली है, अच्छा मित्र है, क्या नहीं है उसके व्यक्तित्व मे ? सभी ने साफ शब्दो मे कह दिया कि यह उसकी रोशनी बनेगी—शेष जीवन का सहारा बनेगी—यह भावुकता नही, सोच समझ कर लिया गया पक्का निर्णय है, निर्णय लेने में अपना ही चिंतन नहीं था, बल्कि मिहिर की जाने कितनी भावनाओ ने इसे और भी मजबूत बनाया था।

कई-कई टुकडो में बटी बहुत सी बातें···।

ऐसे ही एक दिन वह बोल उठा था "सुमि ! जानती हो, जब पहली बार खेलते-कूदते मुझसे केवल आवाजें टकराई थी मेरे साथियो की" तब कच्चे बचपन मे ही मैंने जाना था कि मैं ज्योतिहीन हू · सोचो सुमि ! फिर अधकार के सतत प्रवाह म रात दिन, मौसम, त्यौहार, मेले सब बहते गये,···रीते बेस्वाद बेरग···जिन्दगी कटु सत्य का प्याला लिये सामने खडी रही और वह कटुता का प्रारब्ध गरल बूद-बूद पीना पड़ा। जाने कितनी रातो को सोचते छटपटाते काटा कि दिन-वर्षों की जर्जर नाव खेने के लिये मजबूत पतवारें कहाँ से लाऊगा ? बचपन का मासूम हृदय जाने कब प्रौढ बन गया ? बस सोचना, चुप रहना···भीतर की दुनिया मे दिन-दिमाग कैद हो गया, शून्यता के साथ चिंतन बढा कि चाहे कुछ भी हो सघर्ष की चट्टान पर उम्र को कसना पडेगा ही—पक्का इरादा बाधा कि चलो चक्षु नही तो ज्ञान-चक्षु प्राप्त करूगा" खूब पढूगा—ताकि यह दुनिया अपने मतलब के लिये मेरी मजबूरियो का शोषण न कर सके, स्वार्थ का ग्रास न बनाये—ब्रेललिपि, साथियो की सहायता से आत्म विश्वास के साथ पढने लगा—स्कूल स कालेज फिर यूनिवर्सिटी। साथियो मे जहा सहायक थे, वहा ऐसे भी थे जिनके व्यग्य, उपहास तिरस्कार भी खूब सहे यही सब उपेक्षा घर मे भाई-भौजाई वहा और उसकी ससुराल से भी मिलती रही, पर जानती हो सुमि ! इन सबने मुझे और भी दृढता दी—अन्तर्मुखी चिंतन दिया—आखिर वह दिन आया जब मै अपने पैरो पर खडा हो गया, वह दिन मेरे जीवन का सबसे ज्यादा खुशी का दिन था।"

इसी तरह एक दिन वह सेमीनार में मिल गया दो दिनतक तो व्यस्तता मे एक पल भी नही मिला—जब इससे अवकाश मिला, तब दोनो को एक दूसरे का ध्यान आया। लच के बाद कोहरे म लिपटी पहाडियो की तरह ही बेहद उदास होकर बोला था "सुमि ! तुम तो एकदम पगला गई हो—भला वहो तो क्यो मेरे लिये घर भर से सघर्ष कर रही हो ? मानता हू कि तुम्हारी फैमिली उदार विचारों की है—जानती हो तुम्हारे डैडी और भैया का पत्र आया था कि वे दोनों ही तुम्हारी इच्छा के आगे झुक से गये हैं, लेकिन मैं जानता हू कि उन्हें इसके लिये कितनी मानसिक पीडा भुगतनी पड रही है— कौन अपनी सुन्दर स्वस्थ और शिक्षित कन्या को देना चाहेगा एक नेत्रहीन व्यक्ति को ?

तुम नही समझ सकती कि तुम्हारे निर्णय ने मेरी पूरी मानसिक शांति छीन ली है। अपने आपको सचमुच मैं अपराधी मान रहा हूं—तुमने-तुमने सुमि, मेरे मन के सोये तार झनझना डाले हैं, ईश्वर ने जो अधी नियति दी है, तुम क्यो इसमे अपना आचल बाधना चाहती हो ? उम्र की एकात सजा की चिता मे मुझे ही सुलगने दो सुमि, बचपना मत करो।"

पूरा पहाडी सौन्दर्य उदास हो उठा था। पहाडो, घाटियो और पगडडियो पर महकती मसूरी जैसे टीस उठी थी, सारा कोहरा सिमट कर मिहिर के चेहरे पर छा गया था, दर्द से उसका हृदय फटने को हो उठा था। वह भी उस दिन पहली बार खुलकर अपना मन रख सकी थी,—"मिहिर ! मैं चाहती हू कि तुम्हारे पावो मे अपनी दृष्टि बाध दू—तुम इसे कच्ची भावुकता समझते रहो, पर यह मेरा अतिम निर्णय हो चुका है कि मैं तुम्हारे विश्वास की नीव धैर्य की उगली और मुस्कान की चमकती सतह बनू.. तुम्हारे मन का अधेरा खुशियो की रोशनी से भरना चाहती हू—मैं वह अधिकार लेना चाहती हू मिहिर, जिसके द्वारा तुम्हारी इन सूनी पलको मे मीठे स्वप्न तैरा सकू—मैं बनूगी तुम्हारे लिये मजबूत पतवार।"

पर वह कुछ नही बोला था, यो ही खामोश रहकर पूरी शाम गुजार दी थी। डैडी-मम्मी से अलग उलझना पडा था उसे, भैया तो बार बार कहते रहे कि "सुमि ! तेरा तो दिमाग एकदम सड गया है, जिन्दी मक्खी कैसे निगल लें हम लोग ? माना कि सब ठीक है—उसमे लाखो गुण हैं, पर सब यही कहेंगे कि सिंह परिवार को अपनी लडकी के लिये कोई और नही मिला, जो—जो यह पकडा है ? लडकी मे तो कोई कमी नही है ! बोल, किस-किस को तेरी आदर्श सुनाते फिरेंगे और कौन यकीन करेगा इस पर ! और कही तेरी कोरी भावुकता ही किसी दिन लडखडा कर सत्य से मुंह मोडने लगी, तब ? सोचा है कभी इसका परिणाम ! अरे पगली, अभी समय है, खूब सोचले हमारा क्या है, तेरी खुशी ही अपनी खुशी है, लेकिन अच्छी तरह इस पर मनन कर, यह गुड्ड-गुडिया का खेल नही है।"

पर वह क्या सोचती। खूब सोचकर मन से बातें करके ही तो यह इच्छा जाहिर की थी, लेकिन ऐसी ही कुछ शका रिसर्च इन्स्टीट्यूट के गार्डन मे मिहिर भी कर बैठा था "तुमने अपना जीवन कोई मजाक समझ लिया है क्या रे सुमि। कौन से क्षणिक आवेग के मोहपाश मे बधकर तुम वहाँ अपना शृगारिक मन रख रही हो, कुछ होश है तुम्हे ? जिन हथेलियो पर तुम अपना सुहागनाम रचना चाहती हो, नही जानती क्या कि वहा प्रारब्ध के कितने क्रूर सकेत लिखे हुए हैं ? उम्र भर के लिये क्यो अपने कधो मे एक अपाहिज बैसाखी का बोझ टिकाना चाहती हो ? बोलो ?"

क्या बोलू ? यह तुम नही, तुम्हारे मन का भय बोल रहा है मिहिर ? तुम्हे तो प्रसन्न होना चाहिये, मुझे प्रेरणा और स्नेह का सकेत देना चाहिये, उल्टे निराशा के सागर मे डुबो रहे हो—तुम अपनी विवश कमजोरी से बाहर आना ही नही चाहते, इसलिये— क्या इसलिये नही—इस शून्य गर्त को पाटते-पाटते तुम स्वय पथरा नही जाओगी ? जब तुम अपनी ताजा और कोरी उमग मे सूर्य, चाद, वर्षा और धूप की बात करोगी, जब अपनी खुशियो के रगों के साथ इनके भी प्रयोग जानना चाहोगी, तब भला मैं इनके क्या परिचय दूंगा ? छोडो सुमि इस मिहिर को यों ही—मेरे निविड अधकार की सघनता तुम सह नही पाओगी—बुरा मत मानना, मुझे शका है कि तुम्हारी विचार शक्ति को आकपित करने वाले अनको जीविन प्रलोभनकारी क्षण मिलेंगे तब तुम्हारे विश्वास की सतह चटख गई तो ? मैं बताऊ सुमि ? वास्तविकता की कटुता तुम्हारे रेशमी पलो को छीन डालेगी, तब ? जाने दो इस टूटे कगार को अपने नेह की जितनी शीतलता द चुकी हो, जीवन को बहलाने के लिये बहुत है, कही ऐसा न हो कि इसे फिर सूखना पडे। जानती हो कि भीगकर सूखना बहुत सी दरारा को जन्म देता है—और दरारो की बडी मर्मान्तिक पीडा होती है। मुझे अपने दर्दों की तहो मे ही लिपटा रहने दो—इन्हे उघाडकर जीवन की सुवासित धूप मे कालिमा मत घोलो। व्यर्थ म कुछ गलत अनुभूतियो का अनुभव यदि तुम्हारी ओर से भविष्य ने सौपा, मैं सह नही पाऊगा—मेरी उसी क्षण सबसे बडी मृत्यु होगी सुन रही हो न !"

"मिहिर ! तुम्हारी ऐसी बातें ही तो मेरे निश्चय को और भी दृढ बनाती हैं मुझ पर तुम्हे यकीन करना ही होगा, पर तुम्हारा दोष भी क्या हैं ! नारी मन का अध्ययन तुम्हे मिला भी कहां अभी तक ? सभी रिश्तों मे अभी तक तुमने केवल स्वार्थ और लाछना की गध ही तो पाई है, लेकिन इतने से ही तो सबध सदर्भ की ठोस परिभाषा नही दी जाती, तुम्हारे हिस्से कितनी खुशिया कितने विकास, और नूतन अनुभव बाकी हैं, क्या तुम भाग्य के इस सकेत को सचमुच नकार सकते हो !"

उसने कुछ उत्तर नही दिया था—हरी घास पर सीधा लेट कर आख बद कर जाने किस चिन्ता मे डूब गया था, आधा घण्टे तक मौन उनके बीच बिछा रहा, एक लम्बी सांस खीच कर वह लेटे-लेटे ही बोला था—"ओह सुमि कुछ समझ नही पा रहा हू अपने मन को—तुम क्या करने जा रही हो, सब पहचान कर भी जैसे मूर्ख सा हो उठा हू, अपना बलिदान यो करना कोई बहा दूरी तो नहीं है न ? समाज की व्यवस्था, जीवन के मापदण्ड, घर वालो का मनोविज्ञान, पडौसियो की आलोचनात्मक दृष्टि और रीति-रिवाजो के सस्कारो का दर्शन कहाँ-कहाँ मिटा पाओगी, कहो ? तुम ईश्वर की पूर्ण कलाकृति हो...

क्यों किसी बीहड़ जगल की कटीली छाया मे इसे असुरक्षित रखना चाहती हो ? नहीं—नही सुमि, क्षमा करो, मेरा मन स्वीकार नही पा रहा है, नही—।"

वह रोकती, तब तक तो वह तेजी से मुड गया था, अच्छा हुआ सुधीर सामने आ गया था, लेकिन वह मानी कहा थी ? घर वाले भी परिस्थिति के साथ समझौता कर उठे थे, इन लोगों ने भी मिहिर का इतना स्नेह दिया था कि वह अपनी पुरानी व्यथा को भूलने लगा पहली बार ड्राइगरूम म खुशी से उमग कर बोला था, "सुमि ! आखिर तुमने मुझे पराजित कर ही दिया न ! लो चलो, यही सही, आओ मेरे हाथ थाम लो, मरे पावो को अपनी रोशनी का धरातल दे दो "इस बुझे जीवन की राख पर अपने अनुराग का सौरभ छिडक दो ' आज से मैं स्वय को सौंपता हू तुम्हे ।"

सुदर्शन चेहरे को आत्मा की प्रसन्नता ने और भी सोन्दर्य दे डाला था—वह भी उसके निश्छल समर्पण स खुशी से भर उठी थी। अचानक उसकी चूडिया छनक उठी—वह अपने विचारो की दुनिया से एकदम जाग उठी—चूडियों की झकार से वह चौंक उठी—आचल सरक गया—

"कौन सुमि !" गिटार की ध्वनि बिखर गई—मिहिर उसे पुकार रहा था। "हाँ, मैं हू"'पर तुमने कैसे जाना ?" वह आनन्द विभोर हो चहक उठी। तुम्हारे आचल की गध, चूडियो का स्वर और तुम्हारी घबराई सासो का कपन'"कहो, ठीक स पकडा न तुमको ! कितनी धृष्ट, चोर हो तुम ? एक निर्मल झरने सी हसी बहने लगी। "मिले भी खूब—कही गये नही आज ?" वह बच्चे सी मचल उठी थी।" नही, तुम्हारा इन्तजार जो था कि तुम अभी, इसी वक्त आ रही हो—क्या भला यह क्या ठीक था कि मैं आऊगी—आज ही, कल भी तो आना हो सकता था ?"

'नही, कल नही आज ही आओगी" इस मिहिर का जन्म दिन मनाने बडा प्यारा केक लाई हो, मेरे लिये सुदर सी भेंट भी—फिर पकडा चोर, पर हो एकदम कच्ची चोर,", वही निर्मल हसी—। "हाय राम तुम्हें तो पुलिस म होना चाहिए था" कमरे की फागुनी धूप मे गुलाल घुल उठा था।

मैंने अपने आपको बालकों के कुछ अधिक निकट महसूस किया। अन्त में कुछ आवश्यक हिदायतें देकर उनकी छुट्टी कर दी।

कुछ लिखा-पढ़ी करने के बाद ग्रामपचायत के सदस्य को साथ लेकर मैं ग्राम भ्रमण को निकला ताकि अभिभावकों से परिचय तथा बच्चों स निकटता स्थापित की जा सके।

ममता के बारे मे मेरा हृदय मुझे बराबर तग कर रहा था। आखिरकार चलते-चलते मैंने पूछ ही तो लिया—"क्यो साहब यह ममता किनकी लडकी है ?"

मेम्बर साहब ने हवा मे फरफराती दुरगी मूछो को अगूठे और तर्जनी की सहायता से मसल कर आकाश की ओर उन्मुख किया, बीडी जलाई और धुए के साथ वायुमडल मे एक भारी गाली उछालते हुए कहा—"माटर शा ! हे एक बगडेल राड । से र ती आन के याँ रेवा लागी हे । हाडी के लाज न सरम । केवे के खसम मरग्यो। म्हारी हमझ मे तो ऊको ब्याव बी नी होयो।"

मुझे उसका मुँह बिचकाना अच्छा नही लग रहा था फिर भी उसका बयान जारी था—"कुलटा के याँ अबे बी नवा-नवा मनख थाला जाता ई रेवे हे। ना जात को पतो ना ठोर को ठिकाणो। मने तो या छोरी बी पाप की कमाई लागे। एक दन जावे जो तीन तीन दन ताईं पेंतो नी लागे। अणी गाम म तो उण ने कोई मूडे नी लगावे। मूडे लगाई डूमडी गावे हरग पताल।'

मैं वहाँ लगभग दो वर्ष तक रहा पर कभी उसकी माँ को नही देखा। वह पास के शहर म जाया करती थी और अपना अधिकाश समय वही बिताती थी और कई बार रात्रि भी। जाने क्यो उसे अपनी फूल जैसी लडकी से भी कोई लगाव नही था। हो सकता है वह उसे अपनी वासना पूर्ति के रास्ते मे बाधक समझती हो या । खैर इस बारे मे मैं साफ-साफ कुछ नही कह सकता।

बीरखेडी गाव म तीन दिन ठहरने के बाद मैं पचायत समिति कार्यालय मे शाला का आवश्यक सामान लेने के लिये गया। रविवार को घर रुकता हुआ तीसरे दिन वापस गाँव पहुचा। साथ मे बच्चो के लिए कुछ स्लेटें और किताबें भी लेता गया था।

अब की बार घन्टी बजाने पर करीब पन्द्रह बीस छात्र इकट्ठे हो गए। आज भी सबसे पहले वही बालिका आई थी जो पहले दिन आई थी। कुछ बालको के पास नए झोले, स्लेटें और रग-बिरगी पुस्तकें थी लेकिन ममता के पास न तो स्लेट थी न ही पुस्तक। कमीज भी उसने वही पहन रखा था। अब तक मैं उसके बारे में बहुत कुछ जान चुका था। स्वभावानुसार मुझे उस पर बडा तरस आया और एक स्लेट पोथी मैंने उसे दे दी।

यद्यपि उसकी माँ ने गाँव वालों से कह रखा था कि उसे अपनी छोकरी

पढा लिखा कर वकीलानी नही बनाना, फिर भी ममता नियमित रूप से पाठशाला आती और सबसे पहले आती। मेरी समझ मे वह शायद ही कभी लेट आई हो। शाला मे समय से पूर्व आकर झाडू लगाना, दरियां बिछाना मेरे लिए आसन बिछाना, रजिस्टर लाना, श्यामपट्ट साफ करना और घन्टी बजाने से लेकर शाम को छुट्टी के पश्चात् सारा सामान यथास्थान रखने के कार्य को उसने हमेशा दौड-दौड कर किया।

कई बार ना-ना करते हुए भी वह मेरी कोठरी तक की सफाई अपने नन्हे-नन्हे हाथो से कर दिया करती थी। मेरी आज्ञा पाकर उसे पूरी करने मे उसे असीम आनन्द प्राप्त होता था। कई बार तो मेरे मुँह से शब्द निकलते ही काम पूरा हो जाता था।

वह मेरी बात बडे ध्यान से सुनती। मेरी ओर देखती रहती। मानो जरा सी देर मे मेरी सारी विद्या सीख लेना चाहती हो। कक्षा मे पचास वर्ष की बूढी की तरह बैठकर अपना काम करती रहती। लडकपन की चचलता के दर्शन उसमे कभी नही हुए। उस गभीर जलधि मे मैंने कभी उफान आता नही देखा। उसने मुझे कभी नाराज होने का मौका नही दिया।

और बालक शाला समय मे पाँच-दस बार पानी पेशाब की छुट्टी माग लेते थे। पर वह उफ तक न कहती। यहाँ तक कि आधी छुट्टी मे भी चुपचाप बैठकर अपना काम करती रहती।

उसकी बुद्धिलब्धि बडी तीव्र थी। वह अपना सबक सबसे पहले याद कर लेती थी। उसकी प्रखर बुद्धि पर मुझे आश्चर्य होता था। मेरा वाक्य ब्रह्म वाक्य मान कर वह उसका पालन करती थी। अब भी सोचता हू यदि ऐसे विद्यार्थी मुझे मिल जाए तो पाठ्यक्रम के अनुसार वर्ष मे दो कक्षाए पढा दू।

एक बार मैने बालको से कहा कि रोज नहाना चाहिये। गन्दगी से कई बीमारियां पैदा हो जाती हैं। दूसरे दिन सब छात्र नहा कर साफ कपडो मे पाठशाला आए। ममता नहा कर तो आई थी पर कपडो के नाम पर उसने वही फटा और गन्दा कमीज पहन रखा था। मैंने उसे डाटा तो उसकी आँखो से टप-टप आँसू टपकने लगे। वह बोली कुछ नही। अपराधिनी की भाति कातर निगाहो से मेरी ओर देखने लगी। मुझे अपनी भूल तब मालूम पडी जब ज्ञात हुआ कि दूसरे का दिया हुआ उसके पास बस यही एक फटा पुराना कमीज था। मन पश्चाताप की अग्नि मे जल उठा।

अपने आपको सान्त्वना देने के लिये मैंने दो फ्राक और कच्छी लाकर उसे दे दी। और बालको ने तो कुछ दिन बाद नहाना छोड दिया लेकिन वह पास की छोटी नदी मे रोज नहा कर थरथराती हुई पाठशाला आती। कडाके

की ठड मे भी उसने अपना नियम नही तोडा। कहा कोट, कहा कबल। शीत ज्वर ने उसे घेर लिया। ज्वर बढता गया। १०२° के बुखार मे भी वह रोजाना पाठशाला आती, बैठती, ऊघती और मेरे घुटने से मस्तक लगाकर बेसुध सी सो जाती, मानो मैं उसका बडा भाई होऊ। उसका अगारे-सा तपता वदन, जलते हाथ मेरे शरीर मे ममता की बिजली दौडा देते। मैं उसे वही लिटाकर सरदी से बचाने के लिए उस पर चादर या नई दरी पट्टियाँ डाल देता था। उपचाराभाव मे उसे निमोनिया हो गया। अगर मैं डॉक्टर को नही लाता तो शायद वह मुझे सदा के लिये छोडकर चल देती।

उससे प्रसन्न होकर मैंने उसे कक्षा का मॉनीटर बना दिया। उसके कार्य व्यवहार ने मुझे बडा प्रभावित किया। मेरे मन मे उसके लिये बडा आदर और प्यार था। उसने भी अमृतोपम बाल सुलभ प्रेम की गागर मुझ पर उढेल दी थी।

वह अक्सर मुझसे किताब और स्लेट की कीमत पूछती रहती थी जो मैंने उसे दी थी। परन्तु मैंने कभी उससे पैसो की अपेक्षा नही की थी। उसके पूछने पर कह देता—"पैसो की तुम्हे क्यो फिकर लगी है, तुम्हारी माँ से ले लेंगे"

कई बार शहर से उसकी माँ नही आती तो उसे भूखी ही रहना पडता था। वह किसी से कुछ माँगती नही थी। फाके कर लेती पर हाथ नही पसारती। किसी को मालूम तक नही होता कि यह नन्ही जान क्या खाकर जी रही है। मालूम पडने पर हठ करके मैं उसे भोजन करा देता। ऐसा लगता था कि वह मुझे पल भर के लिए भी छोडना नही चाहती। मुझे भी उसको प्रसन्न देखने म पर्याप्त सन्तोष होता था लेकिन वह थी कि हमेशा उदासी म डूबी रहती। शायद ही मैंने कभी उसे हँसते देखा हो। कई बार मैंने उसको हँसाने की कोशिश भी की पर जबर्दस्ती होठो पर लाई गई उसकी मुस्कान मे दिल दहलाने वाला अपूर्व रहस्य छिपा हुआ था। ऐसा मैंने कई बार महसूस किया। ऐसा लगता था मानो विधाता की सुन्दर कलाकृति भूल स पत्थरो के देश म आकर अपने भाग्य पर आँसू बहा रही हो।

दीपावली की छुट्टियो म गाँव छोडने की इच्छा नही थी परन्तु आवश्यक कार्य से मुझे बाहर जाना पडा। छुट्टियाँ बिताकर गाँव आया तो ममता का शरीर क्षीण हो चुका था। उसे इस हालत मे देखकर बरबस आँखें छलछला आई। उसमे सबसे बडी खोट यही थी कि वह भूखी रह जाती पर किसी के सामने मुँह तक न खोलती।

बाद मे मालूम पडा कि अवैध गर्भ रहने से उसकी माँ उसे अकेली छोड कर किसी अन्य के साथ न जाने कहाँ भाग गई थी। फूल-सी ममता ने एक

अच्छी-बुरी माँ से भी हाथ धो लिए। इतने बड़े ससार मे अपना कहने वाला अब उसका कोई नही था।

जब तक मैं गाँव मे रहता उसे भोजन कराता और जब अपने घर जाता तो उसकी चिन्ता लगी रहती थी। षण्मासिक परीक्षा म वह प्रथम आई और वार्षिक परीक्षा मे भी।

समय जाते क्या देर लगती है। चौदह मई का दिन, लास्ट वर्किंग डे, पन्द्रह मई से ग्रीष्मकालीन अवकाश प्रारभ होने वाला था। असीम दुख हुआ था मुझे गाँव छोडते हुए और ममता ! उसका तो जैसे ससार ही उजड रहा हो। जब उसे मालूम पडा कि मास्टरजी डेढ महीने की छुट्टी लेकर जा रहे हैं तो उदासी मे डूबी हुई मेरे पास आई। मेरे हाँ कहने पर उसका नन्हा-सा हृदय टूट-सा गया। वह कुछ नहीं बोली बस मेरी तरफ देखती चली गई। इतनी मूक और हृदय को पानी कर देने वाली दृष्टि मैंने आज तक नही देखी जो शारीरिक माँस मज्जा को वेधकर सीधे हृदय के वेदना कूप मे उफान ला देती है।

देखते-देखते सहसा उसके अपलक नेत्रो से गगा-यमुना-सी अश्रुधाराए उमड पडी। अपनी मा के जाने की खबर सुनकर भी वह इतनी नही रोई थी। मैंने उसे बहुत समझाया—"पगली ! मैं जल्दी ही वापिस आ जाऊगा। डेढ महीने का समय जाते क्या देर लगती है। समय मिला तो बीच मे भी एकाध बार आ जाऊगा, इस तरह मन छोटा नही करते।"

वह मुझे ऐसे देख रही थी मानो मैं गाँव से नही उसकी दुनिया से हमेशा के लिए दूर, बहुत दूर जा रहा होऊ। फाँसी के तख्ते पर लटकने से पहले दो भाई-बहनो के विलाप से भी करुण दृश्य उस समय उपस्थित हो गया जब मैं झोला लेकर चलने को हुआ। दिल पर पत्थर रखकर गांव की ओर पीठ करके मैंने कदम बढा दिये।

सडक वहाँ से तीन मील दूर पडती थी। वहाँ तक पैदल गया। सारे रास्ते मस्तिष्क मे ममता की निर्दोष सूरत घूमती रही। बस मे बैठा तो आँखें डबडबा आई। सर भारी हो गया मानो उस पर मनो बोझ पडा हो। घर पहुचा तो सबने पूछा—"क्यो रे तेरा मुँह क्यो उतरा हुआ है ! क्या बात है ?"

मैं चुप रहा, क्या उत्तर देता।

छुट्टियों मे मैं ममता को भुला नही पाया। जब भी उसकी याद आती हृदय प्रेम और दया से भर जाता। अपने खेब खर्च मे कटौती करके मैंने ममता के लिये दो जोडी अपनी पसन्द के कपडे सिलवाए और ठीक सी चप्पलें भी लेकर रख ली।

हमारे पडौस मे एक बेवा ठाकुराइन रहती थी। जमीन जायदाद सब कुछ थी पर आगे-पीछे अपना कहने के नाम पर उनका कोई नही था। सारी

जवानी औलाद के लिये तरसते हुए बीत गई और एक दिन ठाकुर सा'ब भी इसी सदमे म परलोक सिधार गए। ठकुराइन काकी के सामने जब मैं ममता की प्रशसा करता तो उनका मुरझाया चेहरा चमक उठता। एक दिन उन्होंने मेरे सामने ममता को उनके पास रखने की बात कही। मैं मारे खुशी के उछल पडा। ऐसा लगा जैसे दिल का सारा भारीपन हवा हो गया हो। उस समय मुझे इतनी प्रसन्नता हुई जितनी कि कोई अच्छा वर ढूढ कर अपनी बहन के हाथ पीले करते हुए किसी भाई को होती है।

जैसे-तैसे छुट्टियाँ पूरी हुई। और साला तो जोलाई म वर्षा हो जाती थी तथा किसान खेतो मे बीज डाल देते थे परन्तु उस वर्ष पानी का छीटा भी नही पडा। शरीर झुलसाने वाली गर्मी से चारो ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। अनाज बाजार से एकदम गायब हो चुका था। गाव वाले किसी भी कीमत पर अनाज बेचने को तैयार नही थे। स्थान-स्थान स अनाज की दुकानें लुटने के समाचार आ रहे थे।

ग्राम के निर्जन ऊबड-खाबड रास्ते पर चलते हुए इन सब परिस्थितियो के बीच ममता की स्मृति हो आई तो कलेजा काप उठा। गाँव वालो का उसके प्रति व्यवहार मुझसे छिपा नही था। वे लोग उसे जानवर स भी बदतर समझते थे। मैंने कई बार देखा था, कुत्ते लड-लडकर रोटियाँ खाते रहते थे और वह भूखी बालिका टकटकी लगाए उनका मुह चलाना देखती रहती थी। जल पीने के लिये भी उसे नदी तक जाना पडता था। वह बेचारी कहाँ सोती होगी, इस महगाई मे उस उपेक्षिता को कौन रोटी देता होगा। उसका वहाँ है कौन !

वह नन्ही-सी जान अपनी जीविका के लिये कर भी क्या सकती थी।

अजीब उलझना के उतार-चढाव मे लुढकता गाँव पहुँचा। घण्टी बजाई। सब बालक आ गए परन्तु जिसे सबसे पहले आना चाहिये था वह सबसे बाद मे भी नही आई। जिसे देखने के लिये अखियाँ प्यासी थी जिसे गोद मे लेने के लिये हृदय की प्रेम-गगा छलछला रही थी, जिसकी अमृतमयी वाणी सुनने को कर्णेन्द्रियाँ तरस रही थी, उसकी कूक नही सुनाई दी। उसके दर्शन नही हुए।

चित्त तडप उठा। बात को मै अधिक देर तक नही रोक सका। एक लडके से पूछ ही तो लिया—'क्यो रे ! अपनी ममता मानीटर नही आई रे ! कहाँ है वह ?"

लालू कुछ देर तक चुप रहा, फिर बुझी-सी आवाज मे बोला—"वह तो मर गई सा'ब।'

"म म'''र'''ग ईSSS'''!" चेतना पर जैसे वज्र प्रहार हुआ हो। हृदय पर करोडो बिजलियाँ गिर पडी हो। चेहरे पर स्याही छा गई, गला

भर आया। सारे शरीर को जैसे साँप सूंघ गया हो। बैठने लगा तो स्टूल पर से गिर पड़ा। आँखों के आगे अंधकार की मोटी-सी परत छा गई।

यह खबर सुनने से पहले मुझे गोली से उड़ा दिया होता, जिंदा दफना दिया होता, आग में झोंक दिया होता या पहाड़ पर से फेंक दिया होता तो कितना अच्छा होता! कुछ समय के लिये मैं अपना संतुलन खो बैठा और बड़बड़ाने लगा—"ममता मरी नहीं, मारी गई है लालू! वह इतनी जल्दी नहीं मर सकती।"

"हाँ साहब, कोई उसे रोटी नहीं देता था। सब कोई दुतकार कर भगा देते। वह किसी से कुछ माँगती नहीं थी। बेचारी भूख के मारे मर गई।"

"इतने बड़े गाँव में भूख के मारे मर गई ममता! नन्ही-सी ममता जिसका एक रोटी में पेट भर जाता था।"

"साहब! वह रोज नहाकर आती थी। बड़ के पेड़ के नीचे बैठ कर आपकी दी हुई स्लेट पोथी से पढ़ती रहती थी। किसी से कुछ माँगती नहीं थी। शाम को वहीं सो जाती। एक दिन नहाकर आई तो पढ़ने नहीं बैठी। बड़ के पेड़ के नीचे पट पकड़ कर कुछ देर बैठी फिर घुटने पेट से लगाए सो गई। दिन भर सोती रही, शाम को नहीं उठी, रात भर सोती रही। दूसरे दिन भी दोपहर तक सोती रही। नहाने तक नहीं गई। गाँव वाले इकट्ठे हो गए। चमार ने उसे दिखाया तो वह न जाने कब की मर चुकी थी सा'ब"··· कहते कहते लालू भी रो पड़ा। पाठशाला के सारे बालक रो उठे। मेरे नयनों के भी सारे के सारे तटबन्ध टूट कर धराशायी हो गए थे और उनमें रुका हुआ खारा पानी दिशाहीन होकर बह चला था।

छीतर सिसकता हुआ बोला—"साहब उसने आपकी स्लेट और किताब के पैसे देने के लिये इकट्ठे कर रखे थे। बार बार पूछती थी—"गुरुजी साहब कब आएंगे, उनके पैसे देने हैं।" आपको बहुत याद करती थी साहब। उसने हमारे साथ घास खोदकर पैसे इकट्ठे किए थे। मैंने सब पैसे खा लिये लेकिन उसने एक पैसा भी नहीं खाया।

मरने से एक दिन पहले मेरे हाथ में पैसे देकर बोली थी—"गुरुजी सा'ब को दे देना।"

छीतर ने जेब से निकाल कर चार-चार आने के दो सिक्के मेरी हथेली पर रख दिये।

"मेरे पैसे! ममता न दिये!" मैं बच्चों की तरह फफक-फफक कर रो पड़ा।

मेरी वाणी छिन चुकी थी। हृदय टूट चुका था पर इससे क्या? मेरी अनुपस्थिति में कोई मुझको याद करता हुआ चला गया। दूर, बहुत दूऽऽर

जहाँ से आज तक कोई वापस नही आया।

वह मेरी मा की कोख से नही जन्मी थी। न ही उसने मुझे राखी बाँधी थी। इस जन्म की वह मेरी कोई भी नही लगती थी, पर हो सकता है पूर्वजन्म की मेरी बहन हो, माँ हो, इतना तक कहने म मुझे कोई सकोच नही।

अपनी तरफ से मैंने उस अबोध बालिका को श्रद्धाजलि अर्पित की। उसकी आत्मा के लिये शान्ति की कामना की।

समाज अपनी लापरवाही से ऐसी ही न जाने कितनी लक्ष्मी, रजिया, सीता और सावित्रियो को खोकर भी अपनी भूल का अहसास तक नही कर पाता।

इन दो सिक्को म मुझे ममता की सलोनी सूरत का आभास होता है। भूखे पेट घास खोद कर उसने इन्हे मेरे लिय बचाकर रखे थे। जब-जब भी मुझ पर सकट आया मैंने इन्ही सिक्को का सहारा लिया। सच कहता हूँ मित्र, मेरे ऊपर कोई आँच नही आई।

अब तो ममता की राख भी नही बची होगी, परन्तु मेरे हृदय-मन्दिर के सर्वोच्च आसन पर उस नन्ही-सी देवी की कोमल मूर्ति अब तक विराजमान है, और हमेशा रहेगी।

तब से आज तक मैं कई स्कूलो मे रह चुका परन्तु उस जैसी सहृदया, गभीर, आज्ञाकारिणी और प्रभावशील ममता की प्रतिमूर्ति के मुझे आज तक दर्शन नही हुए। मैं हर चेहरे मे उसको ढूढता हूँ, हर नेत्र मे उसकी छवि निहारने का प्रयत्न करता हूँ पर वह इस प्रकार विभाजित हो चुकी कि मैं उसको पहचान नही पाता।

चोर

□ चुन्नीलाल भट्ट

"सेठजी ! थोडी दया करो। इतना ब्याज तो कमर तोड देगा · बाल-बच्चे-दार हू, सेठजी !"

'अरे तू समझता चाहे को नही···चार टका तो मेरे सगे बाप से भी लेता हू···फिर रुपया कोई मेरे घर चोरी से तो आता नही·· मैं भी भई ! बाल-बच्चेदार हू· ·" नम्बरी चश्मे को एक अगुली से ऊँचे कर धीरे से एक आँख दबाते हुए सेठजी कहने लगे—"यही गनीमत समझो भई, जो सरकार के ऐसे तगडे कायदों के बाद भी ब्याज पर तुम्हे रुपया दे रहा हूँ, वरना सगे बाप को भी ना कर देता हूँ एक बार तो, समझे ?"

—ग्राहक बेचारा चुप हो गया। वह हिसाब कर चलता बना।

"अरे कालू ! देख तो इधर !"

सेठजी की आवाज सुनते ही उनका विश्वास पात्र पुराना नौकर दौडा आया।

"देख, इस बही को अन्दर भौंरिए वाली तिजोरी मे रख दे···आजकल बडी धर-पकड चल रही है भई !···और हा, इधर देख, वो जो दस बोरे चावल बाहर पडा है उस भी दो नम्बर के गोदाम मे डाल देना, बिना-हिसाब-किताब का माल जो ठहरा·· जरा होशियार रहो भई ! नही तो सब हडप ले जायेंगे साले, जैसे उनके सगे बाप का माल हो।" कहते हुए सेठजी शयनकक्ष की ओर बढने लगे।

"चोर···चोर···चोर···दौडो···पकडो···" तभी एकाएक पूरे मौहल्ले मे कोलाहल मच गया। बाहर अपने-अपने आँगन मे सोए लोग जाग उठे।

एक आदमी अपनी बाहों में जोर से एक बूढ़े को भींचे चिल्लाता हुआ उसकी ओर आ रहा था—पकड़ लिया है साले को···सेठजी ! आपके घर के पिछवाड़े से कूदते हुए पकड़ा है इसे···"

"मेरे घर के ! क्यों रे, कौन है तू ?" आवेश में घूमते सेठजी चिल्लाए।

मगर वह कुछ नहीं बोला।

"क्या नाम है तेरा ?"

"···"

कहां का है ? क्यों घुसा था अन्दर ?

लेकिन उसने मुंह तक नहीं खोला। जिसने पूछा उसके मुंह की ओर ताकता रहा।

'गूंगा बन बैठा है साला, चोर कहीं का।' कहते हुए कोई प्रत्युत्तर न पाकर भरे हाथ से दो चार थप्पड़ कस दिए। चीत्कार निकल पड़ा और चक्कर खाकर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा।

अन्धकार में चेहरा तो साफ नहीं दिखाई दे रहा था। सिर्फ दर्द से कराहने की ध्वनि ही रात्रि की नीरवता में प्रतिध्वनित होती सुनाई दे रही थी।

"अभी कुछ नहीं बोलेगा यह· ऐसा करो इस रस्सी से इस खम्भे से बांध दो।"—भीड़ में से एक समझदार आवाज उभरी।

हाँ ठीक है यही तरकीब फिर देखते हैं साले को ·" और मौहल्ले के बीचों-बीच लगे एक बिजली के खम्भे से उसे एक मोटी रस्सी से बाँध दिया।

अब जिसके जी में आया खम्भे से बँधे उस बेसहारा प्राणी पर, कोई घूसों से तो कोई थप्पड़ों से, मनचाहे ढंग से प्रहार करने लगे। मगर वह सब सहता जा रहा था एक मूक प्रस्तर-प्रतिमा की भांति ।

झुर्रियों से भरे चेहरे की काली-काली त्वचा पर कुछ पसीने की बूंदें उभर आई थी। जो धीरे-धीरे एकजुट होकर मुंह में धँसे गालों पर से लुढ़क कर जमीन पर गिर रही थीं। बदन पर एक मैला कुर्ता जो दीमक लगे कागज की तरह जगह जगह फटा हुआ था पहन रखा था। पीठ पर उभरी रक्तरंजित लाल लाल रेखायें जो सूजकर फूल चुकी थीं, फटे कुर्ते से साफ-साफ दिखाई दे रही थीं।

लेकिन फिर भी उसकी शून्य सी आंखें लोगों को घूर रही थीं। नेत्रों में कहीं भी आंसू की एक बूंद तक नहीं थी। मानो सारे सूख चुके हों।

"साले को मार-मार कर थक गए लेकिन मुंह तक नहीं खोलता, गजब का चोर है यह तो··।'

"अब तो इसे पुलिस को सौंपो'''जाओ एक आदमी जाकर पुलिस-चौकी सूचना देकर आओ।"—पास खड़े एक साहब बोल उठे।

साहब को देखते ही सेठजी ने थोड़ा सिर झुकाकर अभिवादन किया। ये साहब सेलटैक्स इन्स्पेक्टर थे।

लेकिन बूढ़े का चेहरा तन गया। शून्य सी शुष्क आखें कुछ सजग होकर साहब की ओर देखने लगी। उसकी नजरो ने साहब के नेत्रो मे झाकना चाहा, मगर वे उससे अपनी निगाहे नही मिला सके। बूढ़े की तीक्ष्ण नजर उनके चेहरे पर से होती हुई खूबसूरत 'नाईटसूट' से ढँके बदन के सहारे जमीन पर लुढ़क गई। तभी ठण्डी-ठण्डी हवा का झोंका आया। धूल के कण उड़े। साहब अपने वस्त्रो को झाड़ते हुए वहा से चल पड़े।

बूढ़ा-चोर, लम्बे समय से निर्जीव सा बिजली के खम्भे से बँधा कभी अपनी मुरझाई पलकें उठाकर लोगो के झुण्ड की ओर देखता तो कभी सामने वाले घर के पिछवाड़े मे लगे पपीते के पेड़ से झड़ते सूखे पत्तो को देखकर ठंडी आह भर लेता।

हेड कास्टेबल चोर के सामने खड़ा हो टकटकी लगाए उस के चेहरे को देखता रहा। लोगो को उसके इस तरह देखते रहना एकदम रहस्यमय लगा।

"क्या नाम है तेरा?"—तीखे स्वर मे हेड कास्टेबल ने उससे पूछा।

" · ···" लेकिन उसने कोई प्रत्युत्तर नही दिया। खम्भें से बधें हाथो ने कुछ हिलना चाहा। लेकिन रस्सी मे कसी दुर्बल भुजायें पलभर मे ढीली पड गईं। सिर्फ उसकी पुतलिया थोड़ी सी झपक सकी, मगर उसकी भाषा को कोई समझ नही सका।

"साब, बड़ा गुण्डा है· मार-मार कर थक गए हम, लेकिन जबान तक नही खोलता।" सेठजी ने आवेश मे आते हुए कहा।

"खोल दो रस्सी को · " एक तीक्ष्ण नजर सेठजी पर डालते हुए हेड-कास्टेबल ने कहा।

बन्धन ढीले होते ही बूढ़े ने जोर से साँस ली।

"आओ मेरे साथ!" हेड कास्टेबल ने खँभे से अलग होते ही बूढ़े का हाथ थाम लिया और सेठ के घर के पिछवाड़े ले आया, जहाँ परकोटा लाघते हुए उसे पकड़ा था।

"चढो इस पर! कैसे, कहाँ से चढे थे?" हेड कास्टेबल ने तीन मीटर ऊँची सीमेंट पोती दीवार लाघने का आदेश दिया।

बूढ़ा तुरन्त दीवार में लगी खरोंचों मे अपना पैर फँसाकर फुर्ती से दीवार के ऊपर चढ गया। मालूम नही क्या सूझा उसे, वापस उतरने के बजाय अन्दर की ओर कूद पड़ा। लोग हक्के बक्के से देखते रहे। कुछ समय पश्चात् एकाएक

एक आदमी के मुह से चीख निकल पडी—"देखो उधर, वह भाग गया।" लेकिन तब तक वह दूसरी तरफ की दीवार कूद कर भाग चुका था।

हेडकांस्टेबल सहित कई लोग उसके पीछे दौड पड़े।

फटे कुर्ते से किसी चीज को लपेटे एक हाथ मे मजबूती से पकडे वह तेजी से भागे जा रहा था। पता नही उसकी जीर्ण-शीर्ण काया मे इतना सारा सवेग कैसे उत्पन्न हो गया था। पीछा करने वाले कुछ लोग तो हाँफ कर रह गए और कुछ बिजली की मद्धिम रोशनी मे ठोकरें खाते हेडकांस्टेबल के साथ दौडते रहे।

बूढा चोर, दौडते-दौडते एक हरिजन बस्ती मे घुस कही अदृश्य हो गया।

हेडकांस्टेबल हक्का-बक्का सा खडा इधर-उधर ताकता रहा। दौडने वाले लोग भी उसके पास खड़े खुसर-फुसर करने लगे— 'देखो, पहले ही कहा था न ! बडा बदमाश है साला। मौका मिलते ही भाग जायेगा।"

लेकिन हेडकांस्टेबल एक-एक झोपडी तलाशता हुआ आगे बढता रहा।

सहसा एक झोपडी मे सिसकने की हल्की-हल्की आवाज सुनकर रुक गया। दरवाजा भीतर से बन्द था। धीरे मे झटका दिया उसने। बाँस की पट्टियो का बना किवाड अलग होकर अन्दर की ओर गिर पडा।

भीतर पहुचते ही हेडकांस्टेबल एकाएक झेंप गया।

घासलेट के धुएँ से भरी झोपडी के एक कोने मे दीया टिमटिमा रहा था। एक टूटी शैय्या पर आठ—दस साल का बच्चा चिथडो मे लेटा निर्जीव सा होकर पडा था। उसके सिरहाने से अपना सिर टिकाकर वही बूढा चोर अपने हाथो मे एक अधपका 'पपीता' लिए उसकी बन्द आँखो मे झाँक रहा था। पास मे बैठी एक अधेड उम्र की महिला बार-बार अपने बच्चे के सिर को हिला-हिलाकर पुकारती थी—"बेटा भगू !···भगू···देख पपईया (पपीता) लाये तेरे बाबा···आँख तो खोल बेटा··· देख बेटा···भगू···बेटा देख तो।"

थोडी सी पलकें झपकी।

बूढे की शरीर मे एक तरग-सी दौड पडी। हाथ मे पकडा पपीता उसकी आँखो के पास तक ले गया। लडके की आँखें धीरे से खुली।

एक नजर पपीते पर और एक बूढे बाबा पर डाली। बूढा एकदम आश्वस्त हो गया। पलभर के लिए उस असह्य वेदना को भूल गया। जो बिजली के खम्भे से बँधा अब तक सह रहा था। पीठ पूरी रक्तरजित थी। काले-काले निशान और उन पर सूखकर जमे हुए खून पर मक्खियाँ भिनभिना रही थी, मगर उसे कहा परवाह थी इसकी। बल्कि चेहरे की तनी हुई झुर्रियाँ तो उसकी सफलता का सकेत दे रही थी।

लेकिन तभी बच्चे की गर्दन झटके से लुढक पडी। बूढे के मुह से लम्बी जोरदार चीख निकल पडी।

दुनिया मे उसका एक-मात्र सहारा हर हमेशा के लिए उससे विदा ले चुका था। चारपाई पर बैठी बच्चे की मा अपने बेटे के मृत-शरीर से लिपटी फूट-फूटकर रो रही थी।

बूढा कास्टेबल, इस करुण दृश्य को फटी आखो से देखता रहा। शायद उसने अपनी पच्चीस वर्षों की पुलिस-सेवा मे ऐसा केस पहली बार ही देखा हो। लेकिन यह केस तो अभी भी उसके लिए एक पहेली ही बना हुआ था।

"हा बेचारा गूंगा है!—खपरेली दीवारो से प्रतिध्वनित सिसकियो के बीच एक मोटी सी आवाज उभर आई, जो शायद बाहर खडे लोगो के पूछने पर उन्हे बता रही थी—"मगर साहेब! बहोत दयालू हैं···दस बारा बरस से इसी वस्ती मे रेता है···साहेब बिचारे का आगा-पीछा कोही नाही···सिरफ अकेला है साहेब···साहेब···इस बच्चे से बहोत परेम करता था जबी से इये बच्छा बीमार था साहेब! इये गूगा रात भर इसी के नजदीक बैठा रेता·· आज तो इस बबछे से बुखार-बुकार मे पपईया खाने के वास्ते मागा·· भला इत्ती अन्धेरी रात मे औरत की जात पपईया कहा से लाये साहेब!···मगर साहेब! इस गूगे को क्या सूझा पता नही···उसी अन्धेरी रात मे झोपडी से बाहर निकल और शैर की तरफ चल दिया···अबी जब साहेब! इये गूगा पपइया लेके वापिस आया तो साहेब·· तो साहेब इये बच्छा···कहते-कहते उसका गला भर आया था।

लोग एक-एक कर वहा से खिसक चुके थे। अब न तो वहा सेठ था···न ही सेलटैक्स इन्सपेक्टर··। सिर्फ बूढा हेड कास्टेबल झोपडी के दरवाजे पर अविचल खडा था···शायद अपने बुढापे ने उसे यही खडे रहने को मजबूर कर दिया था।

तभी बूढे ने अपना सिर धीरे से ऊपर उठाया।

उसका पूरा शरीर शिथिल पड चुका था। नेत्रो मे आसू सूख चुके थे। नसें तन जाने से पूरा बदन झकड गया था। दोनो-हाथ जमीन पर टेककर बडी हिम्मत कर उठा और दरवाजे पर खडे बूढे कास्टेबल के सामने दोनो हाथ फैलाकर खडा हो गया। नजरें हेडकांस्टेबल के हाथ मे पकडी हथकडी पर थम गई।

हेडकास्टेबल के हाथो मे पकडी हथकडी थरथरा उठी, मगर बूढा चोर एकदम तटस्थ हो धैर्य और स्थिरता के साथ हाथ फैलाए उसके सामने खडा था।

प्यार का व्याकरण

☐ भगवतीलाल व्यास

यह जेठ महीने की एक जलती-उजलती दोपहर का जिक्र है। मैं बरसो बाद उस गाँव की गलियो से गुजर रहा था जिसमे कभी मेरा बचपन बीता था। वह तीस साल पुरानी बात होगी। इन तीस वर्षों मे गाँव मे कुछ भी नही बदला था। वैसा ही धल भरा रास्ता। गली के मोड पर हीरा तँली की पोल मे जुगाली करता बूढा और मरियल बैल। उससे थोडा आगे बढ कर रमजू ताँगे वाले का मकान और फिर गणेशा मोची की दूकान। कुछ भी नहीं बदला है। सब कुछ वही है। शायद हीरा तैली की घाणी खीचने के लिए दूसरा बैल आ गया हो। रमजू का ताँगा अब उसका बेटा इब्राहिम चलाता है। उसने अपने ताँगे म फिल्मी एक्ट्रेसो की तस्वीरें भी लगा दी हैं और गणेशा मोची ने देशी जूतो को ताक म रखने की बजाय दीवार पर कीलियो के सहारे टागना शुरू कर दिया है। शायद देशी जूतो के साथ-साथ अब वह कारखानो मे बने रबड के जूते भी रखन लगा है। जब स गाँव का चमडा ऊँचे दाम पर शहर मे बिकने लगा है देशी जूता ग्राहक का भारी पडता है और वह बरसाती जूता से बारह महीने निकालने लगा है। इसीलिए गणेशा ने रबड के जूते भी रखने शुरू किए हैं। इसम झिक झिक भी कम है और आमदनी अच्छी है। बस, इसके सिवा कुछ नही बदला है। राजस्थानी गाँव–राजस्थानी ही क्यो, कोई भी हिन्दुस्तानी गाँव इससे अधिक बदल भी नही सकता। गाँव की नीवें गहरी होती हैं और दरख्तो की जडें मजबूत। शहरी पेडो की जात ही दूसरी होती होगी। वे बहुत जल्दी उखड जाते हैं। शायद बदल भी जाते है।

हाँ मैं बहुत बदल गया हूँ। शहर जाकर गाँव का आदमी मौसम की

तरह बदल जाता है। मिजाज मे वह कितना बदलता है, यह बात अलग है पर दीखने मे वह जरूर बदल जाता है, ऐडी से चोटी तक। मुझे ही लीजिए, तीन रुपये की देशी जूता जोडी पर चार आने का नियमित तिल्ली का तेल चुपडने के बाद साल भर की छुट्टी हो जाती थी। अब तीन रुपयो की तो पॉलिश हो जाती है सप्ताह भर मे। टेरीकॉट की बेहतरीन पेन्ट और पॉलिस्टर की शर्ट पहन, धूप का चश्मा लगाए गाँव की सम्पूर्ण पृष्ठभूमि मे अजनबी सा लग रहा हू। तेज धूप के कारण पसीने की बूँदें मेरे पाउडर पोतित चेहरे पर चुहचुहा आई है। पसीने और पाउडर की मिश्रित गन्ध कैसी अजीब सी लग रही है। मेरे नथुनो मे गाँव की मिट्टी की गन्ध घुस रही है और मुझे भली लग रही है। आज पहली बार जाना कि गन्धो का भी अपना व्यक्तित्व होता है जो परिवेश के साथ बदल जाता है। हाथ मे लटकी अटैची मे और ज्यादा परेशानी का अनुभव कर रहा हूँ। मगर क्या किया जाये, मजबूरी जो ठहरी। पहले सोचा था इस मौके पर अजित को भेज दूँगा पर न जाने रूपा जीजी को कैसा लगे, यह सोच कर खुद ही चल पडा।

पिछले महीने के आखिरी रविवार की ही तो बात है। सो कर उठा ही था। बगले के लॉन पर टहलता हुआ ब्रश कर रहा था कि एक ताँगा आकर फाटक पर रुका। ठेठ देहाती वेशभूषा मे एक अधेड महिला ने बगल मे गठरी दबाये हुए अन्दर प्रवेश किया। पोर्च मे बैठा हुआ टॉमी सजग हो गया। गनीमत थी कि वह जजीर से बधा था। पहले क्षण तो मैं भी नही पहचान पाया लेकिन उसने मुझे देखते ही पहचान लिया—"अरे भाया, बँगलो घणो छेटी बणायो रे।" उसने बडी सहजता से गठरी वही लॉन पर रखदी और मुझे लाड करने के लिए आगे बढी। अब मैं पहचान गया था कि वह रूपा जीजी है। मैं मस्कार-वश उसके चरणों मे झुकने को उद्यत हुआ पर उसने मौका ही नही दिया। बीच मे ही मुझे थाम कर मेरे गालो पर हाथ फिराने लगी। एक वात्सल्यपूर्ण ठेठ आत्मीय स्पर्श जिसमे मेरा सारा साहबी रोबदाब बह गया था। हेज की कटिंग करता माली भी यह दृश्य देखकर भौंचक्का रह गया था। टॉमी अब शान्त होकर पंजो मे मुँह दबाये ऊँघने लगा था। पत्नी तथा बच्चे अन्दर थे।

मैंने उलाहने के स्वर मे कहा—"तुमने कागज क्यो नही लिखवा दिया जीजी, मैं स्टेशन पर लेने आ जाता। बडी परेशानी हुई होगी तुम्हे यहाँ तक पहुचने मे।" जीजी ने आर्द्र हो आए नेत्रो को ओढनी से पोछ कर मुस्कराने का प्रयास किया और बोली—"नही रे, जरा भी प्रेसानी न्ही वी मनै।" कुशल-

बेटी राधा की शादी थी और वह हम सबको पन्द्रह दिन पहले लेने आ गई थी। उस सरल हृदय को क्या मालूम कि हम शहरी लोगों को शादी-ब्याह के लिए इतना अवकाश नहीं मिलता। मैंने अपनी विवशता प्रकट की तो उसने पत्नी और बच्चों को भेज देने का आग्रह किया। ख़ैर, किसी तरह पत्नी की बीमारी और बच्चों की परीक्षा के मनगढ़न्त कारण बता कर उसे दूसरे दिन विदा किया था। विदा के समय उसकी आँखें नम थीं। इस नमी में नाराज़गी, शिकायत और विवशता के साथ-साथ शुद्ध अपनापा भी था।

राधा की शादी का दिन नज़दीक आता गया। आख़िर एक दिन मैंने पत्नी को कह ही दिया कि आज बाज़ार चल कर रूपा जीजी और राधा के लिए कुछ कपड़े-लत्ते और बींद राजा के लिए कोई उपहार ख़रीद लिया जाये। बहिन के यहाँ शादी थी। कोई हँसी मज़ाक तो था नहीं। कम से कम दो हज़ार का ख़र्च था। मेरा प्रस्ताव सुनकर ऋचा एकदम तुनक पड़ी— 'मेरे पास तो इस समय रुपया है नहीं, तुम जानो, तुम्हारा काम जाने, मेरी बला से।" मैंने युक्ति सुझाई —"फ्रिज के लिए जो रकम बचा कर रखी है, उसे ख़र्च कर दें। अगले माह तक प्रोविडेन्ट फण्ड म कर्ज स्वीकृत हो जाएगा तो वापस रख देंगे।" मेरे इस सुझाव ने पत्नी की क्रोधाग्नि मे घी का काम किया।

"आपका दिमाग भी खूब है। मान लो लोन मंजूर न हुआ तो ?

"तो क्या ? फ्रिज दो माह बाद आ जाएगा।"

"यह नहीं होने का। आप शादी म ख़र्च करना इतना ही ज़रूरी समझते हैं तो और कोई बन्दोबस्त कीजिए। फिर वह देहातिन आपकी कौन सी सगी बहिन है ?

पत्नी का अंतिम वाक्य मुझे अंदर तक बेध गया। यह सही था कि रूपा जीजी मेरी सहोदरा नहीं थी और न ही चचेरी, मौसेरी बहिन। मगर रिश्तों की प्रामाणिकता ख़ून से ही मापी जाये यह ज़रूरी तो नहीं। कई बार दूध ख़ून से भी गाढ़ा हो सकता है। इस बात को पत्नी जानती है।

तब मैं तीन महीने का रहा होऊँगा। मुझे मेरी माँ का दूध लगता था। पिताजी ने हज़ार कोशिशें कर डाली। वैद्य-हकीम, डॉक्टर, झाड़-फूंक सब कुछ। सयानों का एक ही मत था कि यदि दूध का कोई माकूल बन्दोबस्त न किया गया तो छोरा हाथ से जाता रहेगा। मैं अपने पिता की चौथी सन्तान था। मुझसे पहले मेरे तीन भाई इसी तरह गल-गल कर ईश्वर को प्यारे हो चुके थे।

डिब्बों के दूध का चलन उन दिनों था नहीं। और अगर बड़े शहरों में रहा भी हो तो देहात में यह झंझट कौन पालता? पिताजी गाँव में खूब घूमे। घर-घर तलाश किया कि ऐसी कोई महिला मिल जाये जो मुझे भी अपनी संतान के साथ साथ दूध पिलाती रहे। आखिर एक दिन उनकी कोशिश रंग लाई। हजारी गूजर की दुहानू ककू काकी जब पीहर से आई तो उसकी गोद में एक फूल सी बच्ची थी चार-पाँच माह की। पिताजी ने हजारी काका से बात की। उन्होंने पहले तो आनाकानी की फिर कई तरह से समझाने पर उन्होंने कहा—"आप घर वाली से पूछ देखो। थन तो उसका धन है। वह चाहे तो आपके बच्चे को भी पिलाये। मुझे क्या?" निराश हो आए पिताजी की आँखों में आशा की किरण कौंध गई। उन्होंने ककू काकी के सामने प्रस्ताव रखा और कहा कि वे इसके एवज में खुराक के लिए बीस रुपये माहवार दे दिया करेंगे। ककू काकी बीस रुपये माहवार की बात सुन कर एकदम बिफर गई।

"पण्डिज्जी, हम गूजर जरूर हैं। जानवरों के दूध का बेपार करते हैं, औरत के दूध का नहीं। आइन्दा ऐसी बात की तो मुझ जैसी बुरी कोई न होगी। रही तुम्हारे टाबर को थन पिला कर 'उछेरने' की तो मुझे कोई दूध में जावण तो डालना नहीं है। आज से एक थन हरकी का (यही नाम था ककू काकी की बेटी का) और दूसरा तुम्हारे टाबर का, जाओ, सँझ्या को छोड़ जाना टाबर को मेरे यहाँ।"

पिताजी सुनकर सकते में आ गए। संध्या को मैं ककू काकी की गोद में था और मेरे पिता निश्चिन्त हो चुके थे। डेढ़ दो साल की उम्र होने तक मैं ककू काकी के पास ही रहा। इस बीच मेरी अपनी माँ, जिसे मैं भूल चुका था, कभी-कभी आती और मुझे देख जाती। मेरी देह ककू काकी का दूध पीकर परवान चढ़ गई थी। मगर इस बीच एक हादसा गुजर गया। हरकी की मौत सचमुच एक हादसा था। गाँव का माहौल। लोगों ने तरह-तरह की बातें शुरू कर दी। बड़ी-बूढ़ी औरतों की दृढ़ मान्यता थी कि पंडितजी की सन्तानों के पीछे किसी जिन्न की छाया है। इस बार पंडितजी ने किशन को अपने घर से पेर कर दिया तो उसकी शरणदाती ककू को भुगतना पड़ गया। मगर धन की 'जाई' ककू काकी ने उफ् तक न की वह तन और मन से मुझे अपना बेटा मान चुकी थी। एक दिन तो उसने कानाफूसी करती औरतों के मुँह पर हमेशा के लिए ही ताला लगा दिया।

"हरकी नहीं रही तो क्या, किशन तो बच गया। अब पता नहीं पंडितजी को कोई टाबर-टींगर हो न हो। मेरा क्या है, मैं तो और जन लूंगी।"

और सचमुच हुआ भी यही। हरकी की मौत के ठीक दसवें महीने यह रूपा पैदा हो गई थी। उम्र में छोटी होने के बावजूद भी हम इसे हरकी की

देवतानापन्न मान कर 'जीजी' का दरजा देते आए है । रूपा के जन्म पर भी गाँव म तरह-तरह की बातें फैली थी । मेरी वजह से मेरे पिता का देर-सबेर कक् काकी के वहाँ आना जाना लगा ही रहता था । मेरी माँ चूँकि मरीज़ थी इसलिए ज्यादा बाहर निकलती न थी । हजारी काका ठहरे मौजी तबीयत के आदमी । कभी घर मिलते, कभी बाहर । मुझे नही मालूम कि पिताजी माँ के कहने से मुझे सभालने आते थे या अपनी इच्छा से । बहरहाल रूपा के पैदा होने के बाद उनका आना जाना ज्यादा ही बढ गया था । गाँव के कुछ दिल जले लोगो ने हजारी काका के कान भी भरे थे । पिताजी की इस वक्त बेवक्त आवाजाही को लेकर । पर हजारी काका शायद इस मामले मे किसी दूसरी ही दुनिया के जीव थे ।

आज हजारी काका भी नही है कक् काकी भी नही हैं पर मुझे पत्नी के के कथन के सदर्भ मे उन दोनो की याद गहरे तक साल गई है । कहाँ वे अनपढ किन्तु उदार मना गूजर दम्पत्ति और कहाँ यह डिग्री धारिणी तथाकथित सभ्य और सुसस्कृत परिवार से आई मेरी पत्नी ऋचा । जो भाषा इसने पढी है उसम प्यार व्यापार का ही पर्याय होता होगा, अन्यथा वह ऐसी बात कभी नही कहती । प्यार का व्याकरण ही कुछ दूसरा होता है जो स्कूली किताबो मे नही मिलता ।

अटैची म सचमुच बडा वज़न हो गया था । रूपा जीजी के लिए लाए गए कपडे लत्ते भी इसी म थे । जिस मोड स गूजरो का मोहल्ला शुरू होता था वही मोहन मिल गया था रूपा जीजी का बडा लडका । मुझे देखते ही पहचान गया था । धोक लगाई और हाथ स अटैची लेकर ऐसा छू मन्तर हो गया कि मैं देखता ही रह गया । जो अटैची मुझे पहाड जैसी भारी लग रही थी उसे वह फूल सी उठाए भागा जा रहा था ।

मिट्टी का बहुत बडा मकान और उससे भी बडा चौक । रगीन कागजो की बेतरतीब फरियाँ और यत्र-तत्र जूठे पत्तल दोने इस बात की घोषणा कर रहे थे कि शादी वाला घर यही है । मरे आने की खबर मेरे पहुँचने से पहले ही सारे घर परिवार म पहुच चुकी थी-- 'मामाजी आ गए, मामाजी आ गए ।" खाना-पीना शायद हो चुका था । मेहमान लोग चौक म बिछी खटियाओ पर आराम कर रहे थे । कुछ लोग झुण्ड बना कर बतियाते हुए बीडी के कश लगा रहे थे । एक तरफ कुछ विद्यार्थी किस्म के लोग ताश की बाजी जमाये थे और पास रखे ट्राजिस्टर स विविध भारती बज रहा था । कुल मिला कर एक बेफिक्री ओर आमोद-प्रमाद का वातावरण था । मरी उपस्थिति ने बिरादरी के अपरि-

चित लोगो मे कुछ जिज्ञासा भाव भी पैदा किया जिसका निराकरण शीघ्र ही जानकार लोगो द्वारा कर दिया गया। मैं शीघ्र ही उस समूह के एक अंग के रूप मे स्वीकार कर लिया गया।

राधा की शादी सम्पन्न हो गई। दूर-दराज के रिश्तेदार विदा होने लगे। मैंने भी छुट्टी खत्म हो जाने का बहाना बना कर विदा चाही तो रूपा जीजी अधिकारपूर्वक बरस पड़ी और मेरे हाथ से अटैंची छीन कर धान के कोठे मे डाल दी। शहरी सुविधाओं के अभ्यस्त मेरे शरीर को जरूर यहाँ के वातावरण म कष्ट हो रहा था पर जैसा आत्मीय आतिथ्य यहाँ प्राप्त हो रहा था उसकी अवज्ञा भी कैसे करता।

दो दिन और रुकने के बाद ही मुझे छुट्टी मिल सकी। चलते समय रूपा जीजी ने छबडी भर लड्डू बच्चो के लिए बाँध दिए। फिर कुछ याद सी करती घर के अन्दर गई और एक बोरी ले आई। मैं समझ नही पा रहा था कि बोरी का क्या होगा। उसने मोहन को हाँक लगाई कि दो तगारी मूंगफली तो ले आए। मैं मना करने लगा। दो तगारी मूंगफली का क्या करना है।

"करना क्या। मेरे बच्चे खाएगे। तुम क्या जानो कच्ची मूँगफलियो का स्वाद।"—रूपा जीजी ने दो टूक उत्तर देकर मुझे विवश कर दिया।

दो तगारी मूँगफली और एक छबडी लड्डू। लगभग बीस किलो वजन हो गया था बोरी मे। मोहन उसे कँधे पर रखे, हाथ म अटैंची लिए बस स्टैण्ड तक पहुँचाने आया था। मैंने उसके हाथ पर एक रुपया रख दिया। बस आने म अभी देर थी। मैं बस स्टैण्ड पर बने टपरीनुमा घास-फूस की होटल के बाहर रखी बैंच पर रूमाल बिछा कर बैठ गया था। थोडी देर मे बस आ गई थी। मोहन का आसपास कही पता नही था। मुझे थोडा क्रोध भी आया। अब यह सामान बस पर कौन चढायेगा ? मैं सोच रहा था मोहन कितना लालची है। रुपया लेते ही चम्पत हो गया। तभी मोहन गाँव की ओर से दौडता हुआ दिखाई दिया। उसके हाथ म कागज का एक पैकेट था। उसने सामान बस पर चढाया। कडक्टर ने घण्टी बजाई और बस स्टार्ट हुई। मोहन ने फिर मेरे पैर छुये और सीट पर बैठने के बाद कागज का वह पैकेट मेरी ओर बढा दिया। उसे खोलकर देखता इससे पहले बस स्टैण्ड छोडकर काफी आगे बढ चुकी थी। मैंने देखा उस पुडके म कुछ खटमीठी गोलियाँ और गुब्बारे थे। अब मेरी समझ मे आ गया कि मैंने मोहन को जो रुपया दिया था उससे वह अपने भाई-बहिनो के लिए भेंट खरीदने गया था। मेरी आँखें उस अबोध के लिए नम हो उठी।

मैं जब अपने घर पहुँचा तो रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे। ऋचा को मैंने वह बोरी और मोहन की दी हुई सौगात सँभलवा दी। ऋचा ने बुरा सा मुँह बनाते हुए कहा—"यह क्या घर भर को बीमार करने का सरजाम उठा लाए हैं ? बासी लड्डू कच्ची मूँगफलियाँ, ये सडी गोलियाँ और सस्ते गुब्बारे। अगर बच्चे यह सब खायें तो याद रखना इससे दुगुने पैसे दवाई में स्वाहा हो जाएँगे। अच्छा हुआ तुम बच्चों के सोने के बाद आए हो। मैं उनको इस सबकी हवा भी नहीं लगने दूँगी। सुबह ही बरतन माँजने वाली और बागवान म यह सब बाँट दूँगी।' इतना कह कर ऋचा ने वह बोरी जीने के नीचे वाले स्टोर में रख दी जहाँ कोयले लकडी वगैरह रखे जाते थे।

बत्ती बन्द कर सोने की कोशिश कर रहा हूँ। बोरी म मूँगफली और लड्डू रखते समय रूपा जीजी की—वह स्नेहिल चितवन बस को आया देखकर मोहन की दुगुनी रफ्तार स दौडती नगी टाँगे और पैकेट मुझे थमाते हुए यह मूक अभ्यर्थना कि मेरी यह भेंट मेरे भाई बहना तक अवश्य पहुँचा देना' और इन सबको काटती हुई ऋचा की उपहारों को ठुकराती व्यापारिक दृष्टि और इन्हे नौकरो मे बाँट देने की घोषणा करता उसका क्रूर चेहरा बारी-बारी से मेरी बन्द पलकों मे तैरने लगता है।

बहुत गहराई तक महसूसता हूँ कि मैं किसी धारदार आरे से दो हिस्सो मे चीर दिया गया हूँ। बीच की दरार निरन्तर चौडी होती जा रही है और मुझे कोई सभावना नजर नही आती कि अब इस दरार पर कोई पुल बन सकेगा। प्यार का व्याकरण जो मैने पढा है, ककू काकी ने पढाया है, जो रूपा जीजी और मोहन को शायद कठस्थ है चिन्दी-चिन्दी होकर हवा मे उड रहा है। मैं इन चिन्दियो को बटोरना चाहता हूँ किन्तु मेरे हाथ असक्त हैं। मेरे मुँह से चीख-सी कोई चीज शायद दबे-दबे निकलती है। ऋचा अपने पलग पर अलसायी-सी करवट लेकर कहती है—बहुत थक गए न ! मैं तो पहले ही कहती थी मत जाओ। ड्रावर म सरिडॉन रखी है एक ले लो और अब आराम करो। न हो तो सुबह अस्पताल हो आना।

लौटा हुआ सुख

□ दिनेश विजयवर्गीय

वह गली के मोड पर पहुचा तो दूर से ही उसे अपने पिता की हठीली खाँसी की 'खुल-खुन' जैसी अप्रिय ध्वनि सुनाई दी।

पिताजी की खाँसी को कितना समय हो गया है? पर मरी अभी तक जाने का नाम लेती कहा है? पर दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि खाँसी जाय भी कैसे? केवल अस्पताल के लाल पानी से या कि वैद्य की मुफतिया गोलियो से? उसे तो डॉक्टर कई बार सलाह दे चुके हैं कि अपने पिता का एक्सरे करवाये। खून की जाँच करवाय। और फिर कुछ दवाइया लें। पर 'व कुछ दवाइयाँ' और ऊपर की टीमटाम कितनी महँगी पड जाएगी उसके लिए? कहाँ से जुटा पाएगा वह इतना सब कुछ?

पिछले कुछ वर्षों से वह कितना अदर ही अदर टूटता जा रहा है? कितना कुछ आये दिन सुनना पडता है उसे अपनी पत्नी रमिया से और अपनी बहिन प्रेमा से—एक दूसरे के विरुद्ध। आये दिन बढते हुए खर्चे को लेकर या फिर रमिया के संभावित भौतिकवादी सुख की कल्पना मात्र को लेकर। कुछ कासती रहती है वह प्रेमा और उसके बच्चो को लेकर। और फिर इस बढती हुई महगाई म वह जब अपने ही स्वास्थ्य को ठीक से नही बनाए रख पा रहा है तो कहा से वह अपने पिता का ध्यान रख पाएगा?

पिता तो कितनी ही बार उसे कह चुके है अपनी इस हठीली खाँसी के लिए—बेटा क्यो मरे खातिर पैसा धूल म फेंकता है? बुढापे की खाँसी है दवा से कौन सी मिट जाएगी। एक दिन मर जाऊगा तब पीछा छूटेगा।

तब उसे लगा था कि पिताजी, प्रेमा के यहाँ रहने तथा उसके बढते हुए

खर्चे को लेकर कितने चिंतित है ?

कुंडी खोलने की जरूरत नही हुई। दरवाजा खुला हुआ था। शायद उसके पिता ने खुला छोड़ा हुआ था उसके आने की प्रतिक्षा मे। पिता कितना कुछ ध्यान रखते हैं उसका ? उसका ही क्या प्रेमा का भी तो कितना ध्यान है उन्हें। तभी तो प्रेमा को तीन वर्ष से इधर रखा हुआ है।

वह बिना कुछ बोले ही ऊपर जाने को हुआ था। पर उसे लगा, खटिया पर लेटे हुए पिता शायद उसके आने पर उठ बैठे हैं और कुछ कहना चाहते हैं। और हुआ भी यही।

—"ये चिट्ठी आई है माधोपुर से।"

उन्होंने एक खुला हुआ अन्तर्देशीय पत्र आगे बढ़ाते हुए कहा। चिट्ठी म क्या कुछ लिखा होगा—यह वह पढ चुके हैं। वे चुप हैं। सोच रहे होंगे कि वे पत्र की बात बतायें या चुप्पी साध ल। पर उसकी ओर से कुछ उत्सुकता प्रकट नही करने पर वे आगे कुछ बोल नही पाते हैं।

वह पत्र की लिखावट से ही पहचान जाता है कि पत्र रामजस का ही है। माधोपुर की सीमेंट फैक्ट्री म ही प्रेमा का आदमी—रामजस काम करता है, मजदूरो के ऊपर देख-रेख करने का।

पत्र लेकर ऊपर कमरे म पहुचता है। जहाँ वह अपने जूते व कपडो को खोल ईजी होता है। और फिर पखा चालू कर पलग पर थके हुए शरीर को लिटा देता है।

पत्र उसी को सम्बोधित किया गया है।

"पूज्य भाई सा।

सादर वदे। मैंने कुछ पत्र पिछले चार-पाँच महीनो मे दिये हैं। आपने अभी तक एक का भी जवाब नही दिया शायद गृहस्थी मे व्यस्त रहे हो।

मैंने पिछले पत्रो म आपको आश्वस्त किया था कि अब मैंने अपनी पुरानी लत—शराबी जीवन बिताने की छोड दी है। इसका श्रेय रहा है एक समाज सुधारक को जो मेरे भाग्य से ही मुझे एक दिन मिल गये। मैं उनसे इतना प्रभावित हुआ कि नये सिरे से नयी जिन्दगी जीना शुरू कर दिया है। अब मैं यहाँ पिछले एक वर्ष से क्लर्क के पद पर हो गया हूँ। वेतन भी ठीक हो गया है। फैक्ट्री की ओर से एक मकान भी मिल गया है अच्छी बस्ती मे। हाँ एक बात तो मैं बताना ही भूल गया। मैंने पिछले वर्ष ही हायर सैकण्डरी की (प्रायवेट) परीक्षा भी पास कर ली है। उसी की वजह से जीवन मे आर्थिक सुधार हुआ है।

पर इस सूने जीवन मे अब प्रेमा और सदीप की कमी बहुत खलती है। क्या आप और पूज्य पिताजी मुझे एक मौका और देंगे अपने इस सुधरे जीवन से

गृहस्थी चलाने का ? पिछली बार जो कुछ भी हुआ, कितना अच्छा रहे आप उस अतीत की बात समझ लें। आशा है आप मुझे एक बार फिर से मौका देंगे कि मैं अपना परिवार और एकाकी जीवन फिर से हरा भरा कर सकूँ।

आपने मुझे सुधर जाने की इस स्थिति मे पहुँचने के लिये जो भी सहयोग दिया उसके लिये मैं आपका सदैव आभारी रहूँगा।

जीवन मे भूल और गल्तियाँ हो ही जाती हैं, पर उन्हें समझदार लोग सहानुभूतिवश क्षमा कर ही देते हैं।

मैं अपनी बुराइयो का, नई अच्छाइयो के सामने समर्पण कर चुका हूँ। और हाँ, सदीप भी तो अब बडा हो गया होगा न ?

सबको यथा योग्य। पत्र की प्रतीक्षा बनी रहेगी।

आपका अनुज
रामजस।"

उसे पत्र पढकर पहले की तरह दुख नही हुआ। खुशी हुई। खुशी विशेषकर इस बात को लेकर कि गँवारू और पिय्यकड आदमी ने अपने आपको कितनी पिछडने की स्थिति मे होकर भी किस तरह, उससे अलग कर लिया है। हायर सैकण्डरी पास कर बाबू के पद पर एडजस्ट हो गया है।

और इन सबसे अधिक खुशी उसे हुई है—उसकी पत्र लिखने की शैली स। कितना भला सा, सधे हुए शब्दों मे अनुरोध किया है कि वह किसी भी प्रकार से उसकी गल्तियो को अतीत की बात मान ले। और वर्त्तमान के उपयुक्त व सुधरे हुए वातावरण को ध्यान मे रख स्थिति मे सहानुभूतिपूर्ण समझौता कर ले।

शाम को भोजन कर चुकने के बाद वह ऊपर छत पर चला आया। ठडी हवा से राहत पाने। और यही ठडी हवा धीरे-धीरे उसे पिछले तीन वर्षों की यादो मे धकेल गयी।

एक दिन जब वह काम से लौटा तो उसके बच्चे 'बुआजी आये हैं' की रट लगाये उसके पीछे हो गये थे। उसने जब ऊपर जाकर देखा तो सच मे प्रेमा अपने एक वर्ष के बच्चे को लिये खडी थी। प्रेमा की आँखो मे मुस्कराहट का खिचाव नही था बल्कि—आँसुओ से डबडबाई आँखें थी। तब

उसने किस तरह पिता और उसके सामने सुबकते हुए अपनी व्यथा कही थी।

रमिया ने बच्चों को बाहर कहीं खेलने भगा दिया था उस समय, और वह स्वयं भी रसोई से बाहर आकर ध्यान से सुनने लगी थी सब बातें।

"... क्यों बाँध दिया पिताजी आपने उस शराबी के साथ मुझे। गँवार और कसाई के साथ ?" इसीके साथ सुबकते हुए उसने अपनी पीठ पर लगे लकड़ी के मार के निशानों को बताया था।

यह देख पिताजी की आँखों में आँसू भर आये थे। वह भी गहरे तक 'इस गलत आदमी के पल्ले पड़ जाने पर दुखी होने लगा था। उसे कुछ देर पिताजी पर गुस्सा आया था। क्यों बाँध दिया प्रेमा जैसी भोली-भाली लड़की को उस गवारू के साथ ? शायद सिर्फ इसलिये कि दहेज कम देना पड़ा था।

प्रेमा को रामजस ने इससे पहले भी एक बार पीटा था। तब भी वह चली आयी थी यहाँ। पर तब माँ जिन्दा थी सो समझा बुझाकर रामजस के साथ फिर से जीने के लिये भेज देती थी। तब विश्वास ही नहीं हुआ था किसी को शराब पीने वाली बात का।

पर अब तीन वर्ष बाद दूसरी बार जब माँ नहीं थी तो यह घटना घटी, तब से बहन इधर ही है।

इन तीन वर्षों में कितना कुछ बदल गया है। अब वह स्वयं तीन बच्चों का पिता हो गया है और एक बच्चा प्रेमा का भी तो है—कुल चार हो गये। बढ़ती हुई मँहगाई में कहाँ हो पाता है सबका 'एडजस्टमेंट ?'

प्रेमा को भी उसके अच्छे भविष्य के लिये एक प्रायवेट स्कूल में पढ़वाकर मिडिल पास करवा दिया है। पर इन सबमें खर्च कितना कुछ बढ़ जाता है ? और फिर आये दिन उसकी पत्नी भी तो उसके विरुद्ध कोई न कोई लड़ाई का बहाना तलाश लेती है। उसके बच्चों के साथ प्रेमा का लड़का कहाँ एडजस्ट हो पाया है। रमिया ने तो एक बार संदीप पर व्यंग्य कसते हुए साफ कह भी दिया था— 'आखिर ठहरा पियक्कड़ का छोकरा न।" और तब से बहिन प्रेमा, मन ही मन कितने दिनों तक घुटती रही थी। दो-तीन बार तो जब से वह रामजस के यहाँ जाने की इच्छा प्रकट कर चुकी थी।

कितने ही समय से अब वह भी तो अन्दर एक अनचाहा बोझ महसूस करने लगा है। उसकी बहन और बच्चे ने उसके अपने परिवार की सुख-सुविधाओं में कमी नहीं कर रखी है क्या ? और वहीं क्या उसके पिता भी तो

कितना रात-दिन चिन्ता मे घुटते रहते है। पहले बेटी के कुंआरेपन का बोझ और अब बेटी और बच्चे का, विवाह बाद की दुखात स्थिति का बोझ।

इसी बोझ से दबकर पिताजी उसे वहाँ लाने देते हैं अपनी खाँसी की दवा उसको? और क्या वह प्रेमा की अन्य आवश्यकताओ से परिचित नही है क्या? प्रेमा भले ही नही कहे, पर उसकी पत्नी साफ-साफ कई बार ऐसी ही आवश्यकता के बारे म इशारा कर चुकी है उसे।

क्या वह अपनी बहिन को फिर से पिय्यकड के हवाले कर दे? या वह अपनी गृहस्थी मे अनचाहे बोझ से दबा रहे? क्या वह अपने पिता को समझा सकेगा— हुआ जो हुआ· ·' अब तो होनहार और बाबू के पद पर हो गया है। शराब की लत छोड दी है। हायर सैकण्डरी पास कर ली है। पत्र लिखने की शैली से कितना कुछ छिपा हुआ सामने आने लगता है। रामजस ने अपने को कितना सुधार लिया होगा।

कल ही वह अपनी बहन प्रेमा से·· । नही, नही! पहिले रमिया से फिर पिताजी से बात करेगा और फिर प्रेमा को समझायेगा, कि वह अब कितना कुछ सुधर गया है। वह पत्र प्रेमा को बतायेगा, या उससे कहेगा कि वह उसे एक चास और दे। वह अपनी सामाजिक बुराइयों को अच्छाइयो के आगे समर्पित कर चुका है। बहुत सभव हो प्रेमा का दिल भी वहाँ जाने के लिये उतावलापन लिये हुए हो।

वह इतना कुछ सोचते सोचते निर्णय ले चुका है कि रामजस को आमत्रित करेगा। उसका सुधरा हुआ व्यवहार उसकी आँखो म सपनो की तरह डोलने लगा। रमिया बिस्तर लगाने ऊपर आयी तो वह अपने म लौट आया।

वह खडा होकर देखता है कि मन्दिर से प्रेमा और बच्चे लौट आये हैं, और अब सोने की तैयारी में हैं। शायद प्रेमा को पत्र की जानकारी न हो। पिताजी भी बच्चो के साथ सोने जा रहे हैं। पर वे उसकी ओर देखकर ठिठके हैं—शायद पत्र को लेकर बात करना चाहते हैं। बहुत सभव हो वे भी समझौते की बात छोड दें।

पर वह अभी उनसे बात करने के मूड मे नहीं है। पहले पत्नी से पत्र को लेकर बात करेगा, फिर उसके बाद ही वह पिताजी और प्रेमा से।

अत वह पिताजी के उसकी ओर देखने पर बहुत व्यस्त दिखलाई देने का प्रयत्न करता है। और पिताजी भी बिना कुछ बोले, बच्चो और प्रेमा के साथ सोने के लिये चल देते हैं।

वह खुश है कि अब रमिया से रामजस के पत्र को लेकर खुलकर बात करेगा। उसे अभी नीद नही आ रही है। वह सभावित समझौते की कल्पना मे खोया हुआ है। उसे लग रहा है कि उसकी बहिन फिर से दुल्हन बनकर एक ऐसे घर मे चली जा रही है जहाँ वह अपने पति के साथ सुखी जीवन बितायेगी। और प्रेमा को अपनी नयी गृहस्थी मे सम्मानपूर्ण जीने का हक मिल सकेगा।

वह बेहद खुश है कि रामजस अपनी गल्तियो को अच्छाइयो के सामने समर्पित कर चुका है, और अपने परिवार के साथ नये ढग से जीना चाहता है। जहाँ प्रेमा व प्रेमा का रामजस होगा। और जहाँ दोनो के, उसकी ही तरह बच्चे होंगे, जो मामाजी-मामाजी कहते उसे घेर लेंगे।

वह कल ही पत्र देकर सदीप के बापू—रामजस को आमत्रित करेगा। वह निश्चय कर चुका है।

दहेज का सांप

□ सत्यपाल सिंह

शाम को पाँच बजे तक मास्टर स्वरूपनारायण भोजपुर से नहीं लौटे तो गायत्री के हृदय मे हल्की सी तसल्ली हुई।

सुबह जाते-जाते स्वरूपनारायण गायत्री को कह गये थे कि अगर बात नही बनी तब तो शाम के पाँच बजे से पहिले-पहिले वे लौट आयेंगे और यदि बात कुछ बनती नजर आयी तो हो सकता है रात्रि को वहाँ रुकना भी पड़े।

रसोई म काम कर रही वैकुण्ठी के पास जाकर गायत्री बैठ गई। मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगी—'हे ईश्वर! परेशान होते-होते दो वर्ष तो बीत गये। बस, अब इतनी ही परीक्षा बहुत है। जैसे बन तैसे कृपा कर दो, भगवन।"

'माँ, चार रोटी तो दोपहर की रखी हैं, अब और कितनी बनालूँ', ज्यो ही वैकुण्ठी ने पूछा तो सहसा गायत्री का ध्यान टूट गया। कुछ सावधान होती हुई बोली, "ये ही कोई आठ दस रोटियो का आटा और गूद लें। तेरे बापू तो आज हैं नही', और फिर घर के छोटे-मोटे काम-काज मे जुट गई।

खाना-पीना करके वैकुण्ठी तो रमेश और गिरीश के पास चली गई।

रमेश और गिरीश वैकुण्ठी के ही भाई हैं। लेकिन हैं वैकुण्ठी से छोटे। वे दोनो रात को अलग कमरे में पढ़ते हैं और वैकुण्ठी भी उन्ही के कमरे मे सोती है।

घर का सारा काम-काज निपटा कर गायत्री भी बाजू वाले कमरे में जाकर चारपाई पर पड़ रही। और दिन तो थकान के कारण चारपाई पर पड़ते-पड़ते उसे नीद आ जाती, लेकिन आज सोने के लिये प्रयत्न करने पर भी

नींद नहीं आयी। उसके मस्तिष्क में विचारों की लड़ियाँ रह-रहकर बिखरने लगी।

वह हरलाल को हृदय से धन्यवाद दे रही थी। हरलाल ने ही तो दो रोज पहले आकर उसके पति को इस लड़के के सम्बन्ध में जानकारी दी थी। वह सोच रही थी कि वह अब शीघ्र ही दो-चार महीने में वैकुण्ठी के हाथ अवश्य पीले कर देगी।

गायत्री लड़की के भाग्य को मन ही मन सराहने लगी। दो वर्ष की परेशानी के बाद लड़का मिला तो क्या है तो अच्छा पढ़ा-लिखा। पक्की हवेली है। गाय-भैंसें हैं। घर पर खेत-खलिहान में कई नौकर-चाकर हैं। सुख भोगेगी। जो बाप के यहाँ देखने को नहीं मिला ससुराल में देख लेगी। सोचते-विचारते, मनसूबे बाँधते न जाने कब गायत्री को नींद आ गई।

पड़ोसिन गंगा ने सुबह तड़के जंगल जाने को आवाज लगायी तब कहीं जाकर गायत्री उठी और झटपट किवाड़ें खोलीं। गंगा को देखते ही गायत्री बोली, "बहिन रात का कुछ देर से सोयी थी, इसलिये " बीच में ही बात को काटते हुए गंगा ने कहा, "कोई बात नहीं, आज कौन-सा बच्चों को स्कूल जाना है। दोनों बतियानी जंगल चली गईं।

गायत्री जंगल से लौटी तब तक वैकुण्ठी सारे घर की झाड़ा-सकेरी कर चुकी थी। पानी भी कुएँ से भर लायी थी। बकरी को दुहकर चाय की डेगची चूल्हे पर चढ़ा दी थी। गिरीश और रमेश दोनों ही चाय की टोह में चूल्हे के पास बैठे-बैठे बतिया रहे थे।

वैकुण्ठी ने ज्यों ही माँ को आते देखा, वह लोटा भर पानी ले, हाथ साफ कराने चल दी। गायत्री हाथ साफ कर, वहीं मोरी पर कुल्ला-दातोन करने बैठ गई। तब तक सुबह के साढ़े आठ बज चुके थे।

दत-मंजन करती-करती गायत्री सोच रही थी कि आठ वाली बस तो कभी की आ गई होगी। तभी स्वरूपनारायण को हाथ में छाता और थैला लिये घर में प्रवेश करते देखा। स्वरूपनारायण की हृदयस्थ-प्रफुल्लता को भाँपते उसे जरा भी देर नहीं लगी।

दो वर्ष के अरसे में आज पहली बार गायत्री को स्वरूपनारायण के चेहरे पर सतोष की रेखायें खिंची नजर आयी थीं। हाथ में से थैला और छाता ले खूंटी पर टांगते हुए आतुर हृदय से वह पूछ ही बैठी—"क्या बात रही ?"

गायत्री के हृदय की आतुरता को समझते हुए स्वरूपनारायण बड़ी तसल्ली के साथ बोले— गायत्री, सच पूछा जाय तो हम उन लोगों के सामने कुछ भी नहीं हैं। जैसा हरलाल से सुना वैसा ही पाया। बड़ी हवेली है, ढोर-डागर हैं, जमीन, नौकर चाकर सब कुछ हैं, उनके यहा।"

"यह तो सब मालूम है मुझे, आगे की बात बताओ" वाणी से अधीरता प्रकट करती हुई गायत्री बोली।

"यों तो बात का बनना पहले तो मुझे बड़ा मुश्किल लगा लेकिन जब हरलाल ने पहल की तो मुश्किल आसानी में बदल गयी और फिर उन्हें 'हां' करनी ही पड़ी।" स्वरूपनारायण ने ऐसे कहा जैसे दिग्विजय करली हो।

"लेन-देन के बारे में कुछ बात हुई ?" गायत्री धीरे से अपनी स्थिति को तौलते हुए बोली।

"देखो गायत्री, उन्होंने तो कोई बात अपनी तरफ से इस तरह चलायी नहीं, लेकिन बेटी का बाप होने के नाते सब कुछ खोल लेना मैंने ही उचित समझा।" बात को वजन देते हुए स्वरूपनारायण बोले।

"फिर क्या कहा, कुछ कहो भी तो साफ-साफ।"

"भई, जब मैंने बहुत जोर दिया तो उन्होंने यही कहा—मास्टरजी, हम तो यह जानते हैं कि कोई भी बेटी वाला अपनी इज्जत गिराना नहीं चाहता। सभी अपनी हैसियत से बढ़-चढ़कर करते हैं। क्या माग-जाँच करें आपसे, आप खुद समझदार हैं। और फिर आप देख ही रहे हैं कि हमारे यहां किसी बात की कमी थोड़े ही है।" कहते-कहते स्वरूपनारायण नहाने के लिये कपड़े उतारने लगे और गायत्री खाना बनाने रसोई घर में चली गयी।

दिन बीतने लगे।

स्वरूपनारायण स्थानीय मिडिल स्कूल में थर्ड ग्रेड टीचर हैं। वेतन यही है कोई सवा पांच सौ रुपये माहवार। कट-कटाकर कुल चार-सौ पचास हाथ में आते हैं। परिवार में कुल पांच प्राणी खाने वाले हैं। रमेश और गिरीश क्रमश: दसवीं और तेरहवीं कक्षा में पढ़ते हैं। बैकुण्ठी दस पास करके दो वर्ष से घर ही बैठी है। किसी तरह से घर-खर्च चल पाता है। सभी मोटा खाते हैं, मोटा पहिनते हैं। फिर भी बचत के नाम पर तो जैसियाराम ही है।

मास्टर स्वरूपनारायण और गायत्री का एक बोझ तो हल्का हुआ लेकिन आगे का गुरुतर बोझ पहाड़ की तरह सामने दिखायी देने लगा।

दोनों प्राणी इस प्रयत्न में साथ घर-खर्च चलाने लगे कि कुछ बचत हो सके। बचत तो होती लेकिन बहुत मामूली। यों तो एक जी० पी० एफ० भी है लेकिन उसमें कितना बड़ा मिलेगा। यही कोई पन्द्रह-सौ रुपये। इससे तो ऊपर की टीम-टाम का खर्च भी मुश्किल से चल पायेगा। यही चिन्ता स्वरूपनारायण को रात-दिन खाने लगी।

एक दिन शाम को चेहरे पर उदासीनता ओढ़े मास्टरजी जब स्कूल से

घर लौटे तो उनके हाथ मे से डायरी और किताबें लेती हुई गायत्री पूछ ही बैठी—' क्या बात है, उदास कैसे हो, हैडमास्साब स कुछ कहन सुनन हो गई है ?"

"नही ऐसा तो कुछ नही। हाँ, हृदयराम जी का पत्र जरूर आया है।"

"क्या लिखा है पत्र मे शादी-वादी के बारे मे कुछ लिख भेजा है क्या ?"

' हाँ, यही कि—छब्बीस जून की शादी बन रही है। अब वे अधिक दिन तक शादी टाल नही सकते। इस तिथि की शादी मजूर नही हो तो फिर वे...।"

"फिर क्या ? रिश्ता छोड देंगे। यह भी कोई गुड्डे-गुड्डी का खेल है। लिख दो जी कि शादी हम मजूर है। यह भी कोई बात हुई।" गुस्से में भर्रायी तेज आवाज में गायत्री बोली। और फिर तो दूसरे ही दिन स्वरूपनारायण ने छब्बीस जून की शादी की स्वीकृति का पत्र डाक में छोड दिया।

छब्बीस जून आने म अब केवल डेढ महीना बाकी देख मास्टरजी शादी की तैयारी में पूरी तरह से जुट गय। गायत्री को भी अब रोजाना काम से जरा भी फुरसत नही मिलती। पडोसिनें आ आकर उसकी मदद करती हैं। आखिर सभी स गायत्री क अच्छे सम्बन्ध जा ठहरे। कभी मसाले पीसे जा रहे हैं तो कभी गेहूँ साफ हा रहे है। यही सब कुछ रोजाना होने लगा।

मोहल्ले-भर में गायत्री ता बाहर स्वरूपनारायण जी भी अपनी व्यावहारिकता के कारण काफी लोकप्रिय हैं। सभी अध्यापक साथी उनके काम में जी-जान स जुट गय। पैस की व्यवस्था आनन-फानन मे ही हो गयी। मास्टरजी को तीन एक हजार रुपया बाहर मे कर्ज लेना पडा। इस बीच हरलाल का भी पत्र आया। उसमे उसन निश्चिन्तता स काम करने को लिखा था। साथ ही पैस क लिये भी पूछा था कि आवश्यकता हो तो लिख भेजो।

सभी काम लग-लिपटकर शादी स पहिले ही स्वरूपनारायण और गायत्री ने पूरे कर लिये। आखिर डेढ महीना भी काम की भाग-दौड में दोनो को मालूम ही नही पडा कि कब एक एक दिन करके बीत गया। स्वरूपनारायण के घर पहली ही शादी। ढेर सारे नाते-रिश्तदार। घर-बाहर वही शादी की चिल्ल पो। रग-बिरगा शामियाना, उसमें भरा पूरा फर्नीचर। चारो ओर लाइट की जगर-मगर। मास्टर जी ने अपनी हैसियत स कही अधिक साज-सज्जा में पैसा खर्च किया था।

बारात जब धर्मशाला मे उतरी तो सभी बराती मास्टरजी की व्यवस्था को मुक्त-कठ से सराहने लगे। सोने-बैठने को पूरे चार कमरो मे बिस्तर। हर कमरे मे सीलिंग-फेन। नहाने धोने का पूरा इतजाम। हृदयराम जी भी अच्छी

व्यवस्था को देखकर घूमते-फिरते लोगो से पूछ रहे थे, 'कहिये साब, कोई कमी तो नही, किसी बात की दिक्कत हो तो बोल देना।"

"आखिर हम लोग भोजपुर के प० हृदय राम के लडके की बारात मे आये है, फिर भला कमी क्यो रहने लगी किसी बात की।" कह-कहकर लोग उन्हे और चौडा कर रहे थे।

हृदयराम ने भी अपनी हैसियत के मुताबिक ही गाजे-बाजे का इतजाम किया था। चढत के लिये हसो की कार भी थी। दिन छिपने पर बारात जब गाजे-बाजे के साथ शहर के मुख्य बाजार से गुजरी तो हर कोई देखने वाला बैण्ड की प्रशसा करते नही अघाता था। पूरे पच्चीस आदमी थे बैण्ड मे। ऐसा बैण्ड या तो सेठ चक्खन लाल की लडकी की शादी मे लोगो को देखने को मिला था, या फिर अब।

सडक के दोनो ओर जैनरेटर से जगमगाती ट्यूबलाइटे बारात की शोभा को द्विगुणित कर रही थी। हसो की कार पर दूल्हा बना बैठा मणिशकर भी बरबस अपनी ओर सभी का ध्यान खीच रहा था। लडके को देखकर सभी मास्टर स्वरूपनारायण की पसद की दाद दे रहे थे।

बारात का मजमा ज्यो ही स्वरूपनारायण जी के दरवाजे के सामने लगे शामियाने मे पहुँचा तो सभी आव-भगत और खातिरदारी मे जुट गये। कोई बरातियों को पुष्प मालाएँ पहना रहा था तो कोई मिठाइयाँ परोस रहा था। खाने को देखकर हृदयराम की कली-कली खिल गई।

बारात जब खाना खा रही थी, स्वरूपनारायण हृदयराम के सामने हाथ जोडे खडे कह रहे थे—"पडित जी, मैं बहुत छोटा आदमी हूँ, कोई कमी रह जाये तो माफ कर देना।"

"कोई कमी नही, सब कुछ अच्छा हो रहा है।" इससे पूर्व कि प० हृदयराम बोलते, हरलाल ने स्वरूप नारायण की ओर मुस्कराते हुए कहा।

हरलाल, स्वरूपनारायण की किसी भी तरह से नीची नही होने देना चाहते थे। वे दो वर्ष पूर्व स्वरूपनारायण के साथ एक ही स्कूल मे काम कर चुके थे। दूसरी ओर हरलाल, हृदयराम के नजदीकी सम्बन्धी जो ठहरे, तभी तो हृदयराम उनके पहल करन पर स्वरूपनारायण के रिश्ते के लिये मना नही कर सके थे। हरलाल ने भी हृदयराम को उस समय हर तरह से शादी अच्छी होने का विश्वास देकर सतुष्ट कर दिया था। इस समय भी हरलाल यही चाह रहे थे कि शादी बिना किसी कहन-सुनन और नुक्ता चीनी के पूरी हो। उनकी नजर मे शादी की समूची व्यवस्था बहुत अच्छी नही तो खराब भी नही थी।

हृदयराम को बारात की सारी व्यवस्था तो पसद आयी लेकिन उनके

भीतर का धन-लोलुप हृदयराम इस सब के अलावा कुछ और जान लेने के लिये आतुर हो उठा। वह अपनी विस्फारित आँखों से इधर-उधर स्वरूपनारायण के घर की ओर देखने लगे, तभी हरलाल, हृदयराम को कुरेदते हुए बोले—'क्या बात है, कैसे परेशान हो रहे हो ?

"वैसे भी नहीं सोच रहा था मामला कुछ ढिल्लम ढिल्ला ही नजर आता है।" रूखे से अंदाज में हृदयराम ने कहा।

"मतलब। बात को आगे बढ़ाते हुए हरलाल ने फिर गहराई तक कुरेदना चाहा।

इस बार हृदयराम ने सम्भलते हुए अपने मन की बात एक ही सांस में उगल दी— जानना चाहता था कि स्वरूपनारायण ने दहेज में देने के लिए क्या-क्या जुटाया है।'

हरलाल सुनते ही सन्न रह गये। वह अच्छी तरह जानते थे कि स्वरूपनारायण के पास दहेज में देने को क्या रखा था। साधारण अध्यापक। घर का पूरा खर्च। ट्यूशन के कतई खिलाफ और उस पर बच्चों की पढ़ाई। ये सारी बातें हरलाल से छिपी नहीं थी। गम्भीर होते हुए हरलाल बोले— तुम्हें क्या करना दहेज का ! भगवान ने तुम्हें क्या कुछ नहीं दिया। लड़की ऐसी है कि चिराग लेकर ढूंढने से नहीं मिलती।

सुनकर हृदयराम कुछ नहीं बोले और जैसे बात दब गयी।

फेरों के लिये लड़का आया तो साथ में हृदयराम और हरलाल भी। घर में घुसते ही हृदयराम की नजर बाजू वाले कमरे में रखे सामान पर पड़ गयी। कुछ भी तो सामान नहीं था—यही कोई दस बीस बर्तन हल्का सा पलंग सिलाई की पुरानी मशीन आदि आदि। देखते ही जैसे तन बदन में आग लग गई। रुपये भी जहाँ हृदयराम का चार हजार की आशा थी कुल दो हजार ही मिले थे। अबकी बार हृदयराम अपने को काबू में नहीं रख सके। तेजी से भरे आँगन की ओर आगे बढ़े। उस समय मणिशंकर और वैकुण्ठी को अग्नि के सामने बैठाकर पंडितजी मन्त्रोच्चारण कर रहे थे। मणिशंकर को हाथ पकड़कर उठाते हुए हृदयराम भर्राये तेज स्वर में बोले— उठो मणिशंकर हमें नहीं करनी यह शादी। कोई शादी है या मजाक। आखिर आदमी दूसरे की हैसियत का थोड़ा-बहुत ख्याल तो रखता ही है।

दहेज के सांप की फूत्कार सुनते ही स्वरूपनारायण के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गयी। काटो तो खून नहीं। वह जैसे भरी महफिल में नंगे कर दिये गये। सारा जश्न मायूसी में बदल गया। उन्हें लगा कि जैसे कोई रेतीला रेगिस्तान उनकी ओर बढ़ रहा है और कुछ ही क्षणों में वे उसके अन्दर धँस जायेंगे। उन्होंने हृदयराम की ओर कातर आँखों से देखा। आँखें जैसे कह रही

थी—"हृदयराम ! गरीबी के साथ खिलवाड मत करो। अगर तुम्हें धन की ही भूख थी तो पहले साफ-साफ कहना था।"

हृदयराम ने स्वरूपनारायण की ओर देखा तक नहीं। वह मणिशंकर को लेकर बाहर हो गये।

स्वरूपनारायण ने किसी तरह से साहस बटोरा। उन्होंने गिडगिडाना सीखा ही नहीं था। जब देखा कि बात उनकी ताकत से बाहर चली गई है और बनने वाली नहीं है तो पूरे मनोबल के साथ तेजी से द्वार की ओर बढ हृदयराम को धिक्कारने लगे—"धिक्कार है हृदयराम तुम्हारी अमीरी को। चांदी की चकाचौंध मे अंधे मत बनो। तुम्हारे भी तो लडकी है, तुम्हे भी उसकी शादी करनी है। मेरी इज्जत को सरेआम इस तरह से मिट्टी मे मत मिलाओ।" कहते कहते गला रुंध गया, सिर चकराने लगा और जैसे ही गिरने को हुए तो हरलाल और गायत्री ने आगे बढकर सम्भाल लिया।

हृदयराम पर स्वरूपनारायण की इन सब बातों का भला क्या प्रभाव पडने वाला था। वह एक बार गये तो फिर लौटे ही नहीं जब कि हरलाल ने भी उन्हे काफी समझाया।

यह स्वरूपनारायण की ही अवमानना नहीं थी, वरन् हरलाल के गाल पर एक जोरदार तमाचा था। हरलाल तिलमिला उठे। अब स्वरूपनारायण की इज्जत उनकी इज्जत थी। स्वरूपनारायण उन्हीं के कहने पर तो हृदयराम के दरवाजे पर रिश्ता लेकर गये थे। हरलाल गायत्री को धीरज बँधाते हुए बोले—'भाभी ! घबराओ नही। वैकुण्ठी की शादी अभी होगी और इसी समय होगी।

हरलाल के शब्द क्या थे, संजीवनी-कण थे। सुनते ही गायत्री गद्गद् हो गई लेकिन समझ नहीं पा रही थी कि यह सब होगा कैसे ! सोच रही थी कि हृदयराम तो अब अपने लडके को वापिस लेकर लौटने के नहीं। उसके चेहरे पर एक अजीब सा भय पुत चुका था।

तभी हरलाल बाहर निकले और धर्मशाला की ओर बढ गये। आनन-फानन में ही अपने छोटे बेटे कैलाश को साथ ले आये। कैलाश बी०ए० मे पढता था। कैलाश को पडित जी के पास अग्नि के सामने बैठाते हुए बोले—"पडित जी, बुलाओ बेटी वैकुण्ठी को और शुरु करो फेरे।"

वैकुण्ठी सिमटी हुई अग्नि के सामने कैलाश के पीछे पीछे चल रही थी और पडित जी वेद मत्रो के साथ फेरे करा रहे थे। सभी हरलाल की सद्वृत्ति और सदाशयता की सराहना करते हृदयराम को रह-रहकर कोस रहे थे। स्वरूपनारायण और गायत्री बवत से हारते हरलाल की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से निहार रहे थे।

स्वरूपनारायण को पहली बार अहसास हो रहा था कि धनी लोगों से

रिश्ता जोड़ने पर तो इज्जत पर कभी भी हमला हो सकता है। रिश्ता हो तो बराबरी का।

मन की भीतरी परतों में अजीब सी टूटन समेटे गायत्री बेटी की विदाई के लिये सामान इकट्ठा करती और बांधती घर में इधर से उधर फिरकनी की तरह फिर रही थी और घर के बाहर शामियाना उखड़ चुका था, फर्नीचर लद चुका था।

काले जंगल से विदा

□ कमर मेवाड़ी

जगल इतना खूबसूरत, दिलकश और प्यारा था कि अगर वहा किसी आदमी का कत्ल भी कर दिया जाता तो उसे खुशी होती, वह कभी नाखुश नहीं होता।

उसे उस जगल मे रहते हुए करीब पन्द्रह साल गुजर चुके थे और बिना किसी कष्ट के चार-पाच साल और गुजारे जा सकते थे, पर अचानक न जाने उसे क्या हो गया था कि वह वहा से भाग जाना चाहता था।

उसे लगने लगा था कि यदि उसने जगल का मोह नही त्यागा तो उसका दिमागी तवाजुन बिगड जायगा, वह पगला जायगा या फिर किसी दिन ऐसा भी मुमकिन है कि उसका दम घुट जाय और वह मृत्यु का ग्रास बन जाय। उसने फैसला कर लिया था कि अब जगल को खैरबाद कह देना ही फायदेमन्द रहेगा।

गुजिश्ता पन्द्रह बरस उसने बडी मस्ती और शान से गुजारे थे पर दो माह से वह कुछ उदास और उखडा-उखडा रहने लगा था। इस उदासी की तह तक पहुचने के लिए उसने लाख सर मारा, पर उसके हाथ कुछ नही लगा।

वह अपनी मजिल मे अनजान था फिर भी जगल से भाग जाना चाहता था। वह अपने पूरे परिवेश से उकता चुका था और उसकी उकताहट धीरे-धीरे नफरत की सीमा लाघने लगी थी।

उसे सब कुछ बरदाश्त के बाहर लगने लगा था। जब कोई उससे मुखातिब होता और बतियाता तो उसे लगता, सामने वाला भाले की नौक से छेद डालना चाहता है।

लोगो की निगाहें इतनी जहर आलद होती थी कि उसे अपने अन्दर

नश्तर के पेवस्त हो जाने का अहसास होने लगता। थूक उसके हलक मे अटक जाता। चेहरा निस्तेज और असहाय हो जाता। ऐसे वक्त उसकी निगाहे नीची हो जाती और वह दूसरी सिम्त की ओर चल पडता। तब उसे महसूस होता कि उसका पूरा शरीर बर्फ की सिल्ली मे तबदील हो चुका है।

उसने सोचा अब यहा से निकल भागना चाहिए।

वह उठा, उठकर उसने ज़ीरो लाइट का बल्ब जला दिया। नगे फर्श पर जब पाव ठिठुरने लगे तब उसने चप्पलें पहिन ली फिर एक निगाह पलग की ओर फेंकी।

उसका एक हाथ ठुड्डी के नीचे था और दूसरा सीने पर। चेहरे पर बिछी सियाह बालो की एक लट उसकी खूबसूरती मे चार चाद लगा रही थी, वह गहरी नीद मे अलमस्त सोई पडी थी फिर भी उसकी मुख-मुद्रा काफी आकर्षक लग रही थी।

उसने पलग की ओर अपने कदम बढाये, सोचा चलते-चलते एक बार इसका चेहरा और चूम ले। पर यक-ब-यक उसके पाव रुक गये। वह मुड गया और बिना उसकी ओर देखे दरवाजा खोलकर बाहर आ गया।

बाहर गहरा अन्धेरा था। और हाड कपा देने वाली तेज़ ठण्ड। उसने गले मे मे पडे मफलर को कानो के इर्द-गिर्द लपेटा और तेज़-तेज़ कदमो से अन्धेरे को चीरता हुआ आगे की ओर बढने लगा।

अचानक उसके दिमाग मे एक विचार कौध गया कि उसने अपने भागने के बारे मे किसी को कुछ नहीं बताया। लोग क्या सोचेंगे कि आखिर वह गया कहाँ। सभव है उसके इस प्रकार गायब हो जाने से बेचारा कोई बेगुनाह फिजूल मे ही फस जाय।

पर जब उसे याद आया कि कल ही उसने अखबारो के लिए अपनी मौत का समाचार तैयार कर लिया था तो उसे सन्तुष्टि हुई। उसने अपने ओवर कोट की जेब मे हाथ डाला तो वहा सभी लिफाफे मौजूद थे।

वह खुशी-खुशी डग भरता रहा।

चौराहा आ चुका था। चौराहे पर खडे लेम्पपोस्ट की मुर्दा रोशनी मे लेटरबाक्स ऊघ सा रहा था। उसने वे सारे लिफाफे उसमे डाल दिये। उसने सोचा कि कल जब लोग अखबारो मे पढेंगे कि उसका काम तमाम हो गया है तब उन्हे बडी खुशी होगी।

यह सब सोचकर उसने राहत की सास ली।

न जाने वह कितना चला, उसे कुछ याद नही ।

सुबह हो चुकी थी । सूर्य का प्रकाश चारो ओर फैल गया था । वह कहाँ पहुच गया था । उसे कुछ भी मालूम नही था ।

वह एक बियावान मे खडा था । और अपने पीछे इतिहास की शक्ल मे एक खूबसूरत, दिलकश और प्यारा-सा जगल छोड आया था ।

धूप तेज थी, चेहरे पर पसीना चुहाचुहा आया था, उसे याद आया । जब वह भागा था – तब रात थी, घना अन्धेरा था और कडाके की ठण्ड । इस वक्त दिन है, दिन चारो तरफ प्रकाश फैला है और बदन पसीने मे सराबोर है । उसने सोचा कि उसके दौडते, भागते पूरी एक मौसम गुजर चुकी है । उसे खुशी हुई कि बिना खाये-पिये, बिना थके-हारे वह एक मौसम तक जिन्दा रहा है ।

जगल पीछे छूट चुका था ।

अब वह एक अलग ही दुनिया म आ गया था । जहा न शोरगुल था, न परिवार वालो की चख-चख थी, न प्रेमिका की फरमाइशें । वहा सिर्फ ऊँचे-नीचे मैदान थे, घाटिया थी और पहाड थे ।

रास्ते मे उसे न कही शहर मिला, न गाव न, कोई आदमी, न आदमजाद कही कही दरख्त जरूर नजर आए पर उनके सरो पर पत्ते नही थे । तालाब और कुए भी दिखाई दिये पर उनमे पानी नही था ।

अब वह थोडा असमजस मे पड गया था कि आखिर वह कहा आ गया है । वह चला जा रहा है पर उसका कही अन्त नजर नही आता । उजाला है पर सूर्य कही दिखाई नहीं देता, आखिर माजरा क्या है ।

।

।

।

वह एक बडे मे काले शिलाखण्ड पर बैठ कर यही सब कुछ सोचने का विचार कर रहा था कि एक पहाडी की तलहटी मे उसे कुछ हलचल नजर आयी ।

वह पहाडी की ओर बढ चला ।

उसने देखा कि असख्य स्त्री-पुरुष नग-धडग अवस्था मे एक घेरा बना कर नाच रहे हैं, नाच के साथ-साथ वे अपनी भाषा मे कुछ गा भी रहे थे ।

वह पहाडी पर चढ गया और एक अच्छी सी समतल चट्टान पर बैठ कर इनका नाच देखने लगा ।

वह एक ऐसे स्थान पर बैठा हुआ था कि आसानी से इन्हे नाचते हुये देख सकता था । पर नाचने वाले उसे नही देख सकते थे ।

नृत्य अविराम चल रहा था ।

वे स्त्री-पुरुष रात-दिन नाचते रहते, बिना खाये, बिना सोये, बिना थके ।

इस प्रकार नाचते-नाचते कई मौसम गुज़र गयी। पर उनका नाच बन्द नह
हुआ, न उनके घर थे, न परिवार, न बाल-बच्चे। उनको न खाने की चिन्ता थ
और न सोने की और न पहिनने की। शायद उनकी जिन्दगी का अर्थ ह
सिर्फ नाचना था। हा, यह बात ज़रूर थी कि एक अदृश्य नगाडे की आवाज
की ताल पर उनके पाव उठते थे। और वे मस्ती मे झूम-झूम कर नाचते थे।

जब इस तरह पहाडी पर बैठे-बैठे उसे कई बरस बीत गये तब व
वहा से नीचे उतरा और नाचने वालो के निकट जा पहुचा।

वह किसी एक से कोई सवाल पूछता उससे पहले ही नगाडे की अवाज
बन्द हो गयी।

अचानक गीत के बोल चुक गये और नाच बन्द हो गया।

उसने देखा कि वे असख्य स्त्री-पुरुष जो बरसो से नाच-गा रहे थे एक
दूसरे पर मरे पडे है, और उनके शरीर से गाढा लाल खून निकल रहा है।
खून ने धीरे-धीरे रक्त-नदी का रूप धारण कर लिया है, और अब उस रक्त
नदी म उनकी लाशें तैर रही हैं।

वह डर जाता है और डर के मारे उसके मुह से एक भयानक चीख
निकल पडती है।

उसे लगता है कि रक्त-नदी अपने मे समेटने के लिए उसकी ओर
तेजी से बढ रही है। अगर वह यहा से नही भागा तो बहुत जल्दी ही उसका
शिकार हो जाएगा। इस अहसास के जगते ही वह भागने के लिए अपने आपको
तैयार कर लेता है और जिस ओर से वह यहा आया था, उसी ओर मुंह करके
बेतहाशा भागने लगता है।

वह भागता रहता है और पीछे मुडकर नही देखता।

भागते-भागते उसे महसूस होता है कि वह भयानक काला जगल बहुत
पीछे छूट गया है।

बादल

□ उषा तामरा

एक बार पुन बिजली जोरों से कड़क उठी और पूनम डर से चीख उठी। गोपी ऽऽ...

रामलाल ऽऽऽ...

"न जाने कहाँ मर गये हैं सारे !"

इस नीरव वातावरण मे जबकि बिजली की गर्जन से भयानकता सी छा रही थी पूनम की आवाज गूँज उठी। प्रत्युत्तर मे देर तक कोई भी आवाज न पाकर वह स्वयं उठी और दरवाजा खोलकर भीगती हुई तार पर से कपड़े उतार कर ले आई। अन्दर आने तक वह काफी भीग चुकी थी। नन्हीं नन्ही फुहारें खिड़की से आ आकर पूनम के कपोलों को भिगोने का अभी भी विफल सा प्रयास कर रही थी।

कपड़े बदलते हुए पूनम ने अपना प्रतिबिम्ब दर्पण मे देखा ! यकायक वह चौंक उठी जैसे स्वयं को पहिचानने मे ही असमर्थ हो। पाँच वर्ष ! हाँ— पाँच वर्ष ! बीत गये हैं उसे विनय के साथ रहते। इन विगत पाँच वर्षों ने कितना परिवर्तन ला दिया है उसमें, कितनी सुकुमार सी थी वह। अतीत की स्मृतियों ने उसे कुछ बेचैन सा कर दिया था आज। उसके स्मृति पटल पर बार बार अतीत दस्तकें दे रहा था। यकायक बिजली फिर जोरों से कौंधी। वातावरण की निर्जनता से वह काँप उठी। अचानक दरवाजा खुला। हाँफती हुई भीगी गोपी ने प्रवेश किया।

"बीबी जी ! क्या आज आपने अभी तक खाना नहीं खाया ? तबियत तो ठीक है ना ? खाना ले आऊँ बीबी जी ?"

"नही सोनी रहने दे। अभी मेरा जी ठीक नही है। खाना यही रख कर तू घर चली जा। बच्चे घर पर तेरी राह देख रहे होगे।"

"अच्छा बीबी जी! जैसी आपकी इच्छा।" सोनी ने उत्तर दिया और पुन रसोई घर मे चली गई।

पूनम आज एकान्त चाहती थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके सोचने मे क्रम मे कोई बाधा डाले। पांच वर्ष पूर्व के वे दिन एक-एक कर उसके समक्ष सजीव हो उठे थे· ।"

खट! खट! खट! ' पूनम देख तो द्वार पर कौन है?"

"आई माँ!" कहती हुई पूनम ने खुली किताब को जल्दी से बन्द किया और सीढ़ियाँ उतरती हुई तेजी से द्वार की ओर पहुँची।

"ओह! आप! आइये ना! कहिये कैसे आना हुआ?"

"जी! वोऽऽ वो मैं यही पूछने आया था कि आज प्रोफेसर दत्ता क्लास लेंगे या नही?"

"जी! मैं रूपा से पूछकर अभी बताती हूँ। आइये, आप अन्दर बैठ जाइये।"

"कौन है पूनम?" अन्दर से माँ का स्वर सुनाई पडा।

"नमस्ते माँ जी।"

"जीते रहो बेटा। सुखी रहो। आओ। आओ यहाँ बैठो।"

"माँ ये हमारे साथ ही एम० एससी० मे पढते हैं इनका नाम···।

"जी! मेरा नाम राजेश है।" राजेश ने तुरन्त कह डाला था। रूपा के घर हो आई हुई पूनम ने देखा कि राजेश चाय पी रहा है और माँ उसके परिवार के विषय म पूछ रही है।

"जी! आप रूपा जी से पूछ आई ना?"

"जी हाँ। वे लौट आये हैं और आज प्रोफेसर दत्ता कॉलेज जायेंगे।"

"धन्यवाद।" कहते हुए राजेश उठ खडा हुआ।

"आया करो बेटे! ये तुम्हारा ही तो घर है।"

"जी! अच्छा माँ जी। अब मैं चलूँगा।"

माँ जाते हुए राजेश को दूर तक देखती रही। शायद उसे आया देख आज माँ को मेरे बड़े हो जाने का बोध ही आया था।

"जा बेटी! तू भी नहा ले। और मुनी तथा विकी को भी नहलाकर स्कूल जाने के लिये तैयार कर दे।

'अच्छा माँ।"

"बीबी जी!"

अचानक उसकी विचार शृंखला टूटी। देखा सामने सोनी खड़ी थी।

"बीबी जी आपका खाना कहाँ रखूं ?"

"मेरे सिर पर !" उसने गुस्से से चीखते हुए कहा।

"बीबी जी मे·· रा मतलब था··· ।"

अब उसे सही स्थिति का बोध हुआ।

"तुम खाना यही रख दो और घर जाओ मोनी।"

"घर कैसे जाऊँ बीबी जी ? अभी तक बाबूजी नही आए। उफ ! कैसी गजब की तूफानी रात है।"

"तू भी कितनी भोली है री ! कैसी बातें किया करती है ? क्या पिछले पाच वर्षों म बाबू जी कभी जल्दी घर लौटे हैं ? ऐसा कर। तू जा।"

"अच्छा बीबी जी !" न चाहते हुए भी वह जाने को उठ खडी हुई। पूनम ने उठ कर द्वार बन्द किया और पलग मे धँस गई। वह पुन अतीत म पहुँच चुकी थी। अतीत की स्मृतियाँ चलचित्र की तरह एक-एक कर स्मृति पटल पर आती जा रही थी ।

ऐसा ही एक दिन था वो भी ! पर ऐसा भयावना नही। उस दिन जैसे तपनी गर्मी के बाद मेघों ने पहली बार मल्हार गाया था। रिमझिम रिमझिम फुहारें गुनगुना कर ताल दे रही थी। वह कॉलेज कम्पाउन्ड मे खडी देर तक यही देख रही थी। प्रकृति के अद्‌भुत सौन्दर्य मे खो सी गई थी।

"कुछ सुना आपने ?" अचानक एक परिचित सा स्वर उसके कानो मे रस घोल गया। पलकें उठी और सामने खडे व्यक्ति की आँखो मे जा टकरायी।

"जी ! आपने मुझसे कुछ कहा ?"

"जी हाँ, कहाँ खोई है आप ?"

"जी ! जीऽऽ वो...कहिए !"

"हमारा रिजल्ट निकल गया है और आप सैकिण्ड डिवीजन से पास हो गई हैं।"

"जी ! जी ··"और इसके बाद आगे वह कुछ न कह सकी।

"जी मेरी तरफ से बधाई स्वीकार कीजिए।"

"जी ! शुक्रिया" इतना ही कह सकी थी वह। हडबडाहट मे ये भी नही पूछा कि राजेश किस श्रेणी से पास हुआ है। साइकिल उठाई और बिना नोटिस बोर्ड पर देखे ही घर चल दी।

"माँ ! मम्मा ऽ ऽ ऽ देखो तुम्हारी पूनम सैकिण्ड डिवीजन मे पास···" और आगे की बात उसके गले में ही फँसकर रह गई। सामने खून मे लथपथ माँ आँगन मे पडी थी और पडौसियों की भीड जमा थी।

"माँ ऽ ऽ ऽ ऽ क्या हुआ माँ ! बोलो मम्मा !"

"बेटी !" तू"'आ गई सुनी"'और" विकी"'बा"'प"'याल"
र"'ख"'ना।"

"नही ! मां ! भगवान पर भरोसा रखो। ऐसी बातें मत करो मा।
हम अभी अस्पताल चलते हैं, तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी।"

कहने को तो पूनम ने कह दिया मगर वह स्वयं उलझन मे पड गई
थी। इतनी बडी दुनिया मे कोई भी तो ऐसा नही जिससे वह मदद की आशा
करे। पापा के मरने के बाद मम्मा ने कितनी परेशानियां उठाकर उन तीनों
बहन भाइयो की परवरिश की थी, यह वह अच्छी तरह जानती थी। और
तभी, राजेश आशा की किरण लेकर उसके जीवन मे आया।

माँ को अस्पताल मे भर्ती हुए आज दस दिन बीत गये थे। इच्छा के
विपरीत उसने राजेश की मदद ली जो लखपति बाप का इकलौता बेटा था।
आर्थिक सहायता के अतिरिक्त राजेश ने माँ की जी जान से इतनी सेवा की
कि वो इसके इस अहसान से भीग सी गई थी। माँ भी उसे प्यार व इज्जत की
दृष्टि से देखने लगी थी। कुछ ही दिनो मे माँ स्वस्थ होकर घर आ गई।

एक' एक' कर दिन पख लगाकर उडते गये और पूनम राजेश के
और करीब आती गई। और एक दिन

"पूनम ऽऽऽ" देखो तो क्या है मेर हाथ म ?" खुशी से झूमते हुए
राजेश ने आँगन मे प्रवेश किया।

' क्या है भला ! तुम्ही बताओ ना राजेश ?"

' देखो पूनम ! ये मेरा एपाइन्टमैंट लैटर है। एक फर्म मे मैंने चीफ
कैमिस्ट के लिए एप्लाई किया था, वही से आया है।"

"सच ! तुम्ह नौकरी मिल गई ?' पूनम भविष्य के सुखद स्वप्नो मे
खो गई।

"क्या सोचने लगी ?"

"ऊँ ! हूँ ! आपको क्यो बतायें ? सोचती हूँ। सो" चती"
हूँ कि •।"

"हाँ ! हाँ बोलो ना ! प्लीज !"

"सोच रही थी कि हमारा एक छोटा सा घर होगा जहाँ तुम होगे मैं
हूँगी और" ' पूनम ने शर्म से राजेश के वक्ष म अपना सर छिपा लिया। उस
क्षण पूनम ने राजेश को अपना सब कुछ समर्पण कर दिया था। और दिन यूँ
ही हँसी खुशी मे बीतते रहे। एक दिन—

'बेटा तुम्हें पूनम से अब शीघ्र ही विवाह कर लेना चाहिए।"

' क्यूँ माँ ? आप कुछ परेशान सी दिख रही है ?"

"तुम शायद नही समझोगे बेटे ! कि मैं क्या कहना चाहती हूँ।"

"साफ साफ कहिये ना माँ जी ?"

"बेटे ! पूनम तुम्हारे बच्चे की माँ बनने'''।"

"ये आप क्या कह रही हैं ?" राजेश ने लाखो सर्पदंश एक साथ अनुभव करते हुए कहा। राजेश सोचने लगा अगर उसके पिता को पता लगेगा तो हो सकता है कि उसे लाखों की सम्पत्ति से वंचित कर दें या फिर घर से ही निकाल दें या फिर'''और इसके आगे वह कुछ न सोच सका। तुरन्त ही द्वार की ओर बढ चला और फिर वह कभी नही लौटा। कुछ दिनो बाद पता लगा कि उसका विवाह होने वाला है।

ये सब क्यों और कैसे हो गया ? प्यार की इतनी बडी बडी कसमें खाने वाला आज का युवक इतना कायर और भावनाविहीन कैसे हो सकता है ? कालेज म घण्टो नैतिकता पर भाषण देने वाले राजेश का सही रूप कौन सा हो सकता है ? क्यो नही वह पिता के समक्ष सीना तानकर कह सका कि वह शादी करेगा तो केवल पूनम से। कहाँ चले गये उसके सस्कार, परिवेश और नैतिकता ! या मात्र वह ढोंग था, कवच था। या शायद इसलिए कि वह गरीब घर की लडकी थी जिसके सिर पर पिता का साया तक न था। या फिर इसलिए कि उसने विवाह से पूर्व ही अपना सब कुछ समर्पित कर दिया था। कौन सा कारण था जो उसे राजेश ने अधकार के गहरे गर्त मे अकेला भटकने के लिए छोड दिया था। इस अनाम सन्तान को कहाँ से देगी वह नाम ! पिता का प्यार ! या फिर !''' नही, नही, किसी जीव की हत्या का खौफनाक विचार ही उसे डरा देता था। वह कायर नही बनेगी। और इसी तरह दिन धीरे धीरे बीतते रहे।

माँ ने मामा जी को पत्र लिखा और शीघ्र ही उसका विवाह हो गया। ससुराल मे पति, सास ननद से इतना प्यार मिला कि सब कुछ भुला बैठी। मगर ये सुख ज्यादा समय तक उसका साथ नही दे पाया। एक शाम उसके जीवन मे आई और अपनी मनहूस कालिमा भरकर उसके जीवन में जहर घोल गई।

'अरी ! कुलटा है बहन !"

'शादी के छ महीने बाद बेटा ! कही देखा, सुना है क्या ?"

पिघला हुआ शीशा कोई पूनम के कानो में उडेले दे रहा था और न सुन सकी। वह चीख उठी।

"बस कीजिये।"

"कौन बस करेगा ? मम्मी ! पापा ! पडोसी ! सभी बस कर देंगे मगर मैं'''ओफ ! मैं क्या'' ये कभी भुला सकूँगा कि तुमने ! मेरी पत्नी ने जिसने मैंने इतना प्यार किया, मुझसे विश्वासघात किया है। इस बच्चे

का बाप ! मैं·· नही !·· और कोई ? । बोलो क्यूँ किया तुमने ऐसा ?" कहते हुए विनय ने उसे झकझोर डाला था।

"भगवान के लिए कुछ बोलो पूनम ! ओफ ! ये बच्चा ! हमारे दाम्पत्य जीवन मे एक खाई है, एक दरार है। जो कभी·· नही···पटेगी।" कहते हुए विनय आवेश के साथ कमरे से बाहर चला गया।

'सुनिये· सुनिये·· सुनिये·· तो· "।

मगर पूनम का स्वर मात्र शून्य मे विलीन होकर रह गया और उसके बाद सहानुभूति और प्यार पूनम के लिए जैसे कल्पना की वस्तु बनकर रह गया। विनय ने अपना तबादला वहाँ से दूसरे शहर मे करा लिया ताकि परिस्थिति से समझौता कर सके। परन्तु उसका व्यवहार दिन प्रतिदिन पूनम के प्रति कटुतर होता गया। विवाह के बाद एक पल भी दूर न रहने वाला विनय महीनों तक घर न आता होटलो मे नशे मे धुत्त पड़ा रहता। और पाँच वर्ष इसी तरह बीत गये।

अचानक फिर बिजली कौंधी और नन्हा मुकुल डर कर रोने लगा, शायद कोई द्वार खटखटा रहा है। कौन है द्वार पर !' स्वर मुखर हो उठा। लगा कोई देर से द्वार खटखटा रहा है। बादलो की गर्जना के कारण सुनाई नही पड़ा।

"दरवाजा खोलो पूनम !"

घड़ी ने टन टन कर दो बजाये। पूनम द्वार की ओर बढ चली। इस बार स्वर स्पष्ट था। शायद विनय आ गया है। मगर आज का स्वर प्रतिदिन से भिन्न था। रोज की तरह पूनम ने बाहे फैला दी। शराबी पति को सहारा देने को। इस शराब ने उसके घर को तबाह कर दिया था। कुछ भी तो नही बचा था न मन मे ही न घर मे ही ! मगर ! आज विनय निढाल सा पूनम की बाहों मे नही गिरा अपितु दौड़कर उसने पूनम को सीने से लगा लिया।

"आज मैं लौट आया हूँ पूनम ! मेरी एक छोटी सी जिद के कारण हम तीनो का जीवन कितना नारकीय बन गया था। ओह ! आत्म ग्लानि की आग मे हर शाम जला हूँ मैं। शराब ने मुझे खोखला कर दिया है। इधर देखो ! अब मै कभी शराब नही पीऊँगा पूनम !"

पूनम ने अविश्वास से उन आँखो मे झांका तो पाया, वहाँ क्षोभ, पश्चाताप और आत्म-ग्लानि जैसे अनेको भाव तिर आये थे।

"क्या तुम मुझे, माफ नही करोगी पूनम ? सच पूनम ! मैं ! मैं ! कभी शराब नही छुऊँगा !"

"सच !"

"हाँ पूनम ! तुम्हारे प्रेम का अमृत जो मेरे साथ होगा ।"

"अच्छा, मुकुल कहाँ है ?" लग रहा था जैसे विनय ने पहली बार मुकुल को देखा हो। प्यार से उसे गोद मे उठाकर ढेर-सा प्यार कर डाला। मानो उसे खोया हुआ प्यार मिल गया हो।

"कुछ नही कहोगी, पूनम ?"

पूनम ने सिर उठाकर देखा जिसे जीवन मे पुन अप्राप्य मिल गया था। उन निगाहों में अविश्वास की परछाइयाँ थी। एकाएक पूनम विनय की तरफ बढी। अवश-सी वह विनय की बाहो में सिमट आयी और सीने पर मस्तक टिकाकर सिसकियाँ भरने लगी। समझ नही पा रही थी कि यह आनन्दाश्रु है अथवा दु ख के अश्रु।

वातावरण को सामान्य करने के लिये विनय ने कहा—

"बोलो मुकुल, पापा।"

और मुकुल के तोतले मुख से पा···पा ··सुनकर पूनम निहाल हो उठी थी। उसके होठो पर एक मुक्त हँसी थिरक आई थी।

बिजली कडकना शान्त हो गया था। तूफान थम गया था और बादल भी नही गरज रहे थे। विनय के सीने पर सिर रखकर लेटे-लेटे न जाने कब आँख लग गई। सुबह देर तक सोई रही पूनम ! उठने पर अलसाई-सी आँखो से देखा—बादल अब छँट गये थे और आसमान साफ था और आँगन में मीठी सुनहरी धूप खिली थी। पूनम की मन स्थिति भी ठीक ऐसी ही थी।

है, वैसा है। परन्तु न जाने क्यो मैं चुप कर गया। किसी को नगा करना साहस का काम है, और यह साहस इतनी आसानी से जागृत नही होता।

अब उनकी बातें आगे चल पडी। मेरा ध्यान उनकी तरफ पहले से भी ज्यादा खिच गया। काफी देर तक उनकी बातें फिल्मो, एक्टरो और एक्ट्रेसो के इर्द-गिर्द घूमती रही। वे बातें कर रहे थे और मैं बार-बार सोच रहा था कि कण्डक्टर को बुलाऊँ और बताऊ कि ये विद्यार्थी नही मास्टर है, इनका टिकट बनाओ। कुछ लोग ऐसा करते है, तभी तो बसें और गाडियाँ घाटे मे चलती हैं। सरकार को भाडा बढाना पडता है। ऐसे लोगो की पोल खोली जानी चाहिए। गलत से घृणा करने वाले लाग भी गलत का डट कर विरोध नही करते, तभी तो गलत होता रहता है।

परन्तु साथ ही सोचा—चला जाने दो अपना क्या लेते है ! पता नही कण्डक्टर भी मेरी बात को महत्त्व दे या न दे ? अब मुझे कन्डक्टर पर भी बहुत क्रोध आ रहा था—इसने पूरी जाँच पडताल क्या नही की ? इसने इनसे विद्यार्थी होने का प्रमाण क्यो नही माँगा ? इतनी सरलता से इसने इनके आगे घुटने क्यो टेक दिए ? यह अपना फर्ज पूरा नही करता। अगर यह सरकारी बस न होकर इसकी घर की बस होती तो क्या यह इन दोनो को बिना टिकट जाने देता ?

लेकिन बोलना चाहते हुए भी मैं कुछ न बोल सका। बोल मेरे होठो तक आ आकर नीचे बैठते गए। फूटे नही। मेरा मन उन शिक्षको से भी डर रहा था—मेरे बोलने पर कहीं ये भी मुझे भला-बुरा न कह दें ? आजकल चोरो के भी पाव होते है। (पुलिस वालो के साथ मिलकर जो चोरी करते हैं) चोरी पकडी जाने पर शर्म महसूस करने की जगह धोस ज्यादा दिखाते हैं।

बाद मे उनकी बातें क्रिकेट पर आ गई, एक ने कहा—मैंने तो 'कमेन्ट्री सुनने के लिए कल सी एल ले ली थी, घर वाले कहने लगे कि चक्की पर आटा पीसा लाओ। परन्तु मैंने तो तुरन्त टका सा जबाब द दिया कहा कि छुट्टी आटा पिसा कर लाने के लिए नही ली। पर बाद मे दुख ही हुआ जब भारत हार गया।

"अभी तो प्रथम टैस्ट ही हारा है ?"

"वह तो ठीक है लेकिन खेलो मे भारत की स्थिति चिन्तनीय है।"

सुनकर उनके साथ बैठा तीसरा आदमी बोला—एक खेल ही क्यो ? भारत मे तो और भी चिन्ता के बहुत से विषय हैं, यहाँ गरीबी है, शोषण है, असमता दहेज है, जातिभेद है, भ्रष्टाचार है, यहाँ सरकारी कर्मचारी अपनी 'ड्यूटी की अवहेलना करते है, यहाँ क नेता सिर्फ वादे ही करते हैं, यहाँ के 'टीचर' बस का भाडा बचाने के लिए 'स्टूडेन्ट' बन जाते हैं, गलत का विरोध चाहने वालो मे

मुंह से बोल नही फूटते, वे कायर है, डरते हैं, जहाँ तक मैं समझता हूँ जब तक ये बातें रहेंगी, भारत की स्थिति खेलों मे भी अच्छी नहीं होगी।

मैंने पीछे मुडकर देखा—उस आदमी को सुनकर, उनके चेहरे उतर आए थे। वे सफाई देने लगे—यूं थोडी बहुत बेईमानी तो सब जगह चलती है।

"थोडी बेईमानी करने वाला, मौका मिलने पर बडी भी करेगा। फिर सब जगह हो रही है इसका मतलब यह तो नहीं कि हम भी करते चलें जाएँ? कही न कहीं से अच्छाई के लिए शुरुआत होगी, तभी अच्छाई आगे आएगी। बेईमानी को देखकर आप बेईमानी करने की ही क्यो सोचते है? उसके विरोध मे क्यो नही खडे होते?"

तभी किसी गाँव का 'स्टापेज' आ गया। वे दोनो उतर पडे। शायद यह उनके गाँव का अड्डा नही था। वे सिर्फ लोगो की नजरो से बचने के लिए ही उतर गए थे।

वह आदमी मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने सोचा—मैं खामखाँ ही बेई-मानी का विरोध करने से डर गया, देख यह आदमी शाबाशी मार गया!

मैंने उससे बातें करने के लिए पीछे की ओर सिर घुमाया—आपने खूब लताडा उन्हे। बेचारो को जाना तो शायद आगे था लेकिन शर्म के मारे पहले ही उतर गए। अब दूसरी बस से आएँगे।

"हाँ लगता तो ऐसा ही है।"

मुझे बहुत पश्चाताप हो रहा था। बुराई के विरोध म मैंने पहल क्यो नही की! मैं बार-बार अपने से पूछ रहा था भीतर का यह आदमी बाहर कब आएगा?

अन्त्येष्टि

□ मुरलीधर शर्मा 'विमल'

शाम को भोजन के समय राजेश की थाली म केवल लुक्खी रोटियाँ आती हैं। भोजन के इस स्वरूप को देखकर वह समझ जाता है कि आज फिर कोई बात हुई दिखती है। खैर, हुई होगी ! इस घर म कोई बात का होना कोई नवीन बात तो है नही यह तो एक रुटीन सा बन गया है।

वह एक बार तो विचारता है कि नमक मिर्च माग ले और उसी से चेपा करे, पर तभी उसके सामने मजदूरो का वह सीन साकार हो जाता है जब उसने उन्हें मस्ती मे कोरे टिक्कड चेपते देखा था।

वह अत्यन्त भावुक हो उठता है। आज यदि कोरी रोटी ही खाई जाये तो कैसा रहे ! कोरी रोटी भी स्वाद रखती है, फिर असली स्वाद तो मन का होता है। चित्त मे प्रसन्नता होने पर सभी कुछ स्वादिष्ट लगने लगता है। महाराणा प्रताप ने और उनके बच्चो ने तो घास की रोटियाँ खा-खा कर दिन तोड़े थे। उसके सामने तो शर्बती कणक की रोटियाँ हैं।

वह बडे आराम से रोटी तोडने लगता है। उसे इस प्रकार जीमने देख सामने बरामदे मे बैठी उसकी मा कहती है—"राजू आज तो तू बडा धीरज वाला हो गया रे, तू तो दो सब्जी बिना थाली मे हाथ नही डाला करता था और आज तुझे सरला के हाथ की बनी लुक्खी रोटी भी बडी मीठी लग रही है।"

वह अपनी मा के कथन पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही करता। सहज भाव से रोटी का टुकडा चबाता रहता है। उसकी मां पुन: कहती है—"भले खानदान की होती, तो दाल, पापड, बडी आदि मे से कुछ भी बना देती !"

तभी रसोई मे से उसकी पत्नी सरला का स्वर आता है—"दो दिनो से कह रही हूँ कि घर मे घी, तेल, दाल आदि कुछ भी नही है, पर मेरी सुनता कौन है ! बडी, पापड तो इस महीने आये ही नही।"

"कुछ भी नही है तो मुझे क्या सुना रही है, मैं कौन सी कमाने जाती हूँ !"

मुँह का कौर पानी की घूट से निगल कर राजेश कहता है—"मा, कमाने न तो तू जाती है और न वह ! मैं अपनी सैलेरी ला करके तुझे सौंप देता हूँ, सामान पिताजी लाते हैं, तब वह तुम्हे नही तो और किसे कहेगी ?"

'इस जमाने म चार सौ रुपयो स होता क्या है ! तुम्हारी चार सौ रुपल्ली तो दस तारीख तक ही समाप्त हो गई ! मैंने आज पन्द्रह तक धाका-धिका लिया यही क्या कम है !"

'पर तुम मुझे भी तो कह सकती थी !"

क्यो, मैं क्यों कहूँ ? तुम्हारी सेठानी के मुँह में कौन से काँटे उगे है ? यू तो राई रत्ती सब तुम्हे पोती रहती है। और तुम्हारी आँखें कौन-सी मिची हैं ? सुबह उबले आलुओ की सब्जी तुमने कौन-सी नही खाई !"

राजेश के लिये रोटी निगलना भारी पड जाता है। वह बिना हाथ धोये चुपचाप उठकर ऊपर चढने लगता है तथा अपने कमरे में पडी खाट पर जा पडता है।

उसके कुछ भी समझ में नही आता कि वह क्या करे ! उसे आश्चर्य होता है कि हजार रुपये इतन शीघ्र समाप्त कैसे हो गये ! चार सौ मैं देता हूँ करीब इतने ही पिताजी के हो जात हैं दो सौ के करीब मकानो का किराया भी आता ही है।

मैं अधिक दूँ तो भी कहाँ से दूँ ! एल० आई० सी०, स्टट इन्शोरेन्स सी० टी० डी० आदि क कट-कटा कर साढे चार सौ मिलते हैं। पचास मुझे भी चाहिये। दस-पन्द्रह स्कूल में टी-क्लब में देने पडते है इतने ही पान-सिगरट में खर्च हो जाते हैं, दस पाँच छोरियो के लिये भी तो चाहिये कभी टॉफी तो कभी बिस्कुट। नहाने का साबुन और तेल भी तो मुझे ही लाना पडता है।

वह पिछले कई महीनो सेचप्पल लाने को कह रही है पर मैं नही ला सका। उसे दो काम चलाऊ धोतियो स असुविधा होती है, पर यह सब मेरे सोचने की बात कहाँ है ?

कुछ दिन पहले अजू के लिये एक फ्राक ले आया था, बस मा ने सुनाने में कसर नही छोडी ?" बाप की लाडली है भाई ! करम तो मेरे छोरो के फूटे हैं। घर में रमने-खेलने वाली के लिये तो फ्राक जरूरी पर स्कूल जाने वाले छोरो की हाफपैण्ट भी फट जाये तो उस ओर कोई ध्यान देने वाला नही !

राजेश स्टूल पर रखी डिबिया मे से एक सिगरेट लगा कर फूंकने लगता है। उसे रह-रह कर मा के व्यवहार पर तरस आता है। वह मा जो शादी से पूर्व मेरे लिये सब कुछ करने को तत्पर रहती थी। वह आज इतनी बदल कैसे गई। उसे याद आता है वह समय, जब उसे भूख लगने पर तथा मन चलने पर उसकी मा उसके लिये अर्द्ध-रात्रि को भी उठ कर हलुआ और पकौडिया बना दिया करती थी। उसी मा ने आज उसकी थाली मे लुक्खी रोटी रखवाई और वह भी जीमने नही दी। राजेश की छाती भर आती है। उसकी आखो से अश्रुकण लुढकने लगते हैं।

सिगरेट के कई लम्बे-लम्बे कश मार लेने के बाद वह मुस्कराने की निष्फल चेष्टा करता मन ही मन कह उठता है—राजू समझ ले कि तेरी वह मा अब नही रही और यह तेरी कोई सौतेली मा है।

ऐसा व्यवहार तो सौतेली मा का भी शायद ही होता हो ! राजू, तू एक व्यर्थ की भावना के पीछे पागल हो रहा है। घूड, तेरे ऐसे साथ रहने मे। सब का स्वास्थ्य गिर रहा है। सभी का मानसिक सतुलन बिगड गया है। इस विकृति के आलम मे कोई अशोभनीय बात हो गई तो सभी के लिये भारी सकट आ खडा होगा ! भगवान का धन्यवाद करो कि उस दिन, उस समय तुम्हारी जेब में माचिस नही थी और लालटेन भी तेल छिडकते समय भभक कर बुझ गई। यदि कुछ हो जाता तो ! पुलिस वालो की मुट्ठिया गरम करने पर भी पिण्ड नही छूटता। तुम सरला को खो बैठते और तुम्हारे मा-बाप तुम्हे !

घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं। तेरे अलग हो जाने में कही कोई बेजा बात नही है। राड से बाड भली। पर कैसा आश्चर्य, क्या बेटे की कामना इसीलिये की जाती है कि विवाह हो जाने पर वह अपनी खिचडी अलग से पकाये ! बेटा, बेटा न रह कर कुछ और हो जाये।

एक सिगरेट और लगा लेने के बाद वह विचारने लगता है कि आखिर इस गृह-कलह का मूल कारण क्या है ? कारण का सूत्र तलाशने हेतु वह अपने विगत को पढने लगता है।

मेरे विवाह के समय कोई बखेडा नही हुआ। पिताजी ने हर काम मेरी इच्छानुसार किया। लडकी मुझ से पसन्द करवाई। हाँ, मा ने जरूर कहा कि पढी लिखी लडकी ला तो रहे हो पर ऐसा न हो कि वह तो बनी-ठनी, उपन्यास पढती रहे और मैं घाणी के बैल की तरह जुती रहूँ। पर यह सब भी मा ने हसी के मूड में ही कहा था।

पिताजी ने भी हँसते हुए कहा था—"पढी-लिखी घर भी सभालेगी

और राजू को भी। अपने राजू का हाल तो तुम जानती ही हो, मस्त जीव है, उसे खाने-पीने की भी सुध नहीं रहती।"

वैवाहिक जीवन का प्रथम वर्ष बड़े आनन-फानन में बीता। किसी ने हमारे किसी काम में आड़ नहीं दी। हमारी इच्छा के हम ही मालिक थे। सिनेमा, पिकनिक आदि सभी कुछ एन्जॉय करते। मां कहा करती—"राजू तू रात को कहां अकेला भटका करता है? पार्क में सरला को भी ले जाया कर, वह बेचारी अकेली बैठी किसी किताब के पन्ने पलटा करती है।"

"आज उसके पास है कुछ पल चल जरूर ले आना।

आज यदि सिनेमा की बात आ जाये तो पहले तो वह ना ही देगी! और हां भर भी ले तो इस शर्त पर कि हम अंजू-मंजू को भी साथ लेकर जायें।

विवाह हुआ उस समय तो मेरी सर्विस भी नहीं लगी थी। एम० एससी० की परीक्षा दी थी। साल भर बी० एड० में भी लगा। और अब हर माह चार सौ लाकर देता हूँ फिर भी उन्हें संतोष नहीं! वहम बना रहता है कि न मालूम मैं कितना जोड़ रहा हूँ। जब कि उन्हें मालूम है कि ट्यूशन करना मेरे सिद्धान्त के खिलाफ है।

उस दिन तो पिताजी ने अविश्वास की हद ही कर दी! मुझे बुलाकर पूछा—'तुम्हारा बैंक बैलेन्स कितना है?"

"बैंक-बैलेन्स! बैंक मे तो मेरा खाता ही नहीं है।"

"सच कहता है?"

"सच कहता हूँ या झूठ बोलता हूँ, इसके बारे में मैं क्या कहूँ, आप स्वयं भी तो अनुमान लगा सकते है।

"सच कहता है, तो रख मेरे सर पर हाथ और मेरी कसम खाकर कह कि तू ने सरला के नाम बैंक में खाता नहीं खोल रखा!

उनका भ्रम मिटाने हेतु मैं वैसा ही कह देता हूँ। उस समय माँ तथा पिताजी जो प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, उसका ध्यान कर, मैं आज भी अवाक्-सा रह जाता हूँ।

"अरे राम राम! तू तो मेरी झूठी सौगन्ध भी खा गया! राजू तेरे से ऐसी आशा तो मैंने स्वप्न मे भी नहीं की थी! तू अपनी पत्नी का इतना गुलाम हो गया है, इसका पता मुझे लग जाता तो मैं ऐसी बात तुझे कहता ही नहीं, खैर!"

मैं वहाँ से चुपचाप उठकर चल देता हूँ, तभी माँ के शब्द मेरे कानो में पड़ते है। "मैंने तो पहले ही कहा था कि राजू से कुछ भी बात करना बेकार है। अब वह पहले वाला राजू रहा ही नहीं! मैंने तो शादी से पहले भी कहा था कि बी० ए० पास बहू लाकर क्या करोगे? अपने को कौन सी बहू की कमाई

खानी है। पर आपने मेरी एक न सुनी। लो कर लो अब घर का दलिद्दर दूर, चार सौ म तो उन चारों का काम भी मुश्किल से चलता है।"

कौन राजू है तेरे पास इन बातो का उपाय? तेरे पास कोई स्पेशल मार्का साबुन जिससे तू इन लोगो के मन का मैल धो सके या फिर तू उन्हें तेरी छाती चीर कर बता सके कि राजू का मन वैसा ही है, जैसा पहले था।

जैसा देते है खा लेता हूँ, जैसा पहनाते है पहिन लेता हूँ। चौडे धाडे इन पांच वर्षों म उसके लिये कोई चीज लाई हुई याद नही आती। साली के विवाह के समय अवश्य एक साडी और एक सैण्डल की जोडी ले आया था, पर लाने के बाद मुझे कितना सुनना पडा था।

साली के विवाह स लौटकर आन क बाद की घटना स तो मेरे मन का भी भारी आघात लगा था।

विवाह मे जाने स पूर्व मैंने कहा था कि अपने बक्स की चाबी माँ को दे देना। लौट कर आने के बाद एक दिन उसने जरा आवेश मे आकर कहा—'वही हुआ न जो मैंने सोचा था।'

"क्या हुआ?"

'हुआ क्या, पीछे स मेरे बक्स की तलाशी ली तथा मुझे लगता है अपने पत्रो को भी पढा है जो बक्स मे पडे थे।"

पागल हुई हो क्या? पराये पत्रो को पढन से ही पाप लगता है। पति-पत्नी के पत्रो को पढकर कौन नरक का भागी बनना चाहेगा।"

पर उसका कहना गलत नही निकला। एक दिन पिताजी ने मुझे बुलाकर कहा—'राजू जब तुम्हारी पत्नी यहाँ पर नही होती तब तुम्ह दूध मिलता है या नही? तुम्हारा ध्यान रखा जाता या नही।"

'क्या मतलब?"

"मतलब-वतलब कुछ नही, मैं पूछू उसका जवाब दो।"

'हाँ मिलता है।"

"तब तुम्हारी पत्नी ने यह कैसे लिखा कि दूध मे नागा नही होनी चाहिए, कभी दूध वाला नागा कर जाए तो बाजार म पी लेना। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। रुपये होगे ही। जरूरत पडे तो कुछ मेरे शृगार दान मे पडे हैं।"

उस समय पिताजी की बात सुन, मेरा मुह फक हो गया था। स्पष्ट हो गया कि इन्होंने हमारे पत्रो को पढ़ा है। उसके पत्र तो सामान्य से हुआ करते थे पर मैं तो न मालूम क्या-क्या लिख दिया करता था। मुझे लगा जैस मैं आवरणहीन हो अपनी पत्नी को बाहुपाश मे जकडे उनके सामने खडा होऊ।

उनके प्रश्न का मेरे पास कोई उत्तर नही था। मुझे लगा जैस मैं खजु-

राहो की किसी मूर्ति जैसा बन गया होऊँ ! और तभी उन्होंने पुन कहनी प्रारम्भ किया—'यह सब तिरिया चरित्र है, तेरी पत्नी तुझे हम से छीनना चाहती है, छीनना क्या चाहती है छीन ही लिया, जैसे हमारा तुम पर कोई हक है ही नही ! खैर, कोई बात नही ! आज नही तो मेरे मरने पर तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी कि था कोई कहने वाला !"

राजेश को खयाल आता है कि सास-बहू मे खटपट अजू के होने के बाद से शुरू हो गई थी। यह अजू शादी के दो साल बाद ही तो हो गई थी। छोरी के हो जाने के बाद उसके लिए घर का काम काज भी भारी पड़ने लगा था।

छोरी हग-मूत देती तो भी घर मे उसे कोई नही सभालता था। जब तक वह आ न जाती सब खडे-खडे तमाशा देखते रहते और उसे आवाजें लगाते रहते, चाहे वह लैटरीन अथवा बाथरूम मे ही क्यों न हो।

वह छोरी के कपडे साबुन से धोती तो माँ को ऐतराज होता। मैं मच्छरो से हैरान होकर मच्छरदानी ले आया तो ऐतराज हुआ—"हमारे बच्चे तो यो ही पल गये।"

सरला के आ जाने से राजेश के दिमाग म अतीत की चलती रील रुक जाती है। वह अजू को खाट पर पटकती हुई कहती है—"दुश्मनी है तो आप से और मुझ से है पर इस बच्ची ने उनका क्या बिगाडा है ? इसके आगे भी दो दाने भुजियो के डाल देते तो उनके कौन सी कमी आ जाती ?"

"दोपहर को साग-सब्जी लाने को कहा तो कह दिया पैसे नही हैं और अब सभी अचार और भुजियो से रोटियाँ गिट रहे हैं।"

"आप कुछ भी कहिए मुझ से यह सब अब बर्दाश्त नही होता। दोपहर केले आये सभी ने खाए पर इस छोरी को किसी ने एक टुकडा भी नही दिया ! आखिर मैं भी तो इसकी मा हूँ।"

नीचे से राजेश की मा के शब्द सुनाई पडते हैं—' रडी खुद अपने खसम के पास बैठी चाटती रहती है सो तो कुछ नही और छोरो को टुकडा खाने को भुजिये मगा दिए तो रडी के आग लग गई।'

"मैं जो कुछ करती हू चौडे धाडे तो करती हू। तेरी तरह नही कि छिप-छिप के खिलाती रहू !'

"यह तो राजू है जो तेरी सब सुनता है, तेरी तरह मै करती तो इसके पिता मेरी जबान खीच लेते !"

राजेश बाहर जाकर कहता है—"माँ कोई सुनेगा तो क्या कहेगा !"

"मैं किसी के बाप से डरने वाली नही हू। इस रडी ने मेरा जीना हराम कर रखा है। रडी हर वक्त मेरे छोरे क कान भरती रहती है। मैं जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ किस कुँए म जाकर गिरूँ !'

इतना कहकर राजेश की माँ जोर-जोर से रोने लगती है। दीवार से सिर टकराने लगती है। माँ को यो रोते देख और सिर फोडते देख राजेश के दोनों भाई भी रो उठते है। घर मे कुहराम-सा मच जाता है।

राजेश माँ को रोकने की दृष्टि से नीचे जाता है पर तभी उसके पिताजी बाहर से आ जाते हैं। वह बिना किसी से बोले बाहर निकल जाता है।

दूसरे दिन सवेरा होते ही राजेश अपनी माँ को कहता है—"माँ मैंने मकान देख लिया है हम अभी जा रहे हैं। तू जो कुछ बरतन-भाडे आदि दे सकती है वह दे दे।"

"मेरे पास कोई बरतन भाडे नही हैं। जो चाहिए सो खरीदो बाजार से।"

राजेश कुछ नही बोलता चुपचाप ऊपर चला जाता है। घटेक भर बाद वह एक बक्सा और अटेची लिए नीचे आता है। कमरे की ओर मुह कर, कहता है—"अच्छा तो माँ, मैं जा रहा हू।" उसकी माँ कोई प्रत्युत्तर नही देती पर उसके पिताजी कहते हैं—"जा रहे हो सो तो ठीक है, अब बच्चू को दाल आटे के भाव का पता लगेगा, पर मेरा जेवर कहाँ है ?"

"आपका दिया कोई जेवर मेरे पास नही है माँ ने कभी का ले लिया।

"नही है तो वह क्या पहने खडी है ?"

"वह तो उसे उसके पीहर से मिला है।"

"अच्छा, वह पीहर से मिला है, इसीलिए ले जा रही है पर तुम तो उसे पीहर से नही मिले हो, तुम क्यो उसके पीछे-पीछे जा रहे हो ?"

"पिताजी, मैं उसके पीछे नही जा रहा, वह मेरे पीछे जा रही है।"

"तुम मत जाओ, पछताओगे।"

"पर मेरा घर मे रहना असभव है।"

"तुम उसे पीहर भेज दो सभव हो जाएगा।"

"यह भी असभव है।"

"यह भी असभव है तो ठीक है अपनी शादी तथा दो जामो के कर्ज मे बकाया रुपये चुका दो फिर चले जाना।"

"कितना बकाया है !"

"करीब पाच हजार।"

'अभी तो मेरे पास एक फूटी कौडी भी नही है।"

'नही तो अपनी पत्नी का जेवर रख जाओ, चुका देने पर ले जाना।"

राजेश अपनी पत्नी को जेवर उतारने को कहता है। जब वह नही उतारती तो उसे गुस्सा आ जाता है। वह उसके हाथ मे से सोने चूडियाँ जबरन उतारने लगता है। काँच की चूडिया टुकडे-टुकडे होकर बिखर जाती हैं। उसकी

पत्नी की सूनी कलाइयों से खून टपकने लगता है। राजेश के हाथ भी खून से रंग जाते हैं। एक झटका मार कर वह उसके गले में लटकता हार भी खींच लेता है। उन सबको पिताजी की ओर फेंकता हुआ कहता है—"हिसाब कर देख लेना, कमी रह तो बिल बनाकर भिजवा देना।"

इतना कह राजेश एक हाथ में बक्सा और दूसरे हाथ में अटैची लिए बाहर निकल जाता है। पीछे-पीछे होती है उसकी सिसकती पत्नी सरला और रोती दोनों बच्चियाँ।

लिफाफे

□ भगवतीप्रसाद गौतम

अखिलेश को लगा जैसे आज यहाँ सब कुछ ठीक है। मेज पर फटे-पुराने कागजो के टुकडे नही हैं। डाक्टर मित्र द्वारा भिजवाया गया ग्रीटिंग कार्ड अपनी जगह पर रखा है फ्रेम मे और वह भी रेडियो पर। चारपाई की चादर सही ढग से बिछी है।··· काश ! जिंदगी भी इसी तरह होती— सुसयोजित···सुव्यवस्थित।

जब भी माधुरी का मूड ठीक होता है, घर लौटने पर उसे यहाँ का माहौल ठीक ही मिलता है। दस स पाच तक पचास-पचास जोडी आँखो से जूझते हुए उसका भेजा बाहर आ गिरने को होता है। एक-एक घटा हथौडा मारता है 'ठन्न ऽ' और वह कक्षा छोडकर बाहर आ जाता है। थोडा सुस्ताना चाहता है। माथुर या दत्ता से उसकी अच्छी पटती है। वह दो-चार गप्प फेंककर हल्का हो जाना चाहता है···

ओऽफ् ! एक आवाज सबको हिला देती है—"क्या हो रहा है यह ? यह भीड क्यो लगा रखी है ?"

लडके बेपरवाही मे इधर-उधर बिखर जाते हैं। स्टाफ के लोग भी हॉल मे से होते हुए बरामदा मे और फिर अपनी-अपनी कक्षाओ मे अदर हो जाते हैं।

यह कोई नई बात नही है। बडे भैया ने तो उसी दिन कह दिया था— 'एजूकेशन म सारी जिंदगी इसी तरह कटेगी। हाँ, मेहनती और ईमानदार आदमी चेयर को भी सतुष्ट रखता है और स्टूडेंट्स में भी वह अपनी साख बना ही लेता है।'

आज जब अखिलेश अपने घर मे घुसा, साफ-सुथरी चारपाई को देख-

कर उसका मन कुछ देर लेट जाने को होता रहा। वह वैसे कभी इस तरह लेटने का आदी नहीं है।

"चाय बना लू ?" माधुरी ने पूछ ही लिया।

"हाँ, बना लो। फिर बाजार हो आता हूँ। ···क्या-क्या लाना है···?"

वह चाय के घूट लेता हुआ लिस्ट बनाने लगा। शक्कर—दो किलो, मूगफली का तेल—एक किलो, साबुन—छ बट्टी, भृगराज, फोरहेंस, सादे कागज···बनियान···

"चलो बनियान अगले माह देखूगा।"—बनियान को उसने लिस्ट से गायब कर दिया।

"और हाँ, आटा भी पिसवाना है।"—माधुरी की आवाज आई किचन से।

उसके माथे पर जैसे एक और हथोड़ा पड़ गया। स्कूल से लौटने के बाद यह भारी काम पसद नहीं करता। लेकिन सब कुछ करना पड़ता है।

दोनो लड़कियाँ अभी छोटी हैं और फिर भोली व नादान भी। मुहल्ले के आवारा छोकरे सड़को पर मडराते हैं। उसे याद आया·· एक दिन 'बड़ी' अकेली स्कूल जा रही थी। एक छोटा सा बच्चा आया और उसकी पीठ पर ठोक कर भाग गया।

"यह कैसी परेशानी है !" उसने कहा—"खैर, कोई बात नहीं, अभी तो बहुत कुछ सीखना-झेलना है तुम्हें।"

बीच ही मे अपनी आदत के अनुसार उसने पूछा—"कोई डाक आई है ?"

"हाँ, वो वहाँ तीन-चार लिफाफे रखे हैं, मेज के पास वाली आलमारी में।"

"आने दो···स्साले कब तक लौटाएगे ये। मैं भी पीछे नहीं रहूगा—दो लौटाएगे, चार भिजवाऊगा।"

बस, बाजार की लिस्ट पर से उसका ध्यान हट गया। उसकी अंगुलिया लिफाफो का भार तोलने लगी। "कवरिंग लेटर नहीं है शायद। सब कविताए ज्यों की त्यो सकुशल लौट आई हैं।·· ऐऽऽ · यह मधुमती से·· यह सरिता से··· यह नवनीत से·· और यह पराग से। · अरे रे ऽ·· यह तो कविता नहीं, कार्ड है। भई वाह, जवाब नहीं, कार्ड भी लिफाफे मे रख भेजा—'आपकी निम्न-लिखित रचना मिली—धन्यवाद। रचना सुविधानुसार पराग मे प्रकाशित होगी ·।' चलो चार मे से एक लिफाफा तो ठीक निकला।"

"कविता थी या कहानी ?"—माधुरी ने अपनी उत्सुकता जाहिर की।

"गीत था बच्चों का। सुबह का गीत···तातक थैया।"—उसने इतना ही कहा।

प्रकाशित होने से पहले ही बच्चों ने याद कर लिया था उसे। वे बड़े जोर-जोर से गाते-फिरते थे—

"तातक थैया,
उड़ी चिरैया,
अरे चल पड़ा,
सूरज भैया।"

अखिलेश अभी-अभी बाजार से लौटा था। माधुरी सिगड़ी मे कोयले भर चुकी थी। किचन की व्यवस्था मे डूबी हुई वह भी लगातार गुनगुना रही थी—

"तातक थैया,
उड़ी चिरैया···।"

"आज तुम कुछ ज्यादा ही खुश नजर आ रही हो, माधुरी। है न ?"

"हाँ, जैसे आपने मुझे कभी खुश देखा ही नही। क्या करूं, खुश रहना आता ही नही मुझे।"

"नही यह बात नही है। तुम खुश तो हमेशा रहती हो लेकिन आज···।"

"आज, जैसे मेरे कगन बनवा लाए हो आप !"

"कगन ?"

"क्यो, कगन के नाम से चिढ है आपको ? होनी भी चाहिए क्योकि मैं तो हमेशा खर्चे की ही बात करती हू। और तो मुझ मे···।"

"अरे, कौन सी बडी बात है ? आज एक स्वीकृति आई, कल दूसरी, परसो तीसरी···फिर किसी दिन कगन भी बन ही जाएगे।"

माधुरी का ध्यान एकाएक बट गया था। सिगडी मे कागज-कपड़े फसाते हुए उसे उस दिन की बात याद आ गई जब शादी से कुछ समय पहले उसकी सहेली निशा ने कहा था—"माधुरी, तेरे मा-बाप गरीब हैं तो क्या हुआ, उन्होने लडका तो ऐसा ढूढा है जो तेरी हर इच्छा पूरी कर सकता है। सर्विस मे है, ठीक-ठीक इन्कम है और सुना है पत्र-पत्रिकाओ मे भी कोशिश चलती रहती है उसकी ··। स्वय को भाग्यवान समझ ले, माधुरी !"

आज निशा की बात ने उसे झकझोर दिया था। उसे पता था कि अभी वह सब्जी की टोकरी टटोलेगी। उसमे मिलेंगे पच्चीस पैसे किलो के सड़े बैंगन,

दस पैसे की मेथी या कोई घास-फूस । हरी सब्जी के नाम पर इनको यही सब कुछ पसद है ।

वह कई बार सोचती—"पडोस मे गुप्ता जी भी तो रहते है । कैसे ठाठ है उनके ! फ्रिज है, गैस है, कुकर है सब कुछ है उनके पास" और फिर (श्रीमती गुप्ता—भले ही रग-रूप कैसा भी हो पर घर मे भी कैसी रहती है बन-ठन कर "भगवान किसी पर तो बडा मेहरबान हो जाता है । और यहाँ तो बस एक सब्जी या एक दाल घी तो सूघने को भी नही। सर्दी ही निकल जाएगी, पर इस साल अभी तक तो मटर भी नही चखे है । जब भी कहती हूँ तो बस एक ही जवाब—काम चला लो अभी तो, कल देखेंगे। यह कल न जाने कब पूरा होगा।"

वह आवेश मे काम क्या कर रही थी बरतन बजा रही थी और एक-एक आवाज अखिलेश के सिर के टुकडे-टुकडे किए दे रही थी। वह सब कुछ समझ रहा था लेकिन फिर भी अनजान बना हुआ था । वह कभी सीटी बजाता हुआ कागज-किताबें इधर-उधर करता तो कभी गाता-गुनगुनाता माधुरी के मूड को पढने की कोशिश करता ।

'उस भगोनी मे क्या है ?"—उसने सहज ढग से पूछा।

"ढक्कन हटाकर देखलो।"—माधुरी के जवाब ने उसके मन मे झुझलाहट पैदा करदी । वह वापस अपने कमरे मे लौट आया और चुपचाप अखबार की सुर्खियाँ नापने लगा—"एक और विमान का अपहरण, देवर द्वारा भाभी की हत्या, मालगाडी-बम की टक्कर मे पच्चीस जानें गईं, छात्रो ने रोडवेज बसस्टैंड पर आग लगाई, एक लाख की डकैती मे तीन गिरफ्तार ओफ !"

वह कुछ देर के लिए आँख मूदकर शाति ढूढना चाहता था, लेकिन वह एक दार्शनिक की तरह चिंतन की दुनिया मे खो गया— 'कोई भी सुखी नही है इस धरती पर । नुक्कड वाला मोची शाम की रोटी की फिक्र मे है, तो टगरी वाला सेठ फटी आँखो से रात-रात काटता है । किसी को बच्चे की लालसा है, तो किसी के घर मे कटीली भीड उग आई है । हर तरफ गम और घुटन" हर आदमी चिंता और तनाव का शिकार है" । अब यहाँ क्या कमी है। सुबह शाम आराम से दाल रोटी मिल रही है, हसती-मुस्कराती कलियो जैसी बच्चियाँ हैं, फिर भी एक अधेरा है जो इन दीवारो पर हावी है—ऐसा अधेरा जो मन ही मन गहराता जा रहा है और उस अधेरे मे हाथ-पाव मारते हम कुछ पा लेने को उतारू हैं, पर मिले तब न ।"

अचानक बाहर साइकिल की घटी बजी, फिर किवाडो पर दस्तक"'

"कौन ?"

"मैं, दीवान ।"

"ओ हो, आइए दीवान सा'ब ।"

वह सहज ढग से मुस्कराता हुआ उठा, किवाड खोले और दीवान साहब का वही सधा सधाया वाक्य—"बधाई लूटो बधु, बधाई !·· लो यह लिफाफा, आपके आ जाने के बाद पोस्टमेन ने मुझे दे दिया था।"

"कहाँ से आया है यह ?"

"वहीं से जहाँ से आना चाहिए था—शायद दिल्ली से ।"

"अरे हाँ, मैं तो इसके इतजार मे था बहुत दिनो से । देखें, क्या लिखा है ?"

लिफाफा खोलकर वह पढने लगा—"आपकी कहानी 'बटोही' आगामी अक मे प्रकाशित होगी । पारिश्रमिक भी यथासमय पहुचेगा । स्नेह बनाये रखिएगा ।"—चलो एक और उपलब्धि ! "इस तकलीफ के लिये आपको जितना धन्यवाद दिया जाय दीवान सा'ब, उतना ही कम है। बैठिए न·· अभी ··।"

"नही, ऐसी क्या जरूरत है । अच्छा चलू कल मिलेंगे ही ।"

अब वह अपनी चारपाई पर लेट गया था । अचानक एक रूपरेखा उसके मस्तिष्क मे उभरी— 'आज की रात फिर कुछ रचनाए फेअर कर डालता हूँ । और कुछ नही तो भी डाक-व्यय तो वसूल हो ही जाता है । वैसे नुकसान भी क्या है ! व्यर्थ मे इधर-उधर स्वार्थी दुनिया की सीढियाँ चढते और जूतो-चप्पलो के तले घिसते हुए वक्त भी तो यू ही फिसल जाता है । · कल कुछ लिफाफे पोस्ट करने ही है ।"

इस बीच माधुरी ने किचन का काम निपटा लिया था । अब उसे अखिलेश से खाना लगाने के लिए पूछना चाहिए था । वह खुद भी इसी इतजार मे था लेकिन गहराता अधेरा जैसे सब कुछ भुला देता है, माधुरी दूसरी चारपाइयाँ ठीक ठिकाने करने लगी ।

"क्या खाना नही खाएगे हम ?'

"मैं तो नही खाऊगी, आप खा लेना।"

'तुम क्यो नही खाओगी ?"

'वैसे ही, सिर-दर्द है । सोना चाहती हूँ ।"

"तो फिर मैं भी नही खाऊगा । मैं भी कुछ लिफाफे तैयार करना चाहता हूँ ।"

थोडी देर के लिए दोनो के बीच एक खामोशी घिर गई । वह अपने कागज-पन्ने ढूढने लगा । उसके लिये सघर्ष ही तो जिंदगी है ।···वह अब फिर कुछ लिफाफे तैयार करेगा, कल उन्हें पोस्ट करेगा और फिर इतजार करेगा उनके लौट आने का ।

आखिर उसने फिर एक बार खामोशी तोडी—"सुनो माधुरी, एक और

लिफाफा आया है। अभी-अभी दीवान सा'ब दे गए हैं।"

"क्या है उसमे ?"

"बटोही कहानी की स्वीकृति।"

माधुरी को लगा जैसे उसका सिर-दर्द कुछ कम हो गया। वह मन ही मन कुछ सुनना चाहती है···आखिर, उसे भी तो खुशी होती है ऐसे लिफाफों के बारे में जानकर ··। इतना तो वह भी समझती है कि अखिलेश रात-दिन मेहनत करता है और कभी-कभार ही कोई लिफाफा किसी उपलब्धि की सूचना देता है।

" · और हाँ, तुम्हे पता है मैं आज फिर लिफाफे तैयार करूगा, कल' उन्हे पोस्ट करूगा और फिर उनके लौट आने का इतजार भी···। इसी तरह के लिफाफो में ही तो कही कोई स्वीकृति पत्र होगा। अब पढे-लिखे लोग तो मेरे नाम से परिचित हो ही जाएगे। फिर तुम्हारी इच्छा भी·· ।"

माधुरी अपनी मुस्कराहट को छिपाने का प्रयास करती रही।

"तो फिर अब तो लगा दो खाना। फिर मुझे लिफाफे तैयार करने है।'

माधुरी ने ज्योही स्विच ऑन किया, किचन का अधेरा एक पल में न जाने कहा दुबक गया।

सामर्थ्य

□ चैनराम शर्मा

वह मर गया। उसका स्वर्गवास नही हुआ। वह राम का प्यारा नहीं हुआ। वह चल नहीं बसा। वह तो मर गया। सिर्फ मर गया। पूरे बाजार मे हवा के झोंके की तरह बात व्याप्त हो गई कि वह मर गया।

किसी ने कहा कि वह मोटर के पहिये से कुचल गया और मर गया। पर कोई यह नही कह सका कि कहाँ, किसकी मोटर से, क्यो कुचला गया ? मरने के बाद उसका शव कौन कहाँ ले गया ? दाह सस्कार कौन करेगा ? कफन कि जिम्मेदारी किसकी है ? लकडियाँ कौन देगा ? उसकी अरथी कौन बनायेगा ? उसे अपने कन्धो पर कौन उठायेगा ?

म्युनिसिपैलिटी वालो की जिम्मेदारी है। करते रहेगे। कौन किसकी चिता करे। लेकिन पूरे बाजार म धन्ना सठो को एक ठेस लगी। अब उनके गोदामो से गाडियाँ बिना मजदूरी के कौन भरवायेगा। गाडियाँ खाली कौन करवायेगा। उसके समान हट्टे-कट्टे मजदूर तो मुह माँगा पैसा लेंगे। दिन भर काम करके भी एक बार जैसे-तैसे पेट भर जाने से सतुष्ट था। वह एक चाय पीकर दो घण्टे कठोर परिश्रम करके पचासो बोरियाँ इधर-उधर कर देता। दसो व्यक्ति उसकी इन्तजार मे आँखें फाडे बैठे रहते।

आज टीकमचन्द मुरारीलाल के यहाँ शहनाइया बज रही हैं। सारा प्रतिष्ठित नर-समूह विवाहोत्सव म लिप्त है। सध्या हो चली। बनौली की तैयारी हुई। कमबख्त अभी मरा नही है। पैट्रो-मैक्स लेकर आगे-आगे कौन चलेगा ? लेकिन, अरे ! वह तो मर चुका है। मरने का नाम मत लो इस शुभ बेला मे। दुनिया के काम होते रहते हैं। अपना अपना काम करो।

रामू सिकलीगर आज परेशान है। उसके शार्पर का पट्टा खीचने वाला क्यो नही आया ? अरे ! वह तो मर गया। तब तो किसी को पैसे देकर पट्टा खीचने के लिये बुलाना पडेगा।

थानेदार ने म्युनिसिपैलिटी के महतरो को फटकारा। सदर बाजार मे लाश को कुत्तो ने कैसे नोच डाला ! मेहतरो ने अपनी ड्यूटी उस समय बस-स्टॉप पर दिखलाई। अपनी ड्यूटी पर तैनात कान्स्टेबल सिक-लीव लेने को बाध्य हुआ। आखिर थानेदार ने भी अपना टूयर दिखा दिया।

डॉक्टर की रिपोर्ट कुछ ऐसी ही थी। सेठ छदामीलाल की दुकान के बाहर ही तो सारी दुर्घटना हुई थी। लेकिन बेचारे सेठजी का इसमे क्या कसूर था ? उन्होने तो कुछ क्षण उस कुचले हुए को देखा भर था। वह बोरी लाते-लाते ही कुचला गया। बोरी टक्कर से दूर जा गिरी। सेठ जी ने मुनीम की सहायता से बोरी तो पुन अपने हवाले करली। वे तो बेचारे अपने काम म इस तरह लग गये जैसे कुछ हुआ ही नही। वहाँ पर भीड जमा हो गई। फिर भीड बिखर गई। यदा-कदा लोग रुक जाते और राम राम करते पुन चल देते।

लेकिन सेठ छदामीलाल साहसी व्यक्ति हैं। ऐसी-वैसी घटनाएँ उन्हे कोई ज्यादा नुकसानदेह नहीं हो सकती। उन्होंने मुनीमजी की ओर देखा। मुनीम जी तिजोरी की ओर बढे। तत्पश्चात दोनो ने पुलिस-स्टेशन की राह ली। सकट के समय थानेदार साहब भी बडे सयम स काम लेते हैं। कुछ समय पश्चात् सेठ छदामीलाल अपने मुनीम सहित डॉक्टर के बगले की ओर रवाना हो गये।

कमीज मे ऐसी बनियान पहनते बन रहा है, न दुबली काया को ससार की दृष्टि से दूर रखने के लिए कोरी कमीज पहनने से बन रहा है। इतनी महगी और इस पर सफेद कमीज जो बिना शानदार बनियान के नही पहनी जा सकती, बनवानी ही नही चाहिए थी। जितना महगा वस्त्र उतना ही लाज छिपाने मे असफल। और यह लडका, इस बात को जानता है कि बनियान की आवश्यकता अभी किसे कितनी है! और यह भी जानता है कि पापा की जेब मे पैसे कितने है, फिर भी माँग अपने लिए कर रहा है।

अठारह वर्ष का लडका वोट देने के लिए तैयार बैठा है निर्णय देने के लिए जबान खोलकर बैठा है जबकि सोच रहा है केवल अपने लिए, देख रहा केवल अपने को। जो अपने पिता को भी नही देख पा रहा है उसका क्या यकीन कि वह राष्ट्र पर निगाह देगा! और निगाह देगा भी तो उसका क्या यकीन कि वह राष्ट्र की जेब टटोलकर अपना भला नही करेगा!

इतनी उम्र मे आने के बाद तो बेटा बाप का दोस्त बन जाता है। क्या इसे ही कहते हैं दोस्ती? उससे घर के काम म सलाह लो वह क्या सलाह देगा! एक मतलबी दोस्त नेक सलाह दे सकता है भला! नही, वह तो केवल अपने लिए बनियान खरीदेगा, बस।

हठात् उसके विचार को एक झटका लगा—लेकिन यदि वे अपने लिए खरीद लेंगे तो बेटा भी उनके विषय मे ऐसी ही धारणा बना लेगा कि पापा स्वार्थी हैं। वे अवश्य उसकी निगाह स उतर जायेंगे। उनके प्यार को, जिसके पीछे त्याग की ताकत नही है एक ढोंग मान लेगा। वह भी ढोंगी और स्वार्थी बन जायेगा, और उसके सस्कार बिगड जायेंगे। वह परिजनो के काम का भी नही रहेगा, आगे जाकर ऐसे बिना काम के बेटे को उन्हे भी भोगना पडेगा।

माँ-बाप के सामने तो बेटा हमेशा बच्चा ही रहता है। उसकी जिद उन्हे प्यारी लगती है और उसे पूरी करने म उन्हे आनन्द आता है। आज उनके पिता होते तो वे भी उनसे कहते— पिताजी, बनियान चाहिए।"

"कुछ दिन सब्र कर बेटा।'

"सब्र आप करो, माँ करे, जीजी करे, मैं नही कर सकता।"

'लेकिन अभी पैसा नही है।'

"कुछ भी करो कही से भी लाओ, मुझे बनियान चाहिए।"

'बेटा, सोचो, समझो, मैं अभी नही ला सकता।"

'तो कौन लायेगा, बताओ। एक बेटे के लिए उसका बाप नही लायेगा तो कौन लायेगा? मैं अपने पिता से नही माँगूँ तो किससे माँगू बताओ।"

और वह भी तो अपने पिता स ही माँग रहा है। एक प्याली चाय नुक्कड के टी-स्टाल पर वे लेना चाहते थे। लेकिन वहाँ पहले से ही मौजूद बडे

बाबू के होने से वे नहीं गये। फिर आगे चाय लेने का मूड रहा ही नहीं। सच यह था कि उन्हे भय हो गया था—कही पहचान वाले निकल आये तो उनकी मुश्किल हो जायेगी, जेब मे तो गिनती का पैसा है। अब तो वे पहले बेटे के लिए बनियान खरीदेंगे, फिर बचे हुए पैसो के आधार पर चाय के लिए कदम बढायेंगे।

स्टोर पर कुछ भीड थी। उनकी दृष्टि मे उचित भाव से सही वस्तु देने वाला पूरे शहर मे एक यही स्टोर था। अन्य ग्राहको से निपट कर स्टोर मालिक ने उनसे नमस्कार किया। उत्तर मे उन्होंने मुस्कराते हुए आर्डर दिया—"दो बनियान दीजिए। नीम कलर, सैंडो, अस्सी नम्बर।"

"जी, अभी लीजिए।" वह तत्परता से दो डिब्बे निकाल लाया। खोल-कर उनको दिखलाये।

"बडी अच्छी चीज है, देखिए। नई कम्पनी है, अपनी साख जमाने के लिए बडी उम्दा चीज निकाल रही है, और अन्य कम्पनियो के मुकाबले कीमत भी काफी कम।"

"हा, मगर, जँच नही रही है।"

"तो दूसरी बतायें आपको ?"

"हाँ, जरा बढिया।"

"बहुत बढिया लीजिए।" वह दूसरे डिब्बे लेने चला गया। वे गुन-गुनाने लगे ओर उन देखे हुए बनियान को टटोलने लगे।

'हल्लो।" पीछे से आई आवाज पर वे पलटे। आखें नचाकर उछल पडे देखते ही। "कवर साहब ! वाह ! खूब। मजा आ गया। यूँ मिल जाओगे सोचा भी नही था। विश्वास हो गया, भक्त को भगवान कही भी कभी भी मिल सकते हैं।"

कवर साहब ने जोर का ठहाका लगाया। वह भी हँस रहे थे। स्टोर मालिक डिब्बा हाथ म लिये पागल की तरह दोनो को देखे जा रहा था।

दोनो एक दूसरे की कमर म हाथ डाले, एक दूसरे पर बदन का भार डाले नजदीक के कॉफी हाऊस म प्रवेश कर गये। कोई घण्टे भर बाद वे स्टोर पर लौटे। "हाँ श्रीमान जी अब दिखाइये। वे अपने खास मेहमान थे। उनकी आवभगत करना बहुत जरूरी था। जानते ही हैं आप तो।"

"अजी साहब, बिल्कुल जानता हूँ। बहुत से मेहमान तो ऐसे होते हैं, जिनसे भगवान बचाये, कुछ मेहमान ऐसे होते हैं, जिनसे भगवान मिलाये। हाँ, तो ये देखिए बनियान। एसी चीज एकदम कि याद करो, बार बार इसी की माँग करो। देखिये, कपड़ा, और सफाई देखिये।"

"हाँ, मगर, ज्यादा कीमती लगती है।"

"नही, ज्यादा नही–ये ही दो पीस आपको करीब सत्रह रुपये मे पड़ेंगे, पहनने का मजा आ जायगा। ले लीजिए, मेरी पसन्द की चीज दे रहा हूँ आपको।"

"कीमत बहुत ज्यादा है।"

"लेकिन आप ही ने तो बढ़िया के लिए कहा था। बढ़िया के तो कुछ ज्यादा पैसे लगेंगे ही न साहब। " उसने उनके हथियार से उन्हे घायल करने का अंतिम प्रयास किया।

पर घायल होने जैसा शरीर उनके पास रहा ही नही था। पहले जरूर था, जब कवर साहब नही मिले थे, और उनके साथ कॉफी हाउस नही गये थे। उन्होंने जेब मे हाथ डालकर गिन रखी मुद्रा को फिर गिना।

"बनियान तो मेरे ख्याल से वे भी अच्छे हैं, जो आपने पहले बताये थे।

"वे तो बहुत ही अच्छे है साहब। बहुत ही टिकाऊ। गारन्टेड चीज। तीन महीने मे छेद भी पड़ जाये तो दुकान मे फेंक जाना।

"ठीक है दे दीजिए। सादा जीवन उच्च विचार का दर्शन अपनाना चाहिए हर भारतीय को, नही श्रीमानजी।"

"अजी कौन सुने साहब, दुनियाँ तो फैशन म मरी जा रही है। अण्डर-वियर तक फैशनेबल पहनेंगे लोग-बाग। अरे भाई, अण्डरवियर पहनकर ही घर से बाहर निकलेंगे क्या ? दो बाँध दू न साहब ?"

उन्होंने स्वीकृति दी। दोनो बनियानों का बण्डल लिया, पैसे चुकाये और सब्जी बाजार की राह ली। वहाँ भी आलू-गोभी की जगह बैंगन ही लिये गये। नींबू देखकर पाँव ठिठके जरूर पर दस पैसे का एक दे रहा था, और उनके पास बचे आखिरी पाँच पैसे मे सौदा पटने की तनिक भी सम्भावना नही थी, सो रुके नही।

उनकी पदचाप सुनकर बेटा घर से बाहर आ गया। मुस्कराते हुए बडी नम्रता से उसने उनके हाथ से थैला ले लिया।

"बनियान ल्याया भाई तेरे।" उन्होने उसे मनभावन सन्देश दिया। वह खुश हो गया।

थैले से बण्डल निकालकर उसने थैले को नीचे पटक दिया, जैसे अब उसके मतलब की कोई चीज उसमे नही है।

बण्डल खोलते समय उसका चेहरा नक्षत्रों से भर गया, और आँखें सध्या सी खिल उठीं तो बनियान देखकर आँखो मे रात घिर आयी और चेहरे पर दुपहरी की कालिमा छा गई।

उनके दिल को बडा धक्का लगा। एक अपराधी की तरह उन्होंने गर्दन नीची कर ली।

"यह क्या, दो पैसे की बनियान उठा लाये।" उसने दु ख के आवेग में भी बड़े सयत स्वरा म यह टिप्पणी दी। उन्होंने सफाई दी—' पैसे तो मेरे पास पूरे थे, पर कवर साहब मिल गये। कुछ पैस उनका चाय-पानी करवाने म निकल गये जो कि जरूरी हो गया था। पाचसक पैस की सब्जी-भाजी लानी पडी।"

वह भडका—"मिल गये होंगे कवर साहब, लाये होगे सब्जी! मुझे क्या! मैं एसी बनियान नही पहनने वाला।" फेंक दिये उसने बनियान उनकी तरफ। उन्ह लगा जैसे उसने बनियान नही, उनको उठाकर कचरे दानी मे फेंक दिया है।

इन्टरव्यू

□ फजोड़ीमल सैनी

एम्प्लायमेंट एक्सचेंज से अपने नाम का पंजीयन-पत्र प्राप्त कर, गाडी निकल जाने के अन्देशे मे रामचरण सिंह जल्दी-जल्दी पैर बढाता हुआ स्टेशन की ओर चला जा रहा था। उसके मन मे भावी नौकरी के सुखों की अनेक कल्पनाए लहरा रही थी। उसे विश्वास था—मुझे लगभग तीन सौ रुपये माहवार तो मिलेंगे ही, फिर किस बात की कमी रहेगी! मैं सुन्दर वेश-भूषा मे सज कर दफ्तर जाया करूँगा।

दफ्तर मे मेरी घण्टी की प्रतीक्षा मे चपरासी तैयार खड़ा रहेगा। किसी दिन भी मेरी मेज, कुर्सी व कलमदान आदि की सफाई ठीक ढग से न होने पर मैं चपरासी को मेरे पास बुलाऊँगा। वह बेचारा घबराया सा मेरे सामने आकर खड़ा हो जावेगा, तब मैं मेरे ढग से उसे ऐसा समझाऊँगा कि भविष्य मे वह शायद ही ऐसी भूल करे।

शान, मान एव रोब के लिए आवश्यक व्यय करके भी मै हर माह अधिकतम बचत का प्रयास करूगा। शीघ्र ही एक पक्का मकान बनाऊँगा जिसके सामने अहाते मे फुलवारी लगी होगी। अवकाश के दिनो मे शाम को इसी फुलवारी म लगी कुर्सियो पर बैठकर मिलने आने वालो से बातें किया करूँगा। मेरे माता-पिता इस बढते हुए वैभव को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होगे।

घर पर अच्छी नस्ल की एक-दो गाय, भैंस बन्धी रहेगी। इनके भोले, छोटे बछडो के दुलार, सार-सम्भाल ही म मा व बहन राधा अपना सारा दिन खुशी से व्यतीत कर दिया करेंगी। जब प्रात काल मा पास-पड़ौस के बालको व स्त्रियो को मट्ठा डालेगी तो वह अपने सौभाग्य पर फूली न समायेगी। मुझे अपने

विवाह की कोई चिन्ता नही पर बहन राधा का विवाह बडी धूमधाम से किया जाएगा।

विचारमग्न रामचरण स्टेशन पर पहुँचा ही था कि गाडी ने सीटी दे दी थी। वह झट से टिकिट लेकर चलती गाडी मे भागकर बैठा था। जनवरी का महीना था। कडाके की सर्दी पड रही थी। उसके पास न बिस्तर था और न ठहरने की कही व्यवस्था थी। गाडी हाथ आ जाने से उसकी विपत्ति टल गई थी। वह खुशी खुशी मे अपने घर पहुँच गया था।

उस बात को आज पूरे चार वर्ष हो गये। तब वह स्कूल स निकला हुआ मैट्रिक पास नवयुवक जीवन के कटु अनुभवो से पूर्णतया अपरिचित था। जीवन उसे काँटो से घिरे पथ के समान कष्टदायक नही फूल के समान कोमल एव सुखदायी लगता था। उसके पिता जीवित थे। वे पुलिस मे मुशी थे। घर की स्थिति ठीक-ठाक थी किन्तु पिता की आकस्मिक मृत्यु से अब स्थिति बदल गई थी। कई आवश्यक कार्यों के लिए उसकी मा पडौसियो से कर्ज लेते-लेते तग आ आ चुकी थी और अब कर्ज भी पूर्ववत् आसानी से नही मिलता था। इससे इटरव्यू के लिए पैसे मागने पर वह कई बार रामचरण पर बिगड चुकी थी। उसे दुलार से गाँव मे खेती का काम करने की बात समझा चुकी थी, पर रामचरण का नौकरी करने का नशा नही उतर रहा था।

वह कई पदो के लिए इटरव्यू मे गया लेकिन कभी उसके भाग्य का सितारा न चमका। अन्त मे विवश हो विधवा मा, युवा बहन के साथ वह भी गाव के जमीदार किशनसिंह के यहाँ खेतीहर मजदूर के रूप मे काम करने लगा।

लम्बे पूरे हट्टे-कट्टे ईमानदार एव उच्च व्यक्तित्व वाले रामचरण से जमीदार किशनसिंह अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने थोडे समय बाद ही रामचरण से मजदूरी कराने की बजाय चारे-बाटे की व्यवस्था करने, इधर-उधर का हिसाब रखने, मजदूरो की उपस्थिति, भुगतान आदि कार्य करने के लिए डेढ सौ रुपये माहवार पर स्थायी रूप से रख लिया।

इस तरह काम करते कई माह बीत गये।

मार्च का अन्तिम सप्ताह चल रहा था। जौ, गेहूँ की कटाई हो रही थी। सैकेण्डरी स्कूल परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थी। इसी से जमींदार साहब का बडा लडका घर आया हुआ था। वह शहरी सभ्यता मे रगा हुआ चचल नवयुवक था। वह घूमने के बहाने लगभग चार-पाँच बजे तक खेत पर पहुँच जाता था। वहाँ काम करती स्त्रियो की टोली मे वह एक नवयुवती को भाभी कहकर निजता दिखलाने के साथ ही भोली ग्रामीण युवतियो के मुक्त सौन्दर्य-

पान का लुका-छिपा उपक्रम भी करता रहता था। रामचरण से यह बात छिपी न थी। अन्य दिनो की भाँति आज उसने अपना कार्य-व्यापार यह कहकर प्रारम्भ किया—'भाभी ! कल तुमने पानी क्या अमृत पिलाया था। प्यास लगी है, राधा आज तुम पिलादो। पिलाओगी न 'मेहरबानी का एहसान चुका दूंगा।'

रामचरण ने यह सब सुन लिया। उससे न रहा गया। उसने उसे लज्जित करते हुए कहा—'निकट के ऐसे देवरो को तुम्हारे हाथ का पानी अमृत, होठो का झूठा टुकडा प्रसाद लगता है। डाल देना बेचारो को झूठा कौर। देखो ! यह किस तरह दुम हिलाते हुए तुम्हारे सामने खडे हैं।' यह सब सुन कर भी रामचरण के क्रोध से तमतमाते मुख मण्डल को देखकर स्पष्ट रूप से तो जमीदार साहब के शाहजादे को कुछ कहने का साहस नही हुआ पर पेड-पौधो के बहाने रामचरण को कुछ अपशब्द कह डाले। रामचरण ने आव देखा न ताव और झट शाहजादे की गर्दन पकड कर जमीन सूँघा दी। इतने म काम करते मजदूरो ने दौड कर बीच-बचाव कर दिया।

रामचरण अपनी विषम आर्थिक स्थिति पर विचार करता घर लौटा। रामचरण की मा को उसके इस व्यवहार से बडा दु ख हुआ। दूसरे दिन उसे थानेदार के इटरव्यू के लिए आमन्त्रण-पत्र मिला पर इसस उसे क्या प्रसन्नता होती ! एसे पत्र पहले भी उसे कई बार मिल चुके थे।

वह निराश होकर इटरव्यू म नही जाने तक का निश्चय कर चुका था। एक-दो इटरव्यू भी छोड चुका था। किन्तु कल की उस घटना से उसका मन कुछ ढीला हो गया। उसने इस इटरव्यू को अपने जीवन का अन्तिम इटरव्यू मानकर जाने का निश्चय कर लिया। रामचरण के इटरव्यू की तारीख सात मई थी। वैसे इटरव्यू एक मई से ही निरन्तर चल रहे थे। रामचरण अपने आवश्यक प्रमाण पत्रादि लेकर उस दिन ठीक समय पर पहुँच गया था। उसके इस इटरव्यू म स्वय पुलिस आई० जी० मुख्य इटरव्यू अधिकारी के रूप मे बीचो-बीच विराजमान थे। उनके एक ओर जिला दण्डनायक व दूसरी ओर जिलाधीश महोदय बैठे हुए थे। इटरव्यू अधिकारी मण्डल ने ठीक दस बजे से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

साक्षात्कार-कक्ष से कुछ दूर एक विशाल भवन मे उम्मीदवारों के बैठने की व्यवस्था की गई थी जहाँ एक माह पूर्व सब उम्मीदवारो का लिखित टैस्ट हुआ था। उम्मीदवार साक्षात्कार मे पूछे जाने वाले अनुमानित प्रश्नो के विषय मे परस्पर विचार विमर्श कर रहे थे। कुछ अब भी सामान्य ज्ञान की पुस्तको म आँखें गडाये थे। एक अपने पास वाले से केन्द्रीय सुरक्षा मन्त्री का नाम पूछ रहा था तो दूसरा 'प्रजातन्त्र मे पुलिस' लेख को ध्यान से पढ

रहा था। कुछेक तिब्बत, कश्मीर की भौगोलिक स्थिति का वर्णन पढ रहे थे तो दो-एक मस्तराम कुछ भी न करके अपने इष्टदेव का गुप्त स्मरण ही कर रहे थे। रामचरण भी अकेला एक कोने मे बैठा कुछ सोच रहा था।

इस प्रकार कुछ न कुछ करते उम्मीदवारो का ध्यान सहसा चपरासी द्वारा किसी का नाम पुकारने से भग हो जाता था और पास के नाम वालो का हृदय धक-धक करने लगता था। नाम पुकारने पर सभी अपनी घबराहट को छिपाने का प्रयत्न करते हुए, अपने बालो व वेश-भूषा को सम्भालते हुए साक्षात्कार कक्ष मे प्रवेश करते थे।

इस बार रामचरण सिंह के नाम की आवाज से वातावरण गूंज उठा था। अपना नाम सुनकर रामचरण शान्त भाव से उठा और स्वाभाविक गति से चलकर, फौजी सलाम ठोक कर खडा हो गया।

उस पर अपनी रोबीली निगाह डालते हुए मुख्य इटरव्यू अधिकारी जी ने प्रश्न किया—'आप यहाँ क्यो आये हैं ?'

'श्रीमान् ! सब-इन्सपेक्टर पुलिस के पद पर आप द्वारा चयन किये जाने हेतु आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।'—रामचरण ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

इटरव्यू अधिकारी मण्डल के दूसरे अधिकारी जी ने पूछा—'आप इतने लम्बे क्यो है ?'

'जी ! मैं कुछ भी लम्बा नही, मेरे पूज्य पिता व पितामह तो मुझसे भी अधिक लम्बे थे।' रामचरण ने मन्द-मुस्कान के साथ कहा।

तीसरे अधिकारी जी ने रामचरण के मुख पर अपनी आँखें गडाते हुए पूछा आप नौकरी करना क्यो चाहते हैं ?'

रामचरण ने सहज-भाव से कहा—'मान्यवर ! प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियो के कारण, निज की कृषि एव व्यापार की सुविधा न होने से विवश होकर मुझे जीविकोपार्जन के लिए नौकरी का आश्रय चाहना पड रहा है।'

इतने म जिलाधीश महोदय ने बीच ही म पूछ लिया—'आपके पिताजी क्या काम करते हैं तथा आप कितने बहन भाई हैं ?'

'सम्माननीय ! पूजनीय पिताजी का स्वर्गवास हो चुका है। वे इस पुलिस विभाग मे मुशी थे। मेरे केवल एक बहन है जो मुझसे छोटी है।' उत्तर देते हुए रामचरण की वाणी से स्पष्ट था कि उसे इस समय अपने मृत पिता की स्मृति हो आई थी।

जिला दण्डनायक महोदय ने कुछ लिखते हुए ही पूछा—'आपकी योग्यता क्या है।'

'मान्यवर ! मैंने प्रथम श्रेणी से हाईस्कूल परीक्षा पास की है तथा

स्काउटिंग व एन० सी० सी० के प्रशिक्षण भी प्राप्त किए हैं। मेरी योग्यता सम्बन्धी अन्य प्रमाण-पत्र आपकी सेवा मे सादर प्रस्तुत हैं।' यह कहकर रामचरण ने अपने विभिन्न प्रमाण-पत्रो की फाइल मेज पर रख दी।

रामचरण की योग्यता से प्रभावित होकर मुख्य इटरव्यू अधिकारी जी ने पुन प्रश्न किया—'मान लीजिए आप अपनी युवा बहन के साथ किसी मेले मे भ्रमण कर रहे हैं। यदि कोई दुष्ट आदमी उससे छेडखानी कर ले तो आप क्या करेंगे ?'

शब्दो को सुनते ही रामचरण के सारे शरीर मे क्रोध की बिजली-सी दौड गई। उसका मुँह लाल हो गया। भृकुटि वक्र हो गई। नथुने फूल उठे। दाँत किटकिटाने लगे। उसे अपनी स्थिति तक का ध्यान न रहा। उसने जोर से अपना बाँया पैर जमीन पर पटका और दाया हाथ मुक्का बाँधकर ऊपर उठा लिया। इतने मे पास खडे सन्तरी ने चौंक कर उसका हाथ पकड लिया। 'हो चुका आपका इटरव्यू। आप जा सकते हैं।' इन शब्दा को सुनकर रामचरण चुपचाप बाहर चला आया। न वही रुका न किसी से बात की और सीधे घर की राह ली।

कई दिन बीत गये। एक दिन रजिस्टर्ड पत्र लिए पोस्टमैन रामचरण के द्वार पर खडा था। रामचरण ने काँपते हाथो स पत्र प्राप्ति के हस्ताक्षर किए, लिफाफा खोला। अपनी आशा के विपरीत सब-इन्सपैक्टर पुलिस' का नियुक्ति-पत्र देखकर वह विस्मित हो गया।

जीने की राह

□ आनन्द कुरेशी

इधर बहुत दिन हुए, अम्मी को मैंने कभी हँसते हुए नही देखा। हा अलबत्ता, किसी पडौसिन से बतियाते हुए अम्मी की हसी अचानक सुनता हू, और अचरज से उन्हे देखने लगता हू—तब मुझे देखते ही मानो ब्रेक लग जाता है। मूझे देखते ही वे बात का प्रसग बदल लेती हैं। अम्मी के लिए यह सब कहना मेरे लिए किसी और को ठीक न लगेगा लेकिन मेरी यह मान्यता कोई एक दिन की तो नही है। घर की दीवारें मुझे डसती सी लगती है। जी म कई बार आया कि दूर बहुत दूर चला जाऊ, जहा कोई बेरुखी न हो। लेकिन ऐसा सभव नही। मेमू और टीटू मेरे साथ बध गए हैं।

यह सब भी अम्मी की जिद पर हुआ। अब्बा को हमेशा मैंने अम्मी के सामने सिर झुकाते देखा है। पढाई पूरी किए हुए एक साल बीत गया था। काम कही मिल नही रहा था—लेकिन इस घर मे मेरी सुनता ही कौन है? भाईसाहब को थानेदारी क्या मिल गई है—वे अपने दलबल के साथ बाहर ही रहते हैं—और महीने के सौ रुपये भेजकर निश्चित हो जाते हैं। कभी-कभी मेरे लिए लम्बी चौडी हिदायतें लिखकर भेजते हैं। तब मेरा मन्नू ऐसा, मेरा मन्नू वैसा की तारीफें कर अम्मी घर सर पर उठा लेती हैं। अपने लाडले मन्नू की हिदायतें मुझे दिन भर सुनाती रहती हैं। उन्ही भाई साहब ने ससुराल के रिश्ते की लडकी को मेरे साथ बाध दिया।

मेमू को पाकर इतना सतोष अवश्य हुआ कि मेरे दुखो मे साथ देने वाला एक अच्छा दोस्त मुझे मिल गया। लेकिन केवल बातो से तो जिंदगी सवर नही जाती। कई आवश्यकताओ के लिए मुझे और मेमू को सोचना समझना पडा

है। अपने घर मे वक्त जरूरत मेमू जब कभी जाती पैसे ले आती और मेरा काम चलता रहता। यह सब अच्छा नही लगता, लेकिन किया क्या जा सकता है ? ऐसी ऊहापोह मे टीटू आ गया। खुश होना चाहिए था, लेकिन ढेरो उदासियो ने मुझे घेर लिया। अब यह भी मेरा ही कुसूर हो—अम्मी आए दिन तगी का रटारटाया वाक्य सुनाती रहती हैं।

अब्बा का वावर होटल वाले के पास एक पान का डिब्बा था, जिससे बस ठीक ठाक ही पैसे मिल जाते थे। इसमे, और भैया के भेजे सौ रुपयो से हम पाँच प्राणियो की उदरपूर्ति होती थी।

जिस बात के लिए मैं उत्तेजित हो गया था—वह मेरे दिमाग मे वैसे एकदम ही नही आई थी, काफी सोच-विचार करके मैंने फैसला किया था कि टीटू का हकीका सादे ढग से मामूली खर्च मे कर दिया जाये।

मेमू को मैंने यह कहा तो वह नाराज हो गयी—"आप तो गजब करते हैं। किसी से घर मे कही इस तरह पहले बच्चे का हकीका हुआ है ? घर मे पहला मौका है आखिर खर्च तो करना ही होगा।"

"लेकिन खर्च करना जरूरी है क्या ?" मैंने तर्क दिया।

"—वडे बूढे जो रिवाज रख गए हैं, उन्हे मानना ही पडता है। नाते-रिश्तेदार जिनके घर हम खाते आए हैं, उन्हे बुलाना भी हमारा फर्ज है।

"—तुम क्या समझती हो, यह आसान है ?"

"—तो क्या हुआ, जल्दी क्या है, हकीका बाद मे कर लेंगे।"

"—बच्चे के बाल बढ गए हैं।"

"—बहुत से लोग मन्नत रखकर बच्चो के बाल बढाते हैं और बडी उमर मे हकीका करते हैं। जब आप कही काम पर लग जाएगे तभी इस पर सोचेंगे।"

मुझे बात रुचिकर न लगी। मैं उस समय तो चुप रहा, लेकिन एक दिन अब्बा को अपने विचार कह सुनाए। अब्बा ने हूबहू सारी बात न जाने किस ढग से अम्मा को कह दी। फिर क्या था, तूफान मच गया घर मे—

"हम कोई भिखमगे हैं क्या ? किसी का दिया खाते हैं क्या ? बडा आया खर्च कम करने वाला। वह कौन होता है फैसला करने वाला। जैसा मैं चाहूँगी, होगा।"

अम्मी क्या-क्या बोलती गई। मैं घबराकर घर से बाहर चला आया। मैं समझ गया—मेरे किसी भी विचार का घर मे कोई महत्त्व नही है।

रात को घर देर से आया। सब सो चुके थे। केवल मेमू मेरी फटी कमीज को रफू कर रही थी। चुपचाप आकर मैं कपड़े बदलने लगा।

मेमू ने थाली रख दी और कहा—"घर से अब्बाजी का खत आया है, तुम्हें याद लिखा है।"

"—हूँ।" —मैं खाना रहा।

"—कुछ कागज भेजे हैं, जिन पर आपके दस्तखत कर वापस भेजने के लिए कहा है।"

"—कल डाक से भेज दूंगा।"

थाली म साग खत्म हो गया था, मैंने पूछा—"साग है क्या ?"

उसने कहा—"साग पूरा हो गया है, अचार दूं क्या ?"

—"लाओ, तुम क्या खाओगी ?"

"—मैं अचार के साथ खा लूंगी।"

अचार के साथ मैंने बाकी रोटी पूरी की।

खाकर बिस्तर पर आ लेटा और मेमू को चुपचाप देखता रहा। अचार के साथ एक-एक कौर निगलती मेमू के चेहरे पर सतोष व्याप्त था। इस घर म आकर उसने पूरी तरह अपने को बदल दिया है। उस घर मे जो छूट गया उसका तनिक भी आभास मेमू को देखकर न लगता था। घर को स्वर्ग बना देने वाली औरत की सार्थकता मेमू जैसी लडकियाँ ही करती हैं। लेकिन मैंने क्या दिया है इसे ? अभावो का एक लम्बा सिलसिला मेरे साथ है। न जाने कब तक चलता रहेगा।

मेमू के बिस्तर पर आ लेटने तक मैं पूर्णतया उसके प्रति भावुक हो गया था और भीतर कहीं एक व्यापक आर्द्रता ठेठ गले तक आकर अटक गई थी। आखें तरल हो गयी थी। जी हुमकने लगा था।

"—मेमू !"

"—हाँ।"

"—मैंने तुम्हे कुछ नही दिया…"

स्वरो के भीगेपन से वह चौंकी। उसने हथेली मेरे चेहरे पर रखी।

"—यह क्या, आप रोते हैं ?"

—बाध टूट गया, आसुओ की लडिया सारे चेहरे पर बिखर गई।

मेमू बेतहाशा मुझसे लिपट गई…

"—आपको मेरी सौगन्ध। देखिए खुदा के वास्ते जी छोटा मत कीजिए।

"सब ठीक हो जाएगा। अब्बाजी ने लिखा है मैं कुछ न कुछ करूगा।" मेमू के होठ गाल पर लुढक आई बूंदों को पीते रहे। मैं बे-सुध सा लेटा रहा। कब तो नींद आई और कब सुबह हुई पता भी न चला।

एक माह बाद—

"पो-पो।"

—होर्न की आवाज पर अम्मी ने खिड़की खोलकर बाहर सिर निकाला। वे कुछ न समझी, फिर भीतर जाना ही चाहती थीं कि तभी पो-पो की आवाज सुनकर बोली—

"किसे चाहते हो भैया ?"

"अब्दुल रसीद मिया पान वालो का घर यही है न ?"—मैंने किसी तरह हसी दबा कर ओटोरिक्शा मे मुँह छिपा लिया। मेमू भी टीटू को छाती से दबाए बडी मुश्किल से हसी रोक रही थी।

"—क्या ?"

—तमक कर अम्मी ने कहा। कदाचित् पहचाने स्वरो का बोध उन्हें हो गया था। वे तेजी से बाहर आईं। हमारी ओर देखा तो भौचक्की रह गईं—

"—यह क्या, अरे! यह अचानक तुम लोग वापस कैसे ?"

—मेमू बाहर निकली, मैं बैठा रहा।

'—अरे बात क्या है, बाहर तो आ।"

—मेमू ने उस तरफ इशारा किया जहाँ ओटोरिक्शा पर लिखा था—"बडौदा बैंक की सहायता स।"

"—यह हमारा है अम्मी।"—मैंने बाहर निकलते हुए कहा।

अम्मी के लिए अचभा ही था, वे खामोशी से कभी ओटोरिक्शा की ओर, कभी हमे देखती रही।

"—अम्मी काम कोई भी हो बुरा नही है। सरकारी नौकरी के लिए कब तक बैठा जा सकता था। आजकल रोजगार के लिए बैंको से मदद मिलती है। मेमू के अब्बा ने कोशिश की, हमें यह सहारा मिल गया। इस जगह ओटो रिक्शा नही हैं, घर खर्च चलाने को पैसा मिल ही जाएगा।"

"अम्मी के चेहरे पर कई भाव आए-गए। वे अब भी एकटक रिक्शा की ओर देख रही थी। उनकी आँखो मे वर्षों बाद एक तरलता उभर आई थी—जिसमे ममत्व प्रचुर मात्रा मे लिप्त था। बागे-जन्नत का एक खुशबूदार हवा का झोका उनकी बूढी लटो से खेल रहा था।

मेमू की गोद मे उतर कर टीटू उनके कुर्ते को खीच रहा था—उन्होने हुमक कर टीटू को उठा लिया और रिक्शा की ड्रायवर सीट पर उसे बिठाकर खुद होर्न बजाने लगी—

—'पो-पो।'

आसपास के घरो के बालक जुट आए थे, और औरतें कोई चबूतरे पर, कोई खिड़की पर, कोई दरवाजे पर खडी उनकी इस हरकत को देख रही थी।

दृष्टिकोण

□ प्रेम शेखावत 'पंछी'

गहरे बादलो से घिरे आकाश की भांति [illegible] अहसासों से घिरी मिसेज अविन्ता सिंह । देर से अहसासों [illegible] पूरे और [illegible] पुनी [illegible] के से फोहे अविन्ता के हृदय में उमड़ घुमड़ रहे। [illegible] उसने खिड़की बन्द कर दी और बुनाई की सलाइयों को एक बार फेंक दिया। मेज पर से पर्ल बक की 'गॉड्समेन' उठाकर उसमे उलझने की कोशिश करने लगी। बेख्याली मे कुछ ही देर मे सैकड़ा पृष्ठ पलट गई वह पर [illegible] एक भी पृष्ठ पर नहीं जमी। जैसे वह पुस्तक पृष्ठ पलटने के लिए ही उठाई हो उसने। दीर्घ निश्वास के साथ मुह से गहरा धुआ निकाल कर पुस्तक को वापस टेबिल पर रख दी अविन्ता ने। सर्दियो मे जब भी अविनाश सिंह अपने मुह से सिगरेट का धुआ निकालता वह उसी तरह अपने फेफड़ों मे भरे [illegible] का गुब्बारा निकालकर मुह चिढ़ाती, अविनाश की बराबरी करती। अविनाश उसे झिड़क देता—"यह क्या बदतमीजी है ? जरा मैनर्स सीखो अविन्ता।"

अविन्ता का हास्य-व्यंग का स्वाभाविक भाव ठंडा पड़ जाता और वह सहम कर खिड़की की राह पहाड़ पर हर दिन का [illegible] देखने लगती जो कोहरे में निपटा रहता। अब की भांति वह अन्तर्मन पर [illegible] दिन वाली अनुभूतियो और अहसासो का बोझ महसूस करने [illegible]। [illegible] पाणिग्रहण संस्कार में बंधे अभी कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन अविनाश ने [illegible] 'अराउण्ड द वर्ल्ड' में चलने को कहा। पिक्चर देखना अविन्ता बुरा नहीं मानती, पर अविनाश ने कहा था—"मिस्टर एण्ड मिसेज [illegible] ही पड़ेगा।" अविन्ता जानती थी [illegible] अविनाश [illegible] बना डाला। अब तो चलना [illegible] दफ्तर [illegible]

एम्बैसडर कार जित्ता ऊँचा अधिकारी है, जब कि अविनाश पिछले तीन वर्षों से उसी जग लगे लाहे की मोटर साइकिल को किक मारता आ रहा है।

"मुझे न तो पिक्चर दखने का शौक है और ना ही मैं हुजूम के साथ पिक्चर देखने के पक्ष म हूँ। अच्छा ता यह हा कि हम दोनो ही चलकर कोई धार्मिक रील देख लें कभी।' विनीतता वन अविन्ता बाली।

अविनाश के माथे पर चींटियां रेंगने लगी। उस अविन्ता का इस प्रकार टाल देना स्वय का अपमान प्रतीत हुआ। विद्रूप हास्य के साथ उसने कहा—"आश्चर्य होता हे इत्ती अनसोशल हाते हुए भी बी० ए० कैस पास कर लिया तुमने। अविन्ता कुछ सीखो। बहुत बडी जिंदगी पार करनी है। कूपमडूक बने रहने से कैसे काम चलेगा? अपना सामाजिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए सब कुछ करना चाहिए। बड़े आदमियों से किया गया मलजोल तो काम देता ही है। हो सकता भाटिया की वजह से ही मुझे प्रमोशन मिल जाय।"

उपदेशात्मक भाषण सा झाडता रहा था अविनाश। अविन्ता को लगता जैसे उसे भारत की प्राचीन सस्कृति के आदर्शों से पाश्चात्य सभ्यता की ओर ढकेल रहा है अविनाश। क्यों वह उसकी शिक्षा को भला-बुरा कहता है?

आखो के आगे घना कोहरा छा जाता है अविन्ता के। उसे लगता है जैसे उनके विवाह को हुए सदिया गुजर गई है और वह ऊब गई है। वह ही क्यो अविनाश भी ऊब गया लगता है। अवि और अन्ती स्नेह क परिचायक शब्द दोनो के मुह मे जैसे लुप्त हो गये हैं। बातो म शिष्टता और औपचारिकता का गहरा समावेश हो गया है। सिगरेट और सदियों की भाप के धुए की बातो पर गहरी पर्त जम गई जैसे। अविन्ता को वे दिन याद आत जब वे दोनों अपने नामो *की समानार्थता पर हँसते। "अविन्ता यान जिसका अन्त न हो।" अविनाश* कहता तो अविन्ता मुस्कराती, 'अविनाश याने जिसका विनाश न हो।' चहकते हुए दोनो एक दूसरे की बाहो मे बध जाते। लज्जा को स्मित हास्य ढक लेता। अविन्ता समझती कोहरा छट गया है पर अविन्ता ने खिडकी खोलकर देखा—सीमा हीन अन्धकार, जैसे सारा विश्व अधेरे की कैद मे जकडा गया है।

लाइट ऑन करदी उसने। ढर स कटु अहसास। आकाश के सारे बादल जैसे अविन्ता के हृदय म गरजने लगे। स्मृतियो से घिरने लगी वह।

अविनाश की बात अविन्ता के मन पर नहीं जमी सो नहीं ही जमी। जमे भी कैसे? वह नही मानती कि सामाजिक स्तर मनुष्यो की एक श्रेणी विशेष की चापलूसी करने से ऊँचा होता है। दुराग्रह? दुराग्रह ही मानती है अविन्ता उस दिन की घटना को।

अविनाश की शादी की, अविनाश ही क्यो अविन्ता और अविनाश की

शादी की तीसरी साल गिरह थी। अविन्ता तो शादी के दिन को हर वर्ष मनाने के पक्ष मे नही थी पर अविनाश चाहता था सो उसे भी चाहना पडा।

पार्टी म अविनाश के दफ्तर के पांच-सात सहयोगी भाटिया एव मिसेज भाटिया थी। हल्के फुल्के नाश्त के बाद मित्रो को विदा कर भाटिया परिवार को अविनाश ने रोक लिया था। आल्मारी म स न जाने कब की रखी हुई दो बोतलें 'ब्लैक नाइट' की निकाल कर टेबिल पर रख दी उसने।

गिलास भरकर भाटिया की ओर बढाया उसने।

"तुम दोना के सौंदर्य के लिए।" अपनी पत्नी और अविन्ता की ओर देखकर कहा था भाटिया ने।

सामने की कुर्सी पर बैठी अविन्ता को अपने पैरो म कुछ चुभता सा प्रतीत हुआ। अपने पैरो का मेज के पायदान से दूर खीच लिया उसने। रेंगने वाले जानवर की भाँति भाटिया के पैर की अगुलियो ने अविन्ता के पैर का पीछा नही छोडा। अविन्ता को भी दानो मर्दो ने शराब ऑफर की बहुत जोर भी डाला पर अविन्ता न केवल इन्कार ही नही कर दिया बल्कि वहाँ से उठकर भी जाने लगी पर सबके सानुरोध आग्रह पर वहाँ बैठे रहना उसने अनुचित नही समझा। पैरो को समेट कर चुपचाप बैठी उनकी अनर्गल वार्ता सुनती रही। ज्यादातर बातें दफ्तर से सम्बन्धित थी जिनम भी ज्यादा जिक्र अगल माह निकलने वाली प्रमोशन लिस्ट का था। मिसज भाटिया अपन छोटे बच्चे की प्रशसा मे तल्लीन थी जो कि अट्ठारह महीने का ही गुड मार्निग, टाटा और डैडी-मम्मी बोलना सीख गया था। यह कैसी मम्मी है जो दो मासूम बच्चा को आया के सहारे छोड यहाँ सामाजिक शिष्टता का पार्ट अदा कर रही है ?

"मम्मी ? नही ! नहीं !! मा कहने वाला ..।" उसे एक रिक्तता का अनुभव होता है। काश ! उसके भी एक बच्चा होता। मिसेज भाटिया का चेहरा नशे से गर्म तवे सा अरुण होता जा रहा था। अधमुँदी आखो से क्षण भर वह अविनाश को देखती और सिर उसक कधे से सटा देती।

अविन्ता को अपनी पिंडलिया लोहे के सीखचे म कसती हुई महसूस हुई। पैरो पर जैसे बहुत बडे जानवर रेंग रहे हो।

'नीच !' अधरो म बुदबुदायी अविन्ता। जाते समय भाटिया ने हाथ-मिलाई रस्म मे अविन्ता के हाथ को जोर से दबा दिया और हथेली के बीच मे गुदगदी सी कर दी।

"दुष्ट कही का।" जानता है अपने पति के प्रमोशन के लिए वह सब कुछ उसे दे देगी। अविनाश पर बडी खीझ हो आई उसे ! क्यो वह ऐसे लोगो के साथ रहता है ? और यहाँ लाता है ? उस दिन अविन्ता के हृदय मे रेगिस्तान

की धूल भरी आंधी मचल उठी थी। रोआ-रोआ कांप गया उसका। यह अविनाश भी ऐसा क्यों है ?

अविनाश को ही दोषी मानती है अविन्ता तो। कल तक वह स्वयं को दोषी मानती थी पर कल शहर की प्रसिद्ध लेडी डाक्टर ने भ्रम के पर्दे को खोल दिया है। इस प्रकार का नंगा सत्य उसे अखरने लगा। अनेक शारीरिक परीक्षणों के उपरान्त डाक्टर ने कहा था—"यू आर एबिल टू गिव बर्थ टू ए चाइल्ड।" अविन्ता के किसी अंधेरे कोने से आवाज गूंजी" क्या अविनाश" ? निश्चित रूप से ही अविनाश की कमजोरी का यह खुला भेद अविन्ता को बुरा लगा। वह सोचने लगी काश डाक्टर अविनाश के स्थान पर उसकी कमी बताती, ताकि वह शारीरिक हीनता के अहसास से सदा सम्पूर्ण रूप से पिसती रहती। पर सत्य को झुठलाने का चारा उसके पास तो क्या, डाक्टर ही क्यों भगवान के पास भी नहीं है।

क्या सदैव उसकी कोख सूनी रहेगी ? मातृत्व सार्थक नहीं होगा ?

नीली निकर और लाल स्वेटर में लिपटे सेंट पॉल्स स्कूल में जाते सैकड़ों चेहरे तैर गये उसकी आंखों में। गोलमटोल चेहरे, तुतलाती बोली खेलते-कूदते। ओफ · !

आकाश के सारे बादल अविन्ता की आंखों से जैसे बरसने लगे। सेंट जेवियर की लाल पत्थर की इमारत के सामने से जब भी वह गुजरती उसे लगता जैसे इन सुघड़ खिलौनों के झुंड में से कोई मां कहकर उसके गले लिपट जायेगा और जब तक नहीं छोड़ेगा जब तक कि वह उसे एक गन्ने के रस का गिलास न पिला देगी। विचारों की इसी उधेड़-बुन में उसे सड़क पर पड़े पत्थर की चोट खाकर होश आता तब वह पुनः सोचती कि औरत का भी कैसा हृदय होता है जो सन्तान होने पर प्रायः कांपता है और न होने पर तरसता है।

उसके भाग्य में संतान है नहीं।

मिसेज भाटिया और उसके बच्चे। बार्न विद ए सिल्वर स्पून।

ईर्ष्या का भाव अंकुरित हुआ अविन्ता के हृदय में और तब वह अपने लॉन में संयोगवश खेलने के लिए आए हुए बच्चों पर झल्ला उठती है— 'ए सुअर की औलादो। घास क्यों उखाड़ रहे हो, भागो यहां से नहीं तो !

बच्चे वहां से नौ दो ग्यारह हो जाते हैं तब कहीं अविन्ता को शान्ति मिलती है। गहरे बादलों से घिरे आकाश की भांति देर से कटु अहसासों से घिरी मिसेज अविन्ता सिंह। देर से कटु अहसासों जैसे बादल काले, भूरे और सफेद धुनी रुई के से फोहे अविन्ता के हृदय में उमड़ घुमड़ने लगे। सहम कर उसने खिड़की खोली। आसपास की छतों पर दूधिया चांदनी छिटक आई थी। टाइमपीस पर दृष्टि डाली जो कि भूत से अनभिज्ञ भविष्य के चिंतन में निरन्तर

आगे बढ रही थी। ओफ ! दस बज गये, क्यों नही आया अविनाश अभी तक ?

बुदबुदा कर मेज पर से पुन 'गॉडसमेन' उठाया और उसमे उलझने की कोशिश करने लगी वह। यह सदियो की रात भी विरहिणी के खतो की भाँति कितनी लम्बी होती है ?

वह पुस्तक के दस पन्द्रह सौ शब्द ही पढ पाई थी कि अविनाश ने कमरे म कदम रखे। वही मामाजिक स्तर ऊँचा उठाने वाली मोहन मुस्कान अधरो पर फैलाकर उसने कहा—"क्या हो रहा है ?" निरर्थक सा प्रश्न था, अत उत्तर देना अविन्ता ने उपयुक्त न समझा।

उलाहने के रूप म एक प्रश्न अवश्य खडा कर दिया—"कहाँ थे अब तक ? घर म इत्ती रात तक अकेली ऊब जाती हूँ।"

'एक बच्चा पैदा कर लो ताकि ऊबना मिट जाय।"

बच्चा ? उसके भाग्य म सन्तान है ही नही। क्या कहे वह। सिमट कर रह गई।

वह कहे जा रहा था—' एक बच्चा कर ही लो मैं तो इसी प्रकार काम म उलझा रहूगा। एक ऐजेन्सी और ले रहा हूँ। तब शायद अब से भी ज्यादा व्यस्त हो जाऊँ।"

अविन्ता अब रोई अब रोई जैसी स्थिति म चुपचाप पलग पर बैठ जाती है। बच्चा पैदा करन के लिए अविनाश उसे इस ढग से कहता है जैसे बच्चा पैदा करना अविन्ता के बायें हाथ का खेल हो, और इतने दिन वह चाहकर ही ऐसा न कर सकी हो।

अविनाश मुह म कौर डालता हुआ पुन बोला—'कल डाक्टर के पास चलेंगे देखें क्या बात है ? मेरे खयाल से सतानोत्पत्ति मे सामयिक सयोग ही काम आता है। पर हो सकता है कि धरती ही बजर हो ।' बजर धरती ? अविन्ता का सारा शरीर जैसे टूटने लगा। रोकते रोकते भी आँसू ढुलक पडे। अविनाश ने खाना समाप्त कर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पश्चाताप के से भाव म कहा— दुखी न हो। मैं कोशिश करूगा कि कल जल्दी ही आ जाऊ। कल डाक्टर के पास भी चलेगे और देखो। मैं तुम्हे जो इतना कहता सुनता हूँ वह सब मेरे और तुम्हारे फायदे के लिए ही कहता हूँ। समय के साथ हम चलना ही चाहिए। क्यो ठीक कहता हूँ न।' अविन्ता ने बात के *प्रथम सिरे को पकडते हुए अपना मातृ हृदय अविनाश के सामने रख दिया—* "क्या तुम मुझे एक बच्चा दे दोगे ?' उसने यह इस लहजे म सटकर पूछा जैसे अविनाश की गोद म बच्चा हो और वह उस वापस न देने की घोषणा कर चुका हो। अविन्ता को इतना विश्वास हो गया था कि धरती बजर नही है पर

वह यह भी मानती थी कि हो सकता है बीज की भी कोई त्रुटि न हो। सभवतया गर्भ धारण मे सामयिक सयोग की ही कमी हो सकती है। पर कल...।

अविनाश को नीद आ चुकी थी। अविन्ता भी करवट बदल कर सोने का उपक्रम करने लगी। अविनाश के स्पर्श मात्र से भी उसे डर लगने लगा। उसे लगने लगा कि अविनाश बिना चमडी की फूटी ढोलक है जिसके स्पर्श मात्र से ही उसका हाथ कहीं अन्दर के खोखले ढाँचे मे न चला जाय।

विस्तृत आकाश अविन्ता के सिर पर उतरने सा लगा। रेगिस्तान की तपती बालू मे चलते-चलते जैसे उसके पैरो म सूजन आ गई हो।

गहरे बादलो से घिरे आकाश की भाँति अनेक नवजात शिशुओं के घेरे मे घिरी मिसेज अविन्ता सिह। नीद आने के पश्चात् स्वप्न मे ढेर से बच्चे उसे दिखाई दिए जो उसके पास आने को अपनी गोरी एव पतली कलाइया बढा रहे हैं। ककरीली मिट्टी के ढूहे पर खडी वह सबको अपनी बाहो मे समेटने के लिए हाथ बढाती है। हाथ फैलाते ही बच्चे अलग-अलग मास-पिंडो के रूप म बिखर जाते हैं। उसके हाथ खून मे सन गये हैं। ओफ! आँखें खोल दी उसने। अविनाश सिंह ने करवट बदली थी।

यह सदियो की रात भी विरहिणी के खतो की भाँति कितनी लम्बी होती है?

सवेरा हुआ। अविनाश तैयार हो चुका था—"अति' चलो चलें।" पुराने नाम से पुकार कर डॉक्टर के पास चलने का सकेत दिया।

"पहले भाटिया के उधर से निकलेंगे। बडे मुन्ने की वर्थडे है आज। अत कुछ उपहार ले जाना आवश्यक है। वापस आते...।" अविन्ता समझ गई कि वह आगे क्या कहने वाला है। बालो का जूडा बनाकर वह भी तैयार हो गई।

भाटिया का मकान सी स्कीम मे है। जग लगे लोहे को अविनाश ने किक किया। कुछ ही क्षणो म वे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये। एक दर्जन के लगभग उपहार देने वाले पहले से वहाँ उपस्थित थे। पीना पिलाना चल रहा था। उपहारो के ढेर मे अविनाश ने भी अपना डिब्बा रख दिया। हाथ मिलाते हुए भाटिया ने कहा—"आइए अविन्ता जी सामने बैठिए इधर।" अपनी पत्नी की तरफ इशारा किया उसने। अविनाश मिसेज भाटिया के सामने और भाटिया के बराबर बैठ चुका था। अविन्ता भाटिया के सामने नही बैठना चाहती थी। अपने घर वाली पार्टी का दृश्य घूम गया उसकी आँखो मे। छि पैरो पर रैंगने वाला जानवर। वह सबसे अतिम कुर्सी पर बैठ गई।

अभी तक उसे अविनाश पर विश्वास था। न जाने क्यो उसे अभी तक

ऐसा लग रहा था कि डाक्टर दोनो को ही योग्य मानकर कहेगा—"यू बोथ आर एबिल टू गिव वर्थं···।" यदि ऐसा न हुआ तो ?

क्या अविनाश का अभिप्राय एक बच्चा कर ही लो से यही तो नही था, कि··और अविन्ता का मस्तक चक्कर चक्कर खाने लगा। वह केवल भाटिया को देख रही थी। रेंगने वाला जानवर ! असीम घृणा से भर गई अविन्ता। भाटिया और अविनाश के प्रति वह सोचने लगी। "शायद अविनाश का यह मतलब नही था जो उसने लगाया है। लेकिन भाटिया को ह क्षमा नही कर सकती थी। किस तरह पैरो को मसोस दिया था दुष्ट ने म दिन।" भाटिया वाली मेज के नीचे अविन्ता की दृष्टि गई। मिसेज भाटिया विनाश के पैरो को बेसब्री स कुरेद रही थी और अविनाश भी अपने पैरो को सस सटाता रहा था। क्या हर मेजबान परिवार की महिला के पैरो पर इसी कार जानवर रेंगा करते हैं ?

अविन्ता का मुह कडुवाहट से भर गया। कुर्सी से उठकर हॉल के कोने र रखे पीकदान मे घृणा से थूक दिया उसने। सब निमंत्रित महानुभावो के वले जाने के बाद वहाँ केवल आधा दर्जन प्राणी रह गये मिस्टर एण्ड मिसेज भाटिया, दोनो बच्चे और अविन्ता और अविनाश। अविनाश ने कहा—"अच्छा तो चलें मुझे डॉक्टर के यहाँ जाना है।" भाटिया परिवार से विदा ले वे बाहर आ गये।

एस०एम०एस० हास्पिटल के कम्पाउन्ड मे मोटर सायकिल रोक कर दोनो अन्दर चले गये···

पन्द्रह बीस मिनट बाद बाहर आए तो इस प्रकार जैसे अपना सब कुछ अन्दर खो आए हो।

डॉक्टर ने कुछ यो कहा था —"मि०सिंह आशा तो नही पर आप अमुक अमुक विटामिन का प्रयोग करें।" आगे की बात अनसुनी कर चुपचाप आ गया था अविनाश। पीछे-पीछे अविन्ता भी चल पडी। अविनाश का मुँह ऐसा सफेद हो गया था जैसे शरीर का सारा रक्त किसी ने निचोड लिया हो, जैसे कुनैन की पूरी गोली मुँह मे चबाली हो। आत्मा को जैसे किसी ने टूक टूक कर डाला हो। डाक्टर के एक एक शब्द ने उसके मर्म स्थल पर चोट की थी। उसका मन पूर्णतया उदासी मे डूब गया। कदम क्विंटल क्विंटल भर के हो गये। पैर धीरे धीरे उठ रहे थे। अविन्ता से उसकी यह दशा न देखी गई। उसके गले क पास मुँह ले जाकर लगभग उससे लिपटती हुई सी वह बोली—"मुझे बच्चा नही चाहिए। तुम उदास न हो" "यह क्या बदतमीजी है। जरा मैनर्स सीखो अविन्ता परे हटो" कह कर झिडक दिया अविनाश ने उसे। झिडकने की परवाह न करते हुए अविन्ता चहकती हुई बोली—"और सुनो। शाम

को पिक्चर चलेंगे। भाटिया परिवार के साथ प्रोग्राम तय कर लो। हमें समय के साथ चलना ही चाहिए।" जिसके मन की बात थी उसी के सामने अविन्ता ने दोहरा दी। यह सोच कर कि कुछ तो अविनाश डाक्टर की बात भूल जाय और कुछ इसलिए भी कि मिसेज भाटिया के सम्पर्क म रह कर डाक्टर के फतवे की स्मृति धुंधली पड जाय। लेकिन अविनाश के अधरो पर से सामाजिक स्तर ऊँचा उठाने वाली मोहक मुस्कान जैसे जल सी गई। वह युगद्रष्टा की भांति दैन्यपूर्ण मुस्कराहट बिखेरता जग लगे लोहे को किक मारने की तैयारी करने लगा। अविन्ता की पुत्रोत्पत्ति की कामना शिथिल पड चुकी थी। उसकी कामना केवल यही थी कि उसकी गृहस्थी का सन्तुलन बिगडने नही पाए और अविनाश और उसके बीच पुत्र न आए तो भी, सौहार्द्र लौट कर आ जाय। अविनाश यह भूल जाय कि उसके घर मे नये चिराग न जलने का कारण वह है, अविन्ता नही।

जँगल का कायदा

☐ माधव नागदा

"रखडी आज पार्वती को भी टीणके (लकडियाँ) बीनने लेती जा।"

"नहीं मा। मैं मगरे (पहाड) नही जाऊगी।"

"क्यों नही जायेगी ? जब देखो तब फट से नट जाती है।"

"मा, सुना है मीणे नही बीनने देते। छोकरियों को तग करते हैं। मुझे तो वहा जात डर लगता है।"

"इस रूप की डली के लिए बैठे हैं मीणे। रखडी और उसकी सायणो (सहेलियो) को तो तग नही करते और इस राणीजी को तग करेंगे। यो कह यो कि मेहनत करनी पडती है। पसीना बहाना पडता है। हथेली मे छाले पड जाते हैं तब रोटी पकावो जितो टीणके भेले होते हैं। अरे अभी से आलस करगी तो सासरे वाले क्या रोयेंगे तुझे ले जाकर ?"

"चल पार्वती। फालतू मे मा के ताने सुनती है। मैं तेरे साथ हू। कोई मीणा हाथ नही लगाएगा।" रखडी ने कहा।

"झूठ बोलती है। तू ही तो कहती थी कि कवी-कवी मीणे टीणके बीनने वाली औरता की इज्जत ले लेते हैं।" पार्वती बोली।

"ओ हो। बडी आई है स्याणी सीता। मोट्यार माल हो गई सो मीणा इसकी इज्जत लूटेगा। गाव की दूसरी छोरियो के तो इज्जत है ही नहीं जो दो दो मन लकडिया अपन सर पे उठाकर लाती हैं। देख लूगी शाम को खाना कैसे पकायेगी।"

"तू ही चली जा न मा।"

"मैं जाऊ इस उमर मे। बडी आई मुझे भेजने वाली। जाती है कि

अभी झोटा पकड़कर मारू ?" मा डण्डा उठाते हुए पार्वती को मारने के अदाज मे थोडा आगे बढी ।

"जाती हू । डण्डा क्यो उपाडती है । चन रखडी, जो होगा देखा जाएगा ।"

पार्वती ने टोपना और कराडी (कुल्हाडी) ली तथा लकडिया बीनने रखडी के साथ निकल पडी । राह म और भी कई सायणें मिली । पार्वती गुम-सुम सी बढती रही । जगल घना होने लगा । लकडी काटने की खट्-खट् सुनाई देने लगी । शायद कुछ लडकिया पहले ही पहुच चुकी थी । दूर एक तरफ एक मीणा युवक व गाव की युवती लकडी के गट्ठर को लेकर उलझे हुए थे। युवती बार-बार गट्ठर बडी मुश्किल से अपने सिर पर रखती और युवक दुष्टतापूर्वक उसे नीचे गिरा देता । युवती गिडगिडाई । पर निष्ठुर युवक पर कोई असर नही हुआ । लाचार होकर युवती ने गट्ठर वही छोड दिया और युवक के साथ पास की खाई म उतर गई । कुछ देर बाद दोनो खाई से बाहर निकले और युवक ने चुपचाप गट्ठर युवती के सर पर रख दिया ।

मीणा यहा की आदिवासी जाति है जिसका पेट भरने वाला यह विशाल जगल है । ये लोग गीली लकडिया काटकर जगल मे ही डाल देते हैं । सूखने पर गट्ठर बाधकर गावो और कस्बो मे बेच आते हैं । कुछ होशियार मीणे कोयले बना लेते है । वन विभाग के कर्मचारियो की मुट्ठी गर्म कर या नजरें बचाकर कोयले जगल से बाहर ले जाते हैं । इससे भी काम चलाऊ आय हो जाती है । किन्तु पास के गावो की गरीब सवर्ण लडकिया जब इस जगल की लकडिया जलाने ले जाती हैं तो मीणा जाति को दोहरा नुकसान होता है । एक, लकडिया कम पड जाती हैं । दूसरे, जब ये लोग यहा से ले जायेंगे तो फिर खरीदेगा कौन । इसीलिए मीणे इन्हे लकडिया नही ले जाने देते । गाव की युवा लडकिया भी जो झुण्ड के झुण्ड आकर इस जगल मे फैल जाती हैं, मीणा नव-युवको से बडी चतुराई से लकडी के गट्ठर ऐंठ ले जाती हैं । कोई गिडगिडा कर, कोई कटाक्ष स घायल कर, कोई मीठे वचन सुना कर और कोई·· । जैसा कि अभी हुआ इस तरह । यह सब इस घने जगल की परम्परा बन गया है । प्रत्येक लडकी जो यहा लकडिया लेने आती है, यह अच्छी तरह जानती है कि एक दिन वह जरूर इस तरह किसी मीणे मोट्यार की शिकार बनेगी । कई बार ये जवान कुवारी गरीब युवतिया जिन्हें उनके सवर्ण मा-बाप अपनी दरिद्रता की वजह से विवाह योग्य होने पर भी हाथ पीले नही कर सकते

थे, ऐसे अवसरो की ताक मे रहती थी। पार्वती ने यह सब रखडीओ अर न्य सायणो से सुन रखा था। उसने एक बार रखडी से पूछा भी था, "तुम लोगो को लाज नही आती यह सब करते हुए ?"

"अरे, लाज काहे की पारो। हम कोई जान-बूझकर ऐसा थोडे ही करती हैं। गरीबी सब करवाती है। टीणके नही ले जावें तो खाना किस पर पकावेंगी। हम कोई रईस तो हैं नही जो रोज-रोज पैसे देकर मूलिया डलवा लें।"

"ये भी कैसी गरीबी है रखडी। एक गरीब जात दूसरी गरीब जात का खून पीती है।"

सभी लडकिया इक्का-दुक्का कर बिखर गयी। पार्वती और रखडी खडी रह गयी। पार्वती को डर लग रहा था।

"रखडी तू दूर मत जाना। मुझे इस उजाड मे डर लगता है। मीणे मेरे टीणके छीनेंगे तो क्या करूगी।"

"तू मत डर मैं पास ही हू। आवाज लगा दीजे। दूसरी सब सायणें भी आसपास ही हैं। किसी को भी पुकार लीजे।"

पार्वती को ढाढस बधा।

"देख यहा बहुत से सूखे ठूठ हैं। काटकर भर ले टोपले में। मैं वहा हू सामे, उस बडे थूहर के पीछे। हिम्मत राखजे।"

रखडी बीनते-बीनते दूर हो गई। पार्वती ने चावण्डा का नाम लिया और कराडी से ठूठ काटने लगी। कोमल देह पसीने से नहा उठी। किसी तरह टोपला भरा। इधर-उधर देखा। रखडी कही नजर नहीं आई। इतने मे चट्टान के पीछे से एक मीणा प्रकट हुआ। आते ही भरे टोपले के ठोकर लगाकर लकडिया बिखेर दीं।

' छोरी, हमारे टीणके क्यो ले जाती है ?"

पार्वती सन्न रह गई जैसे किसी ने कानो मे सन्जी घोंक दी हो। उसने रखडी को पुकारना चाहा पर आवाज नही निकली, पूरा टोला आया था पर अभी एक भी लडकी नही थी। क्या सभी को मीणे उडा ले गए ?

"वे लती नहीं है। तुम जनी यो नहीं मानोगी। सबकी कराडिया छीन छीन लेंगे तब पता चलेगा। बता कहा हैं तेरी कराडी ?"

"वो · पडी।"

"वो !" मीणा युवक आश्चर्य से देखता रहा। आज तक किसी लडकी ने स्वेच्छा से अपने हथियार नही डाले थे। सब मिन्नत खुशामद करती। शरम

या भाई बनाती। या गालियां ही देती। पर इस तरह चुपचाप अपनी मेहनत को मीणे की ठोकर से बिखरते नही देखती। यह छोरी तो रोने भी लग गई। लगता है नयी आई है। मुखड़ा भी कितना सरुप है।

"आज क्या तू पेली दफा आई है ?"

"हू।" वह बड़ी मुश्किल से हुंकारी। काप रही थी।

"किसकी बेटी है ?"

"चाणक जी की।"

"वे ही जो हमारे मेडे मे दुकान माडते हैं ?"

"हा वे ही।"

"वे तो बडे अच्छे आदमी हैं।"

युवक धीरे-धीरे नम्र होता जा रहा था और लडकी आश्वस्त।

"क्या नाम है तेरा ?"

"पार्वती।"

"रो मत। अब कोई कुछ नही कहेगा। देख तो तेरी कवली देह पसीने से कैसी भीग गई है।"

वह सोचने लगा आसू और पसीना मिलकर कैसा स्वाद बनाते होंगे। मक्की की गरम-गरम रोटी पर नमक और नीबू छूरकर खाते समय जैसा स्वाद आता है क्या वैसा ? उसे लड़की पर बहुत दया आने लगी। युवक ने लकडियां इकट्ठी करके टोपले मे भरी और पार्वती के सर पर रखते हुए पुचकारा, "अब डर मत। तू तो हमारे सेठजी की बेटी है। ये दूसरी छोरियां तो नक्टी हैं। कहने पर भी नही मानती। हमेशा आ जाती हैं।"

पार्वती को दूर रपड़ी दिखाई दी। वह छूटते ही उधर भागने लगी।

"पारू।"

मीणा युवक ने आवाज दी। यह सम्बोधन पार्वती के कानो को बहुत प्यारा लगा। वह रुक गई और मुडकर पहली बार युवक को भरपूर नजरो से देखा। गठा हुआ मेहनती शरीर। सावला रग। गोल, चिकना किन्तु दृढ चेहरा। गले मे रेशमी रूमाल। आखो मे काजल। लम्बे-लम्बे बाल जिन्हे तरतीबी से सवारकर कघी भी वही फसा दी थी। सफेद कमीज। घुटने से भी ऊपर तक धोती जिसमे से दिखती हुई पुष्ट मासल जाघें। लोग कहते हैं मीणे उजड्ड व ठेठ जगली होते हैं। लाज शरम नही होती। परन्तु यह छोरा तो भला लग रहा है।

"पारू, अब तो आसू पोछ ले।"

पार्वती ने एक हाथ से टोपला सम्भाला। दूसरे हाथ से ओढनी के पल्लू

को आखो पर फेरा। हौले से मुस्कराई और चल दी। मीणा युवक वडी देर तक उधर ही ताकता रहा।

रास्ते मे लडकिया पार्वती को देखकर उसके सस्मरण सुनने लगी।

"तुम लोग फालतू मे मीणो को बदनाम करती हो। मुझे मिला वो तो वोत अच्छा था। बेचारे ने टोपला भरकर ऊचा भी दिया। हा पेले पेल उसने ठोकर मारकर टीणके विखेर दिए तब मुझे डर लगा। रोना आ गया। बाद मे''' बाद मे''' एक बात कहू देखो हसी मत उडाना हा।"

"नही उडायेंगी तू कह तो सही।" सब एक साथ बोल पडी।

"बाद मे बेचारे को दया आ गई। नाम पता पूछा और पुचकार कर कहने लगा, डर मत, तू तो हमारे सेठजी की बेटी है।"

"अरी सेठजी की बेटी को कही चूम तो नही लिया?" रखडी चहकी।

"हट।" पार्वती पछताई। इन बेशरम छोरियो को कोई बात बताने का धरम ही नही है।

"तू तो लगती है पहले ही दिन उससे परेम करने लग गई।"

फिर बुजुर्गाना अन्दाज मे रखडी बोली, "देखो पारो, और सब कुछ कर लेना पर किसी मीणे को दिल मत दे बैठना। दिल देने वाली लडकी फिर गाव नही लौटती। इस जगल का कायदा है कि हर पाच साल मे एक छोरी किसी मीणे जवान के साथ भागकर अपने मा बाप की नाक कटवाती है। इसलिए इज्जत रखनी हो तो शरीर से खेल लो पर दिल से नही।"

रखडी की सीख का असर हुआ या नही पर अब पार्वती नियमित रूप से लकडिया लेने जाने लगी। अब उसे जबरन भेजने की जरूरत नही पडती। वह स्वय सबसे पहले घर से निकल जाती और सहेलियो को न्यौता देती हुई जगल की ओर भाग जाती। उसी चट्टान के आसपास का जगल पार्वती को भा गया था। वह मीणा युवक भी बिना चूके आ जाया करता था। पार्वती को उसका आना अच्छा लगता। उससे बातें करने को जी चाहता। बातो ही बातो मे वह यह भी जान गई कि उस रसीले जवान का नाम बालू है।

उस दिन बालू ने कहा, "पारो, तू इन गोरी-गोरी हथेलियो से कैसे लकडी काटती है?"

"क्या करें बालू! इस गरीब गाव की छोरियो की किस्मत मे यही है।"

"पर तू अब नही काटेगी।"

"क्यो, तेरी है इसलिए?"

"अरे वो पेले दिन वाली बात भूल जा। उसका मुझे बहुत सोच है। पर अब तुझे लकडिया नही काटनी पडेंगी। इधर आ मेरे साथ।"

वह पार्वती का कोमल हाथ थामकर कुछ दूर ले गया जहा सूखी लकडी का एक बडा ढेर पडा हुआ था।

"ये सब तुम्हारे लिए हैं पारु। तू हमेशा यही से भरकर ले जाना।"

इतनी सारी सूखी लकडियां एक जगह देखकर पार्वती की आखें खुशी से चमक पडी।

"तू घणा अच्छा है रे बालू। मेरी कितनी चिन्ता करता है।"

"तू भी तो बोत रूपाली (सुन्दर) है पारो।"

दोनो के बीच की दूरी मिटते-मिटते शून्य हो गई। दोनो एक-दूसरे के हो गए। एक-दूसरे मे खो गए। पूरा जगल इनके प्यार की खुशबू से महक उठा। मुरझाए फूल खिल पडे। झरनो मे पानी बढ गया। पहाड की चोटिया और ऊची हो गयी। बालू को अब इस बात की परवाह नही रही कि कौन लडकी उसके जगल से लकडिया ले जाती है। कभी-कभार मौज मे आकर किसी लडकी को छेड लेना अन्यथा सारा समय पारो के साथ ही बिताता।

एक दिन जगल बहुत सुहाना हो गया था। रग-बिरगे फूलो से सजे ऊचे-ऊचे पेड विवाह के लिए तैयार किसी सेहरा बाधे दूल्हे की तरह लग रहे थे। पक्षियो का मधुर कलरव गान, बहते झरनो का मीठा कलकल निनाद और बालू की बसी से निकलती मोहक लोकधुन। ये सब पार्वती का मन लुभाने के लिए पर्याप्त थे। वह एक पेड से दूसरे पेड, एक झरने से दूसरे झरने और झाडी से दूसरी झाडी हिरणी की तरह फुदकने लगी। इसी समय एक कटीले पेड की डाली ने निर्लज्जतापूर्वक उसकी ओढनी को पकड लिया। ओढनी पार्वती के बदन से यो फिसली जैसे किसी पहाडी पर विश्राम कर रही बदली हवा का झोका आते ही उसकी चोटियो को उघाड कर चल दी हो। जगह-जगह से फटी हुई चोली मे से जो कुछ दिखाई दिया उसका वर्णन नही करना ही गरीबी का सम्मान होगा। परन्तु बालू की निगाहे वहा से हटना नही चाहती थीं। एकाएक पता नही उसे क्या सूझी कि पार्वती का हाथ पकडकर बेतहाशा पहाड की ढलाई उतरने लगा।

"अरे मेरी ओढनी तो वही अटकी है।"

"फिर ले लेना। जल्दी मेरे साथ आ एक चीज दिखाता हू।"

"क्या है? यो क्या उतावला हो रहा है?"

"तू आ तो सही। वो देख।"

"मुझे तो कुछ नही दिख रहा है। केवल रूख ही रूख हैं।"

"उधर नही बेण्डी (पगली)। उस खाई मे देख। वो वहा।"

"वो तो···व···वो अरे रखडी और दूसरा···!"

वह अपने अपरम यौवन को कोहनियो से ढकते हुए वापस ऊपर की ओर भागी। बालू भी पहुंचा। पार्वती दोनो घुटनो मे मुह छिपाए उकडू बैठ गई।

"यों कैसे बैठी है। सामने तो देख।"

"तू बडा खराब छोकरा है। मुझे वहा क्यो ले गया ?" उसने बालू की आखो मे देखते ही तुरन्त अपनी नजरें नीची कर ली।

"तुझे गियान देने।"

"मुझे ऐसा गियान नही चाहिए।"

"तू भी चलेगी मेरे साथ उसी जगह ?"

"हट। मेरे से ऐसी बातें करेगा तो कल से आना छोड दूगी।"

"क्यो ? ये तो दुनिया की रीत है।"

"पाप लगता है। औरत को धणी (पति) के अलावा और किसी के साथ ऐसा काम नही करना चाहिए। समझा।"

"फिर मेरे से शादी कर ले न तू।"

"धत्। तू तो ओछी जात है। मैं तुझे नही परण सकती।"

बालू का खिला हुआ चेहरा एकदम फक पड गया। वह आसमान की ओर ताकने लगा जैसे पूछ रहा हो कि हे ऊपर वाले तूने इस ससार मे जात-पात बनाकर इतना बडा अन्याय क्यो किया। कम-से-कम गरीब-गरीब की जात तो एक बनाई होती। फिर उसे अफसोस भी हुआ। पता होते हुए भी कि शादी नही हो सकती, उसने बात क्यो चलाई।

पार्वती बालू की स्थिति भाप गई। वह बालू के बिल्कुल नजदीक गई। उसके चेहरे को अपनी हथेलियो के मध्य लिया और डबडबाई आखो मे झांक-कर बोली, "ए ! इस तरह अनमना क्यो हो गया ? ये तो मैंने लोकलाज की बात बताई है। मेरे हिवडे मे तो तू बोत ऊचा है। मेरे से भी ऊचा।"

"छोड पारो। मैंने तो यो ही कह दिया था।"

"तू भी सोच। तुझे परणूगी तो कितनी जगहमाई होगी। मेरे मां-बाप किसी को मूंह दिखाने लायक नही रहेंगे। अच्छा, अब हस दे।" उसने बालू के गुदगुदी चलाई।

"नहीं हंसेगा ? ठैर जा।"

वह पास ही बबूल के पेड के नीचे गई और चार सूखी फलियां उठाकर दो-दो दोनो पैरो मे बाध ली। सूखे बीज पायल की तरह झनझना उठे।

'बालू बंसी बजा न। आज मैं नाचूगी।"

"अरे, तू नाचेगी ?" पार्वती की हरकत देखकर बालू की हंसी न जाने कहा उड गई।

"हा। बजा न।"

"अच्छा, पहले धुन बताना कौन सी है ?" उसने बासुरी होठों से लगाई और एक लोकगीत छेड़ दिया।

" 'मोरिया आछों बोल्यो रे ढळती रात मे। म्हारे हिवडा में लागी रे करौंत' यही है न ?"

"हा यही है।' फिर उसी धुन पर पार्वती बबूल की फलियों को छन-छनाती हुई नाचती रही।

सचमुच एक दिन बालू के हिवडे म करौंत धस गई जब उदास होकर पार्वती न कहा, बालू अब मैं नहीं आऊगी। कल मरी सगाई है। पदरा दिन बाद ब्याह।"

बालू कोई जवाब नहीं दे सका। दूसरे दिन स पार्वती का आना बन्द हो गया। और शुरू हो गया बालू का अन्तहीन दुख। उसकी सारी खुशिया इस पहाड की चोटी से दिखने वाले उस गाव म जाकर कैद हो गयी। जगल उदास हो गया। झरनो का पानी सूख गया। फूल मुरझा गए। बालू प्रतिदिन इस इन्तजार म चट्टान पर आकर बैठ जाता कि पारो रखडी के साथ टीणके लेने के बहाने उससे मिलन आएगी। पर निराशा ही हाथ लगती। वह रखडी स हाथ जोडकर कहता

' रखडी, तू मेरी धरम की बहन है। केवल एक बार पारो से मिला दे। उसके दरसन करके आखें तरपत कर लूं।'

रखडी को बालू की हालत सहन नहीं हुई। उसने तय कर लिया कि वह एक बार दोनो को जरूर मिलाएगी। वह शादी स दो दिन पहले पार्वती के घर गई।

"पारू। ए पारू। इधर आ।" रखडी ने पार्वती को धीमी आवाज मे पुकारा।

पार्वती धीरे-धीरे चलकर रखडी के सम्मुख आकर खडी हो गई। रखडी गहनो से लदी पारू के उदास सौन्दर्य को देखती रह गई। शादी का कोई हर्ष, कोई उल्लास पार्वती के चेहरे पर नहीं था। रखडी की आखें नम हो गयी। वह पार्वती का हाथ पकड कर मकान के एकान्त कोने मे ले गई।

'सुन पारो। तू एक बार उसके पास चल। वह बापडा बहुत दुखी है। तेरी याद मे खोया रहता है। अब हमारे टीणके नहीं छीनता है। टोपले नहीं गिराता है। छेड़ता नहीं है। बस हर लडकी को सूनी-सूनी आखो से देखता

रहता है कि इनमें मेरी पारो तो नहीं है। फिर उसी चट्टान पर जाकर बैठ जाता है और बसी से दरदभरी धुन छेड़ देता है।

"म्हारो परेमी बसे परदेस, परदेसीडा थारी ओल्यू घणी आवे रे (मेरा प्रेमी परदेश रहता है। हे परदेशी, तेरी बहुत याद आती है)।"

पार्वती सुनती रही। देह से एक कपकपी छूटी और दोनों आखों से आसुओं की धारा बहने लगी। रखडी के आसू भी रेशमी आचल की तरह एकदम ही ढरक पड़े। उसने पारो को खीचकर अपनी छाती से भिडा लिया।

"गेन्डी (पगली), रोती क्यों है। मैंने पहले ही कहा था कि इस उजाड में किसी मीणे को शरीर भले ही सौंप देना पर दिल नहीं। अब क्या हो सकता है। अब तो तू कल मेरे साथ चल। सिरफ एक बार उससे मिल ले।"

पारो ने अपने आसू किसी कदर थामे परन्तु गालो पर धारे अभी भी बदे हुए थे। बोली :

"क्या करूं रखडी। मैं भी बहुत चाहती हू एक बार उससे मिल लूं लेकिन परसो ही बारात आने वाली है। मेरे पीठी (हल्दी) चढी हुई है। ऐसे में गाव के बाहर भी कैसे जाऊ।" कुछ भी हो। कल तेरे साथ जरूर जाऊंगी। पर'''पर रखडी वापस आऊंगी कैसे उसे छोडकर।" पार्वती ने दोनों हथेलियो से मुंह ढक लिया और फफकने लगी।

"जी काठा रख पारो। तुझे वापस मेरे साथ ही आना पडेगा। वहा जाने की मुझे एक तरकीब सूझ गई है। मैं तुझे बनोला जीमने के बहाने कल सवेरे-सवेरे ले चलूगी। मेरा घर वैसे भी गाव के बाहर है। वहा से खेतो मे होकर जगल की पगडण्डी से चले चलेंगे। किसी को शका भी नहीं होगी। ठीक है ?"

"ठी'''क'' है।" पार्वती ने एक-एक शब्द रुकते हुए बोला।

दोनो जगल मे पहुच गईं। रखडी को नीचे छोडकर पार्वती उस ऐतिहासिक चट्टान की ओर बढी जहा उसका और बालू का प्यार जन्मा एव पला था। बालू चट्टान का सहारा लिए बैठा था। उसे देखकर पार्वती अपनी रुलाई नही रोक सकी। जो छबीला हमेशा सजा सवरा रहता था आज उसके रूखे बाल बिखरे हुए थे। आखो मे काजल नही था। गले मे बधा रूमाल चिथडा हो गया था। धोती जगह-जगह से फट गई थी। चेहरे का सावलापन गहराकर काला हो गया था।

"बालू।"

"पारू। पारो आ गई तू। मुझे पता था तू एक बार जरूर आएगी।" दोनों एक दूसरे से लिपट गए।

"बालू तेने ये क्या हालत बना रखी है ?"

"बस जीवडा अटका हुआ है यही बात है।"

"भगवान के लिए ऐसा मत कह। क्या मुझे चैन से जीने भी नही देगा ? मरद होकर इतना कायर बनता है।"

फिर पार्वती ने कघी की। बालो को जमाया। खुद का रूमाल उसे दिया। उसके आँसू पोछे और यह सब करते हुए पार्वती अपने आसुओं को नही रोक सकी। काफी देर तक दोनो मौन बैठे रहे। केवल दिल बोलते रहे। फिर पार्वती चलने को हुई।

"तू ब्याह मे जरूर आना।"

बालू ने कोई जवाब नही दिया। फटी-फटी आखो से देखता रहा जैसे कह रहा हो, 'हम ओछी जात वाले तुम्हारी शादी मे कैसे आ सकते हैं।' कम से कम पार्वती न तो यही समझा और लपक कर उसके सीने लग गई।

"बालू कुछ कहा सुना हो तो बुरा मत मानना। माफ कर देना।"

"पारो ऊऽऽऽ।"

"अब मैं जाऊ रखडी आवाज लगा रही है। तू सुखी रहना। हिम्मत मत हारना। कोई अच्छी छोरी देखकर ब्याह कर लेना।"

बालू का मन बातों से भरा हुआ था पर अभी वह कुछ नही बोल पा रहा था। कुछ ही देर मे होने वाले बिछोह की आशका उसकी आवाज का गला घोट रही थी।

"पारो ऽऽऽ।" रखडी ने पुन आवाज लगाई।

"आइ ओ ऽऽ !" पारो की आवाज पहाडो से प्रतिध्वनित होकर गर्म लावे की तरह बालू के कानो मे उतरी। बालू को लगा यह आवाज पहाडो से नही उसके हिवडे के अनगिनत टुकडो से टकरा कर आई है।

बालू और पारो ने अन्तिम बार एक दूसरे को भरपूर नजरो से देखा। उन गम-भरी नजरो के मिलन-स्थल मे प्रकटने वाले दर्द के ज्वालामुखी से वह विशाल जगल हिल गया। पहाड थरथराने लगे। फिर पारो धीरे-धीरे पहाड की ढलान उतर कर गाव की ओर बढने लगी। उसके मन में बार-बार यह हो रहा था कि वह बालू को छोडकर अच्छा नही कर रही है। उस लगा मानो यहाँ का एक-एक पेड, एक-एक जानवर, एक एक पक्षी यह विदाई गीत गा रहा है, 'पारो, इस जगल का एक कायदा है। यहा एक गरीब दूसरे गरीब का खून पीता है।'

लौटा हुआ कल

□ सुरेन्द्र 'अंचल'

इस अधकार के अथाह समुद्र मे पार्क की ये दो मरकरी आखें इतना घूर-घूर कर क्यो देख रही है ?

कोई बुला रहा है मुझे ··बेचैन, पीछे छूटी जीवन की गुल-मुहरी घाटी मे ! क्या सचमुच मैं वहाँ तक लौट जाऊँ ?···लौट सकूँगी ?·· बीते हुए कल को लौटा लाने का साहस करूँ ? इस मौन निमत्रण को क्या करूँ ?

हूँ, मुई नीद आयेगी ही नही। खुली खिडकी स तेज हवा सनसनाती हुई घुसी चली आ रही है। बाहर बीहड अधेरा। प्रकाश के दो बिन्दु जो उस पार्क के मध्य से घूर रहे हैं···खटक रहे है हृदय मे, शूल की तरह ! बच्चे नीद मे बेसुध हैं। ओफ ! कितने बदनसीब बच्चे है ये। यह महेन्द्र, यह शशि। इनका बाप ?···अब ये कभी अपने बाप को नही देख सकेंगे ! सामने घण्टाघर स गूँजने वाले घण्टो की अवधि के बीच कितनी भयानक खामोशी। अग-प्रत्यगो म एक कसकन-सी हो रही है। कह नही सकती कि यह कसकन मीठी है या दर्दीली। पर हाँ, जाने क्यो इन दिनो यह कसकन मुझे भाती जा रही है ? हृदय की बुझी धडकनें पुन कुलबुला कर जागती जा रही हैं। कोई जगा रहा है इन्हें ! क्यो जगा रहा है कोई इन्हे। ये पदचापें आ रही हैं—लग रहा है, बीता हुआ कल लौटकर आ रहा है तेजी से।

इस अधकार के अथाह समुद्र मे पार्क की ये दो मरकरी आँखें इतना घूर-घूर कर क्यो देख रही हैं ? ओह ऐसी ही तो है राजेश की आँखें भी—जो हृदय की तहो को छेदती हुई सब कुछ देख जाती है। कितनी तीखी हैं वे आखें !

मुझे क्या होता जा रहा है ? इस सूनी माँग को ढाँपते हुए क्या मेरे पाँव सचमुच ही डगमगाए जा रहे हैं ? यह सरसराहट क्या है इस माँग में ? क्या उन आँखों में इतनी ताकत है जो इस माँग को सिन्दूरी करके देख सकें ? ताकत ? तो मैं उसे ताकत दूँगी ! हाँ ताकत दूँगी।

उस दिन महेन्द्र और शशि को कितना चूमा कितना प्यार दिया। ढेर सारी टॉफियाँ भी भर दीं उनकी जेबों में और कहा था—इन बच्चों को बाप का प्यार नहीं मिल सकता मगर माँ का प्यार तो पूरा दीजिए। बड़े चुलबुले हैं।

और उस दिन नव गन्दों में बदलती नारी पर तब पश करके सैकड़ों लोगों को मुग्ध कर दिया। कितने सशक्त विचार हैं उनके !

सौम्य भोला तथापि सशक्त मुस्कुराहट कि रोम रोम में पिघलता शीशा उड़ेल देती है। मुस्कराते समय गालों पर पड़े दो छोटे छोटे गड्ढे—जैसे मुझ अपनी ओर खींचते हुए कह रहे हों—आ हम में समा जा ! इस मासूम उम्र के सिर से इस एकाकीपन की गठरी को उतार फेंक। इन बच्चों को उठा ले गोद में और !

ओफ ! क्या सोचने जा रही हूँ मैं ? क्या यह हो सकता है ? हो भी सकता हो तो क्या हो ? और नहीं हो सकता हो तो क्यों नहीं हो सकता ? अन्य अध्यापिकाएँ गुपचुप गुपचुप बातें करती क्यों कतराती हैं ? क्या इसलिए कि कोई अधिकार जताता हुआ मुझे स्कूटर पर बिठा कर ले जाने नहीं आता ?

जाने कैसी कैसी निगाहों से देखती है दुनिया कि जैसे मैं नारी हूँ ही नहीं। मेरी पसलियों में उनकी तरह धड़कता हुआ दिल है ही नहीं। उनका खून खून है और मेरा खून नाली का गन्दा पानी। आखिर मैं भी तो एक नारी हूँ इन्हीं की तरह शायद अधिक सुन्दर तन से भी मन से भी और आचरण से भी।

रूप है कान्ति। जिसकी शादी अभी अभी हुई है। कैसे अंगदर्शी कपड़े पहनती है—कैसी बेशर्मी है उसकी आँखों में ! कभी मोहन के स्कूटर पर बैठ कर जाती है तो कभी लाला कार में बिठा कर ले जाता है। पति महोदय तो सोमवार को देवगढ़ जाते हैं तो शनिवार को रेस्ट लेने आते हैं। हाँ उस दिन न मोहन लेने आता है न लाला। पैदल ही चलकर जाती है अकेली।

कुछ समर्थ लोग अन्य व्यक्तियों को दास बनाकर रखने में गर्व का अनुभव करते हैं सत्ता और सम्पत्ति के दम पर किन्तु कोई यदि स्वयं किसी का दास बनने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझे तो !

और और मुझे नजर उठाने का भी अधिकार नहीं। किसी से हँस कर बोलते देख सैकड़ों उलाहना भरी दृष्टि मेरे चेहरे पर चुभने लगती है—सूई की तरह। कब तक जी सकूँगी यों !

…और ये बच्चे ! मासूम ! अबोध ! अभागे ! बार-बार चादर उघाड देते हैं और मैं ओढा कर सुलाती हूँ। सुबह उठा कर बडी मिन्नतो से नहलाऊँगी, दूध पिलाऊँगी और अपने साथ स्कूल ले जाऊँगी।

' जैसे विद्यालय की घण्टी बज रही है टन् टन्'' टन्'''। बच्चे दौडते हुए प्रार्थना स्थल पर इकट्ठे हो रहे हैं और कक्षा '' मैं हाजरी भर रही हूँ। हाजरी भर कर छात्रो को अनुशासित रहने का उपदेश देकर कक्षा मे पीछे पडी कुर्सी पर बैठ जाती हूँ। कुछ दिनो से वह छात्राध्यापक सामने बोर्ड के पास खडा अपना अभ्यास पाठ पढा रहा है। कोई निरीक्षक आता है और उसकी पाठ-योजना पुस्तिका म जाने क्या-क्या समीक्षा टाक जाता है।

कितना हँसमुख युवक है यह, कितनी पावन मुस्कराहट, क्यो चाह होती है कि देखा करूँ। महेन्द्र के बापू की आकृति की कितनी सहज सही प्रतिकृति !

—"अच्छा नमस्ते ! चलता हूँ ! सम्भालिय अपनी कक्षा।" अहसान जताती सी आँखें। जुडे हुए हाथ और जाने क्या क्या ?

मैं चौंक पडती हूँ। सकपका जाती हूँ। आँखे उठाती हूँ। हाथ जोडती हूँ। कितना सामीप्य ? कितना भय ? कितना साम्य ?

समय का बुलडोजर अवैध कब्जो के मकानो की तरह निर्दयता से तारीखो के अस्तित्व को ढहाता-कुचलता बढता जा रहा है। एक ' दो''' तीन ' ! भीतर ही भीतर कोई मकडी ताना-बाना बुनती रहती है और सहसा स्वप्न की तरह वीराने म बहारें बिछली पडने लगी ! विद्यालय के बीच चौक म खडा गुलमुहर फूला। उस दिन उसने मेरे हाथ म एक कविता थमा दी। अन्तर्भाव कविताओ क सेतु को पार कर एक दूसरे तक पहुँचने लगे !

पुरुष की उदारता कृपण होती है। विष देकर कह देंगे मरो मत। मेरे मौन-निमन्त्रण पर प्रश्न चिह्न का व्यवधान खडा कर दिया जाता—"वासना को जीतो ! तन की तपन ने समाज की असख्य नारियो को पुरुष की क्रूर तृष्णा का शिकार बनाया है और नारी का अस्तित्व बिकाऊ बन जाता है ''।" इन शब्दो का जादुई चुम्बक मुझे बुरी तरह उसकी ओर खींचने लगा। इस विचार का व्यक्ति मुझे धोखा नही दे सकता। मैंने सौदा सही किया है। इसी को समर्पित हूँगी मैं। हाँ !

कितनी प्यास जाग उठी है मुझमे। नही ? यह प्यास मे सहेज नही सकूँगी, समय के इस बुलडोजर से टूटते क्षणो को अब अधिक नही टूटने दूँगी ! …मैं तुम्हें सब कुछ दे दूँगी !

इस अधरार के अथाह समुद्र म पार्क की ये मरकरी आँखें इतना घूर-घूर कर क्यों देख रही हैं ? हवा बहुत धीरे-धीरे बह रही है—सतर्क सी।

बच्चों की ओर देखा। सो रहे हैं—निश्चिन्त।

उठी, साड़ी बदली। स्पज की चप्पलें पाँवों म डाली। धड़कनें हृदय से बाहर निकली जा रही हैं। जाने कहाँ खिंची जा रही हूँ—सम्मोहित सी। क्या मैं यह पाप कर रही हूँ ? क्या मैं बिक रही हूँ ? पिछली गली में है राजेश का मकान। आज बच्चों के भाग्य का सौदा करके ही आऊँगी।

खट' 'खट।

द्वार खुला। एकदम चौंक कर मुझे देखता ही रह गया, प्रश्नवाचक आकृति में। कुछ देर बाद झुंझलाया हुआ बोला— 'ओह! भीतर आ जाओ। कहीं किसी की निगाह पड गई तो···।"

उसने किवाड लगा दिये।

मैं कमरे की हल्की नीली रोशनी म काप रही हूँ। साहस की इस पराकाष्ठा मे इतना भय ? ओह! मुँह से बोल भी तो नही फूटते।

—"इतनी रात आप जागते हैं ?"

"हाँ, कुछ पढ रहा था। पर तुम भी' इस समय ?"

'इसका उत्तर आपके पास है।" मेरी आँखों न झुककर समर्पण की घोषणा कर दी।

वह कुछ बोला नही। एक नजर घडी पर डाली। एक नजर भीतर के किवाडो पर। चुपचाप उठा और हाथ पकड कर अपने साथ चलने का इशारा किया। मैं मन्त्रमुग्ध सी चलती गई। बाँये दरवाजे से होकर गैलेरी मे—आगे एक छोटा कमरा और कमर म ले जाकर उसन मुझे बाँहो मे भीच लिया। सावन की घटाए बिना गर्जन ही बरस पडी, उस बौछार के मानसरोवर मे मैं उतर गई गहरी।

"राजेश! मुझे सच्चा सम्बल चाहिये और वह मुझे मिल गया। क्यो सच है न ?"

"बिल्कुल। जब भी तुम्हे मेरी आवश्यकता पड़े, इसी तरह इसी समय आ जाया करो।"

"नही। यह सब नही। नारी को जीवन भर सहारा चाहिये। और वह भी तुम जैसे निर्भीक पुरुष का।"

"मैं सहारा दूँगा काशी। जरूर दूँगा।" उसने मेरी हथेली में कुछ नोट थमाते हुए कहा—"तुम्हे जब भी जरूरत हो, माग लिया करो—निसकोच।

लगा कि स्वप्निल तरगों मे किसी ने पत्थर फेंक कर हलचल पैदा कर दी। क्या जिस स्वर्ण-मृग के पीछे मैं भाग रही हूँ—वह महज माया है, छल

है। क्या राजेश मेरी बात नही समझ सका ? क्या मैं राजेश को नही समझ सकी ?

—"राजेश ! मैं नोटो की प्यासी नही हूँ। मैं शरीर देने नही आई थी, मैं सब कुछ न्यौछावर करने आई हूँ। वतन मुझे पर्याप्त मिलता है। मैं तुम पर भार नहीं बनूँगी। मैं अपने दोनो बच्चो को सनाथ करने आई हू। क्या मेरी रूखी मांग मे सिन्दूर नहीं भरोगे ?"

राजेश झटके से उठ बैठा—"काशी ! पागल हो गई हो क्या ? तुम्हारे हर दु ख-दर्द मे मैं साथ हू—अब जाओ। बैड रूम म राधा सो रही है—मेरी पत्नी। जग जाएगी तो तूफान मचा देगी। प्लीज, अब जाओ। चलो, मैं दरवाजे से निकाल दूं। कोई देख लेगा तो मरा तो क्या—मगर तुम्हारी स्थिति सम्भलनी भारी हो जायगी। जाओ ! ये रुपये लेती जाओ और भी जरूरत हो तो सकोच काहे का !"

मैं अवाक् ! निचुडी हुई। कुहरा छट गया, आकाश स्वच्छ हो गया। यह स्पष्ट हो गया कि वह मुझे अपनाने का साहस नही कर सकता। वासना पूर्ति तक ही वह मेरा सहयोगी हो सकता है। आगे खडी चट्टान। अमृत कुण्ड समझ कर जिस पोखर से मैंने अपनी प्यास बुझाई वह कीचड का गड्ढा निकला। हाथ म थमा हीरा कोयला बन गया। मैं बाजी हार गई ! मेरी आत्मा चीख चीख कर कहने लगी—दुष्टा ! यह सब क्या कर दिया तूने? इतनी सस्ती बिक गई तुम ? साचो कि क्या इस सब का तुझे अधिकार है ? नही, तुम अपनी कहाँ हो, महेन्द्र की हो, शशि की हो'''। लौट जाओ। लौट जाओ ! और वात्सल्य के बर्फ से ठण्डी करो अपनी इस पाप की भट्टी सी दहकती देह को।

झटका खाकर उठी—गैलेरी म होकर कमरे म, कमरे से द्वार खोलकर सडक पर—मेरा आहत अपमान दौडता सा !

बच्चे सो रहे हैं। शशि ने चादर उघाड दी है। आखें आत्म-ग्लानि का बोझ ढो नही सकने के कारण बह रही हैं।

लगा कि कान्ता मोहन के स्कूटर पर बैठी जा रही है, मुझे जीभ निकाल कर चिढा रही है।

लगा कि पार्क की मरकरी आंखो मे रोष है। घण्टाघर ने दो बजने की घोषणा। मेरी आँखे अनायास दीवार घडी के पास टगी तस्वीर पर पडी। मेरे देवता की तस्वीर मुझे क्षमा की दृष्टि से देख रही है।

लिपट गई मैं महेन्द्र से। चूम लिया मैंने शशि को। सचमुच मेरे रोमो म अब कोई कविता सी रिम रही है—वात्सल्य के स्नोफाल से तृप्त देह शीतल

हुई। अब कोई चौराहा मुझे प्र
को ललचा नही सकता। मैं चान्
रहूँगी।

इस अन्धकार के अथाह र
घूर-घूर कर क्या देख रहे

दो गुलाबी हाथ

□ चमेली मिश्र

दिसम्बर महीना आते ही रेखा ने गर्म कपडे सन्दूक मे से निकालने प्रारभ कर दिये। अभी तक तो सर्दी बडी सुहावनी थी, पर ज्यो ही दिसम्बर मे प्रवेश किया, कडकडाती ठड अपना रग दिखाने लगी।

देव को सफेद कपडे अधिक पसन्द हैं। उनकी धुलाई मे कडी मेहनत होती है। मेहनत की रेखा को चिन्ता नही। अपने पति के लिए वह आसमान के तारे भी तोड सकती है। दाम्पत्य जीवन की गाडी को सहज चलाने की यही तो एक विशेष कला है।

पसन्द उसको भी है। परिधान तो हरेक के सफेद ही फबता है। पर सब बचना चाहते हैं—श्रम और व्यय से। सफेद कपडो को मेनटेन करना भी तो कितना कठिन है। उसके लिये डबल साबुन, नील और रानीपॉल भी चाहिए। इतना ही नहीं, धोने की कला भी।

दिसम्बर और जनवरी में रेखा को धुलाई-कार्य से छुट्टी मिलती है। गर्म सूट ही दो महीनो के लिये सफेद कपडों का स्थान ले लेते हैं।

'अरे! सुनती हो।' कहकर देव ने रेखा की ओर देखा। 'हाँ! आज मेरा मन सफेद कपडे पहनने का है।'

'कौन सी ड्रेस निकाल दू—नई या पुरानी ?' कहकर वह कमरे मे चली गई।

कभी-कभी रेखा भी देव के साथ रोहित को लेकर घूमने निकल पडती है।

रेखा को नदी किनारे तथा पहाडी अँचलो मे घूमना अधिक प्रिय है।

सेवहमीड घबराती है। एकान्त प्रिय है। जब-तब अपने पति और बच्चे के साथ छोटे-छोटे पिकनिक के कार्यक्रम बना लेती है।

याद है गतवर्ष की पिकनिक वर्षा का मौसम था। वह तो मौसम की रंगीनी मे अपनी सुध-बुध खो बैठी थी। सचमुच ही मौसम पल-पल अपना रंग बदल रहा था।

रेखा को, पहाडो मे उठते-टकराते सफेद धुए-से बादल बहुत पसन्द हैं। उस पारदर्शी चादर से झांकते पहाड। रिमझिम करता बूंदो का साज, बडा ही कर्णप्रिय लगता है।

प्राकृति भी अपने परिधान बदलती है। हरे परिधान ने उसके सौन्दर्य मे निखार ला दिया था। रेखा सोचने लगी। पत्थर म तो वृक्ष नहीं उगते। पर पहाडो ने तो हरियाली शृगार ऊपर से नीचे तक किया है। उसे ईर्ष्या होती है, प्रकृति के इस शृगार से।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य प्रकृति से कटता जा रहा है। पर सौन्दर्य के प्रति जो सहज आकर्षण की प्रवृत्ति है, उसे सभी स्वीकारते है। रेखा भी।

रविवार अर्थात् अपना दिन। इस दिन घर के सभी कार्य करने होते हैं। फिर भी वह अपने पति और छोटे बच्चे के साथ विश्राम करती है। बच्चा सो जाता है। उन दोनो को नीद नही आती। तब आमने सामने के पलग पर लेटे बतियाते रहते हैं।

रखा के पति सचमुच ही देव हैं। अतिशयोक्ति नही।

सिगरेट उन्हे बहुत प्रिय है। कभी कभी रेखा को चिढाने के लिए कहते हैं—"तुम्हे छोड सकता हूँ, इसे नही।"

धुंए की लहराती लकीर बन गई। रेखा को लगा सफेद सर्पिणी ऊपर हवा म तैर रही है।

धीरे-धीरे पारदर्शी धुंए की चादर देव के चेहरे पर भी छा गई।

रेखा साहित्यिक रुचि की है। लेखन की ओर भी उसका रुझान है। देव उसे उत्साहित करते हैं। उसकी रचनाए पढकर आत्मविभोर हो जाते है।

रचना प्रकाशित होने पर देव उसे कॉग्रेच्यूलेशन्स देना और हाथ मिलाना नही भूलते।

"आज तो नीद साथ नही दे रही है, रेखा। प्लीज एक कष्ट करोगी।" देव की बात पूरी होते ही रेखा उठ बैठी। "क्यो नही। कष्ट मे साथ भी दूगी।" कह कर वह किचन मे चली गई।

गैस पर दो मिनट मे चाय बन गई। दोनो ने एक साथ चाय को सिप् किया और हँस पडे। कमरे मे मधुर वीणा की झंकार गूंज गई।

"हँसना कोई तुमसे सीखे। लाज भी शरमा जाय। कितनी मधुर है तुम्हारी हँसी।" कह कर देव ने चाय का नशा तेज करने के लिये एक रैड एण्ड व्हाइट सिगरेट और सुलगा ली।

रेखा ने एशट्रॉट को करीब रख दिया। देव को कहने की आवश्यकता नहीं। सुगृहिणी के सभी लक्षण हैं, उसमे।

रेखा को भिखारियो से बेहद चिढ है। उनकी आवाज ही उसे कर्णकटु लगती है। भिक्षा मांगना समाज और देश के लिये कलक है, तो क्यो नही देश और समाज म परिवर्तन करते।

सरकार बदलती है। नारे बदलते हैं। पर लेबल वही रहते हैं। सरकार बदलने से भूख नही मिटती है। हर इन्सान को काम और दाम चाहिये।

कुछेक वर्षो के पश्चात् सरकार शिक्षा का ढाँचा बदल देती है। रेखा शिक्षा शास्त्री नही सही, पर समझती तो है। आखिर वह शिक्षिता है।

शिक्षा का ढाचा बदलने से देश की भूख नही मिटती। अपितु अवधि बढाने से पेट की ज्वाला तीव्र होती है। वाह रे! भारत के भाग्य विधाता।

रोटी के दो टुकडे लेकर रेखा कुत्ते को डालने बाहर आई। देखा, कुत्ता तो कही नजर नही आ रहा पर एक ग्रामीण दो गधे हाँकती आ रही है। एक गधे पर साँवला सलौना चार वर्षीय बालक बैठा है। पीछे का गधा भारयुक्त है। एक जवान उनके पीछे है। लगता है, बालक के पिता हैं।

ग्रामीण ने रोटी बच्चे के लिये माँग ली।

रेखा के हाथ मे लकवा मार गया। आँखें उस औरत की आँखो मे समा गईं। अनेक प्रश्न उसके मस्तिष्क म कौंध गये। बोल ओठों तक आकर कैद हो गये।

दोनो टुकडे उसने उसे थमा दिये। बालक ने झट ही रोटी दाँतो के हवाले कर दी।

रेखा अभी हतप्रभ खडी देख रही है। कारवा गुजर गया, तब उसे होश आया। वह झट भीतर आकर लेट गई।

विचार उसे मथने लगे। वह लेटी ही थी कि किसी की "बाई जी दया नी की बामो-खूमी। गरीब की अन्तडियाँ असीस देसी।" दर्द भरी आवाज कमरे मे धुँए की तरह फैल गई।

उसका जी चाहा फटकार दे। पर ये भी पक्के ढीठ हैं, एक बार उसने एक भिखारिन से कहा था—"क्यो माँगती हो! काम क्यो नही करती।" जवाब सुनकर वह दग रह गयी—"हमारा तो यही धन्धा है।"

इनके पास घडी न सही। इन्डियन स्टेन्डर्ड टाइम से माँगने निकल पडते हैं। छोटे छोटे बहन भाई, चिथडो मे लिपटे सुरक्षा के लिये हाथ मे लकडी भी

हैं। कुत्ते भी इन्हें देखकर बिदकते हैं। रेखा अपनी घडी, कभी-कभी इन्हीं के आगमन पर मिलाती है।

देव के बाहर जाते ही वह पुन बिस्तर में दुबक गई थी। आज उसके विश्राम में खलल पडती जा रही है।

परियो के देश मे विचरण कर रहा है, केवल उसका मासूम बेटा रोहित। चिन्ता रहित जीवन। रोहित की अधखुली आँखें उसने चूम ली।

आवाज ने फिर से उसे याद दिलाया इस बार वह चिढ कर लिहाफ ओढकर सो गई। सोचा अपने आप चली जायेगी। पर वह थी कि अडी थी, कुछ पाने के लिये।

इस बार आवाज के साथ एक नई आवाज भी थी। 'हुआ-हुआ' ने रेखा को बिजली सा स्पर्श किया। वह एक झटके मे उठ बैठी। दरवाजा खोला। भिखारिन की झोली की आवाज ने उसे उठने को विवश किया है।

रेखा का मातृत्व बर्फ-सा पिघलने लगा।

"कितने दिन का है।" वह पूछ बैठी।

"दस दिन का।" सुन कर वह चुप हो गई।

उसका जी चाहा नन्हे को लेकर अपने नरम-नरम बिछावन पर रोहित के साथ लिटा दे। पर दूसरी औरतो का ध्यान आते ही उसके बढते हाथ थम गये। वह भीतर आ गई। आलमारी खोलकर कुछ ओढने के कपडे तथा एक गद्दी निकाली।

कपडे और रोटी भिखारिन को थमा कर वह एक टक उस नन्हे प्राणी को देखती रह गई।

भिखारिन की आँखो मे चमक है। वह दुआएँ दे रही है।

रेखा मौन है मातृत्व के अधिकार पर। नारी का अधिकार या भूख। दोनो पर्याय है। इनका अलग कोई अस्तित्व नही।

वह बडबडाई, तो देश का भी कर्त्तव्य है—दो हाथो को काम दे।

भिखारिन झोली मे बच्चे को लिये जा रही है।

रेखा के आगे अभी भी वही दो गुलाबी हाथ घूम रहे है जो खिलने से पूर्व ही मुरझा जायेंगे और...।

अपराधी कौन ?

□ रूपनारायण काबरा

इस नामकरण के इतिहास से तो मैं अनभिज्ञ हू, पर हम सब उन्हे 'दादा उस्ताद' कहते हैं। वैसे व्यवहार मे केवल 'दादा' ही सम्बोधन करते है। विद्यालय के समस्त बालक चपरासी, अध्यापक एव प्रधानाध्यापक सभी उन्हे दादा ही कहते हैं। कई तो उनका वास्तविक नाम जानते भी नही। उनके व्यक्तित्व की भव्यता एव विविधता का क्या कहना ! चौडा ललाट, चौडी छाती, कसरती बदन और गोरा रग। कभी वे मोटर ड्राइवर से जचते हैं तो कभी खलासी और कभी प्रिंसिपल, कभी पहलवान तो कभी मिया मजनू ! उत्सवो पर जब सूट-बूट-टाई मे होते हैं तो शेक्सपीयर से कम नही ! बाहर से आने वाले आगन्तुक प्राय उन्हे ही प्रधानाध्यापक समझ बैठते हैं। गुस्सा करते हैं तो अग्रेजी मे ! किसी भी विषय मे उनसे शास्त्रार्थ कर लीजिए पूरे आक्रोश सहित प्रतिवाद करते हैं या हास्यपूर्ण समर्थन। विद्वान् तो वे कम नही पर अध्यापन मे कोई रुचि नही। कहा करते हैं, "आज की डालडा-सन्तति इस योग्य कहा कि मेरी बात समझ लें। अनावश्यक ही अर्थ का अनर्थ कर डालेंगे।" वैसे हैं वे अर्थशास्त्र के वरिष्ठाध्यापक। खाने की क्या कहो—महीने मे सात किलो घी तो साधारण बात है। दो किलो दूध नित्यप्रति वर्ष पर्यन्त चलता रहता है। शहद के विशेष प्रेमी हैं। नित्यप्रति आधा पाव तो चाहिए ही। बेचने वाला आया तो अकेले ने ही अठारह किलो खरीद डाला। वैसे उनको शिकायत यही रहती है कि दूध, घी, शहद की यहां बडी तगी है। निश्चय ही पूर्व जन्म में राजा थे। अभी तो वर्ष पर्यन्त झाड़ू नहीं लगाते और न ही सामान को व्यवस्थित करते। कभी कोई परोपकारी बालक अथवा साथी की इच्छा हुई तो साफ हु

गया अन्यथा वे स्वयं कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते।

वैसे उनका व्यक्तिगत जीवन भी कम रहस्यपूर्ण नहीं। कोई कहता है विवाहित हैं और कोई अविवाहित। गले में बड़ा स्नेह रखते हैं। विश्राम करते मैंने पूछ लिया एक दिन "दादा आपने शादी की है कि नहीं?" वे एक विचित्र सी हंसी हँसे जो केवल वे ही हंस सकते हैं और कहा, 'मुझे मालूम नहीं" यह शब्द कुछ ऐसी मुद्रा में कहे कि मैंने आगे कुछ भी नहीं पूछना चाहा। सम्भवत उनके जीवन का यह वह पृष्ठ है जिसे वे हर किसी के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहते। धुन के पक्के इतने कि एक बार वसन्तोत्सव पर जब अध्यक्ष वे ही थे अध्यक्षीय भाषण कर रहे थे कि जर्दे का पीक बीच-बीच में थूकते और बच्चे हंसते। इस पर क्रोधित होकर उन्होंने छात्रों को बुरी तरह डांटा और घोषणा कर ही तो डाली "आज से जर्दा बन्द।" बस फिर क्या था बन्द कर दिया। इससे शारीरिक गड़बड़ भी हुई पर सब सहन कर लिया। यह दूसरी बात है कि उन्होंने फिर अफीम खाना प्रारम्भ कर दिया।

लगभग सभी प्रकार के रोग हैं उनके शरीर में। सभी को प्रश्रय और सभी से सहानुभूति! बवासीर हृदय रोग वात रोग, नेत्र रोग इत्यादि। चश्मा लगाएंगे तो धागे वाला ठीक डार्विन युग कालीन जिसमें आज तक कोई विकास नहीं। एक कांच फूटा है तो फूटा ही चलता रहेगा। कागज की चिप्पी लगाकर काम चलाएंगे। ऐसी उनकी सादगी थी! किसी पर अत्याचार सह सकना उनके वश का नहीं। और यही कारण है कि उन्होंने राजस्थान दिग्दर्शन कर लिया है अपने सेवा काल में। प्रधानाध्यापकों से उनका अहं सदैव उच्च ही रहा है। और एक ही कक्ष में दो पद भला कैसे परिभ्रमण कर सकते हैं! तो ऐसे हैं हमारे दादा।

उस दिन एक छोटा सा आयोजन था मेरे यहां। लोग पीछे ही पड़ गए थे। मैंने कहा "मुझे कोई खुशी नहीं, मुझे कोई विशेष बात प्रतीत नहीं होती अपितु एक प्रकार का बन्धन और बोझ अनुभव होने लगा है।" पर शादी की मिठाई तो खिलानी थी ही। और मैं सोचा करता हूं कि कोई अदृश्य शक्ति है अवश्य जो नियन्ता है मानव की, और हम जिसके वशीभूत हो न चाहते हुए भी जो कुछ वह कहती है या प्रेरित करती है करते चले जाते हैं। न मेरा विवाह करने का विचार ही था और न ही मुझे कुछ पसन्द था, न मैंने हां कही और न ना। पर सब कुछ करता गया, परिचालित सा और परिणाम यह हुआ कि मेरा विवाह बिना मेरे चाहे भी हो गया। न उल्लास तब था और न अब है पर औपचारिकता तो सभी निभानी ही पड़ी, और यह भी एक औपचारिकता ही थी उस दिन की पार्टी।

सभी मित्र उपस्थित थे। श्रीमती शर्मा और श्रीमती दूगड़ भी आईं

थी। चाय का दौर चल रहा था। लोग सस्मरण, चुटकुले एव तरह-तरह की बातें कह रहे थे। मौसम सुहावना था। आषाढी बादल आकाश म मडरा रहे थे मस्ती से झूमते से। सहसा ही अँधेरा हो गया और काली घटाओं ने आकाश को आच्छादित कर लिया। बिना गरजे ही बादल बरस पडे। हम अन्दर बैठ गए। दादा शान्त बैठे थे। जाने क्या सोच रहे थे। मैंने पूछा "क्या सोच रहे हो, दादा ?" तो बोले, 'अरे भाई, यह भीगा भीगा मौसम, यह तूफानी बरसात और मुझे याद है कोटा की वह घटना।" सभी ने आग्रह किया सुनाने का। दादा ने कहना आरभ किया।

"बात ज्यादा पुरानी नही यही कोई तीन वर्ष पहिले की घटना है। मैं कोटा के समीप एक ग्राम मे था। ग्राम के समीप से ही चम्बल नदी बहती थी। उसपर पुल था। पुल पर से दूसरे किनारे पर जाने का मार्ग था। इस प्रकार पुल द्वारा दोनो गाँव जुडे थे। मेरे पडौस म एक नवविवाहित दम्पत्ति रहते थे। पत्नी सुन्दर, युवा एव आकर्षक थी। पति थे कार्यालय मे बाबू। प्रकृति से कुछ नीरस ही थे। ओवरटाइम म लगे रहते थे अत छुट्टी के पश्चात् भी लगभग सात-आठ बजे तक घर लौटते थे। प्रात दस बजे चले ही जाते थे। दिन भर पत्नी अकेली रहती। पडौस म एक युवक जो एम०ए० की तैयारी कर रहा था उससे परिचय हुआ। परिचय बढा और प्रेम मे परिणित हुआ। यौवन की भूल वह कर बैठी। नित्य उसके यहाँ जाती थी और पति के लौटने से पूर्व ही वापस आ जाती और इस प्रकार यह प्रेम लीला चलती रही। युवक ने नदी के पार मकान बदल लिया था फिर भी इनके प्रेम प्रवाह मे कोई अन्तर नही आया।

एक दिन ठीक ऐसी ही शाम थी। भयकर वृष्टि होने लगी। जब वह लौटकर पुल के पास आई तो देखा पुल पर से पानी बह रहा था और पानी के वेग से वह पुल ऐसे झूल रहा था जैसे अब गिरा तब गिरा। वह पुल पर से जा नही सकती थी। पास ही मे एक नाव वाला था। पति के भय मे वह शीघ्र लौटना चाहती थी। नाव वाले से बात की तो उसने कहा, 'मुझे आपसे सहानुभूति है पर मैं अपने स्वामी के साथ विश्वासघात कर, आपको उधार पैसे रख कर पार नही ले जा सकता।" महिला के पास पैसे थे नही। वह लौटकर अपने प्रेमी के पास गई और कुछ पैसे मागे तो उसने भी कह दिया, "देखो प्रिय, तुम्हारे और मेरे पवित्र प्रेम मे पैसे टके का लेन-देन नही होना चाहिए। यदि तुम पैसे चाहती हो तो मेरा प्रेम समाप्त समझो। पैसे और प्रेम मे जो प्रिय हो वही रख सकती हो।" उसका स्वार्थपूर्ण कुटिल उत्तर सुनकर वह पुन. नदी की ओर लौटी। वह किसी भी प्रकार पति से पहले घर पहुँचना चाहती थी। और पूर्णत निराश हो उसने पुल पार करने का निश्चय कर ही लिया। ज्यो ही वह पुल पर पहुँची पुन बहाव के वेग म वह गया और वह भी वह गई।

आज तक उसके शव का भी पता तक न चला ।

इतना कहकर दादा कुछ गम्भीर हो गये और वाणी मे वेदना सी लिये पूछा, "*अब आप ही बताइए अपराधी कौन है ?*"

उत्तर देने वाली थी एक महिला श्रीमती दूगट। जिनका केश-विन्यास अपना एक विचित्र आकर्षण लिये था और बालो से नि सृत होती 'केलिफोर्निया पॉपी' की मधुर सुगन्ध कमरे को सुवासित कर रही थी। उन्होंने कहा, "क्या बेकार का सा प्रश्न है। स्पष्ट ही है कि दोष और किसी का नही उसी लडकी का है। अपने कर्मों से प्रति उसका नैतिक दायित्व था और उसे ऐसा परिणाम भोगना ही पडा ।" हममे से अधिकाश इस बात पर सहमत नही हुए। मैंने कहा अधिकाश महिलायें—उपस्थित महिलाओं को छोडकर—किसी दायित्व के योग्य है ही नही। प्राय ही वे मानसिक एव सवेगात्मक आवेश एव प्रवाह मे आ जाती है। नाव वाला एक स्थिर बुद्धि व्यक्ति था। उसके व्यवहार को बुरा नही बताया जा सकता।"

श्रीमती शर्मा ने कहा ' सकटकी ऐसी विषम परिस्थिति मे उसने अपने मानवीय दायित्व को अपने अनुपस्थित स्वामी पर डालकर स्पष्टत ही नैतिक कायरता का परिचय दिया है।"

एक अन्य बन्धु ने कहा नाविक ने केवल अपने कर्त्तव्य का पालन किया। वह अपने स्वामी के प्रति उधार न रखने के लिये वचनबद्ध था और उसने अपने वचन का निर्वाह किया पर लडकी के प्रेमी ने अत्यन्त नीचता का व्यवहार किया। वस्तुत उसने अपनी लोलुपता एव स्वार्थ साधना के ही कारण उस तरुणी को मृत्यु की ओर उसका प्रेम छिछला एव विलासितापूर्ण था। और फिर वह अपने प्रेम की दुहाई देता था वचक कही का ।" कहते-कहते सारस्वत जी को आवेश आ गया।

हमारी श्रीमती जो का भी अपनी बुद्धि और सूझ बूझ पर बडा अभिमान है। हमसे तो प्राय ही वादविवाद करती रहती हैं। वे बोली, ' प्रत्येक महिला भली प्रकार समझ सकती है कि सब उसके पति का ही दोष है ? यदि वह इतने व्यस्त न होते, उस पूरी तरह प्यार करते, उसे भी अपना सजीव सगी समझते तो वह किसी की ओर आकृष्ट ही क्यो होती ? हिन्दू नारी यो सहज ही किसी की ओर आकृष्ट नही होती है। और यदि वह उसे इतना भयाक्रात न रखता तो सम्भव है कि वह पुल पार करने का दुस्साहस न करती। वह एक पशु था, घमण्डी, नीरस और सत्ताधारी था।"

इस पर तो हमे भी जोश आ गया। ऐसा लगा कि ये सब विश्लेषण श्रीमती जी ने हमे ही सम्बन्धित करके कहे हो और हमने कहा, ' मेम साहब, पति के लिये जरूरी नही कि वह पत्नी के पास ही बैठा रहे और उसका सिर

सूघता रहे गृहस्थी चलानी होती है पति को, जिम्मेदारियां होती हैं और फिर यह भी तो जरूरी नही कि वह बैठकर प्रेम का नाटक रोज ही करे, दिलचस्पी न हो तो भी करे। विवाह तो एक घटना है देवी जी न चाहते हुये भी हो जाता है और चाहते हुये भी नही होता। प्रेम अलग बात है और विवाह अलग।" ऐसा लगा हम कहानी से हटकर आपस म ही उलझ गये थे।

बीच में ही एक अन्य साथी मिस्टर कौशिक जिनके बाल काले और घुघराले थे, क्रीम पाउडर लगाकर टिप-टॉप' लगते थे वे बोले, 'ठीक है साहब, हमने यह भी मान लिया कि साधारणतया पति पशु ही होते हैं पर क्या वह लडकी अपने पति को सूचना नही दे सकती थी फोन द्वारा, दोनो गाव टेलीफोन से सयुक्त थे, कि वह अपनी मौसी के यहा रात भर ठहरेगी ? अथवा और कही से उधार भी नही ला सकती थी ? अथवा अपने प्रेमी के हृदय मे स्थिति के प्रति सहानुभूति जाग्रत कर लेती। और वह नाविक आखिर कितनी उम्र का होगा ? एक लडकी यदि चाहे तो किसी भी विपत्ति मे समस्या का कुछ न कुछ समाधान ढूढ ही सकती है। अत इस निरर्थक विवाद मे क्यो पड रहे हो ?"

और इसी प्रकार वादविवाद सा चलता रहा और अन्तत मैंने दादा से पूछ लिया, "आप ही बताए आपकी इस समस्या का क्या समाधान है।"

"मुझे स्वय निश्चय नही" दादा कुछ सोचते हुए बोले, "सम्भवत थोडा अपराध प्रत्येक का ही है। मेरी इस सम्बन्ध मे कोई दिलचस्पी नही, पर जब कभी इसी प्रकार लोग एकत्र होते हैं तो यही कहानी रख देता हू और उनके उत्तरो से मैं उनकी भावना और विचारो का अध्ययन करता रहता हू। और इस प्रकार मुझे लोगो के चरित्र का ज्ञान होता रहता है।

लावारिस

□ अज़ीज़ आज़ाद

पखो के साये मे जिस्म की गरमाहट लेकर पल रहे नन्हे परिन्दो को क्या पता होता है कि जीवन की उडान बडी कठिन होती है, लेकिन जब आंधी के किसी झोके से घोसला बिखर जाता है तब उन्हे अहसास होता है अपने अस्तित्व का। उन्हे पखो का उपयोग करना अपने आप आ जाता है, जब उन्हे चोच मे लाकर चुग्गा देने वाला कोई नही होता। वसीहत मे मिलता है उन्हे खुला आकाश, जहाँ वे चोच मे तिनका दबाए घोसले का स्थान खोजते फिरते हैं।

रजिया के अब्बा को मिला था रेलवे का क्वार्टर, मगर उनका स्वर्गवास होते ही छूट गया, लावारिस हो गये तीन नन्हे परिन्दे। निकल पडे चुग्गे की तलाश म।

रजिया को अपॉयन्टमैंट लैटर क्या मिला जैसे परिन्दे को पख मिल गये, चाहे पोस्टिंग कैसे ही गाव मे हुई हो।

रोजगार पाने की खुशी एक बेरोजगार ही जान सकता है। इस समय प्रश्न था आवश्यकता का। वैसे उसने सोचा ही कब था नौकरी करने का, घर की चारदीवारी स बाहर उसे इस तरह निकलना पडेगा इसकी कल्पना ही नही की थी लेकिन आज एक अनजान गाव मे नौकरी करने पर भी उसे बहुत खुशी हो रही है।

उस समय उसे आवश्यकता क्या थी नौकरी करने की। पिताजी स्टेशन मास्टर थे। दो भाई जवान हो रहे थे, अच्छी शिक्षा ले रहे थे, किसी बडे ओहदे पर लग जाने की पूरी उम्मीद थी, लेकिन अब्बा बीच मे दगा दे गये। चलते-चलात म हार्टफेल हो गया। घोसला बिखर कर जमीन पर आ गया।

रेलवे का क्वार्टर छोडकर एक रिश्तेदार के यहाँ शरण लेनी पडी। जो जहाँ तक पढ़ा वहाँ तक ही गाडी रुक गई। किसी को भी पहले नौकरी मिले तो घर का काम चले क्योंकि सारे अपने कहलाने वाले और नजदीक के रिश्तेदारो ने, जिनके लिये उसके पिता ने बहुत कुछ किया था, धीरे-धीरे मुह मोड गये।

आखिर कोशिश करने पर रजिया को नौकरी मिल गई। पोस्ट मिली थी अध्यापिका की, बडा सम्मानित पद है, उसे जच गया था। गाव म जाकर वह वहा अज्ञानता के फैले अधेरे को दूर करने म योगदान देगी जबकि उसकी एक मित्र विजय जो कि यही नौकरी करते कुछ पुरानी हो गई है। कहा करती है कि—'यह मजबूरी मे रोटी जुगाडने के साधन के अलावा कुछ नही, नौकरी के नाम पर यही जरा आसानी से मिल जाती है।' वह स्वय भी पहले रजिया की तरह ही सोचा करती थी मगर अधेरा दूर करने की कोशिश मे वह स्वय अधेरे का शिकार होकर रह गई। छ साल से गाव-दर-गाव भटक रही हैं।

पहले दिन ड्यूटी जॉयन करन पर उसे बडी खुशी हुई थी। गाव अधिक दूर नही था, रोज रेल से आना-जाना हो सकता है। रास्ते का साथ भी है क्योकि तीन अध्यापिकाए उसी के शहर की हैं। गाव पहुँचने मे देर भी अधिक नही लगती। दिल्ली वाली गाडी से सुबह आठ बजे रवाना हो तो दस बजे पहुँच जाओ। साढे दस से साढे चार का स्कूल फिर पाँच बजे वहाँ से बैठो तो साढे छ पे शहर।

मगर ये सब उसी समय तक सुविधाजनक रहा जब तक स्कूल का समय दोपहर का था। ज्योही दोपहर का समय हुआ, आना-जाना बन्द। वही रहना आवश्यक हो गया। अब रजिया के लिए मुसीबत हो गई।

वैसे स्कूल ठीक-ठाक था। दूसरी अध्यापिकाओ का साथ मिल रहा था। विजय जैसी सहेली उसके साथ थी। मगर इन सब के होते हुए भी उसका 'रजिया' होना उसके लिए मुसीबत बन गया।

जब वहाँ रहन का सवाल आया तो कुछ बहनजियो ने मिल कर एक कमरा किराये पर लिया। रजिया भी उनके साथ रहने लगी, मगर उसे अपना नाम बदलना पडा। शहर मे उसे कभी इसकी जरूरत नही पेश आई थी फिर अपने घर म ऐसा कभी आभास भी नही हुआ। मगर यहाँ उसे पहली बार यह आभास हुआ कि इस नाम के साथ रहने के लिए उसे कोई मकान नही मिलेगा।

एक बनिये की पत्नी ने मास्टरनियाँ समझ कर उन्ह अपना एक कमरा दे दिया था मगर उसे यह पता नही था कि इन मास्टरनियो मे एक रजिया भी है। रजिया, राधा या रजनी बन कर रह सकती थी यही उसकी साथ की

बहनजियो ने युक्ति बताई थी। वे घर मे उसे राधा के नाम से पुकारने लगी। रहना जरूरी था इसलिए रजिया से राधा बनना भी जरूरी था, यद्यपि वो जानती थी कि यह धोखा देना है मगर इस धोखे के पीछे उसकी रोटी-रोजी जुडी हुई थी यहाँ तक कि वह सोचने लगी थी कि काश वह राधा ही होती।

झूठ ज्यादा दिनो तक छुपा नही रह सका। उसकी स्कूल मे पढने वाली एक लडकी ने उसका असली नाम मकान मालकिन को बता दिया। मकान मालकिन को लगा जैसे बहुत अधर्म हो गया है। बस उसी समय कमरे मे आ धमकी। सारी अध्यापिकाओ पे बरस पडी 'तुम सब अभी का अभी मेरा कमरा खाली करो। मुझे तुमने पहले क्यो नही बताया। इतने दिनो तक हमारा धर्म खराब करके हमे धोखा देती रही। तुम सब भ्रष्ट हो। निकलो यहाँ से।" एक हगामा खडा हो गया। उसने उसी समय उनके पानी का मटका लकडी से फोड दिया। रातो रात सबको मकान खाली करना पडा। दूसरे दिन सारे मकान को पुतवा कर शुद्ध करवाया गया। उन्हे दो रात स्टेशन मास्टर के क्वार्टर पर काटनी पडी। दो चार दिनो बाद दूसरी अध्यापिकाओ को तो मकान मिल गया, मगर रजिया को कोई कमरा नही मिल सका। क्योकि पूरे गाव मे उसका प्रचार हो चुका था, पूरा गाव एक जैसे लोगो की बस्ती था। कोई भी विधर्मी कहलाना पसन्द नही करता था।

पहली बार रजिया बहुत रोई। उसे पिता के मरने पर इतना लावारिस होने का आभास नही हुआ था जितना अब हुआ। वह छुट्टिया लेकर घर बैठ गई। उसने सोचा काश स्कूल के साथ रहने के लिए कोई शिक्षको के लिए क्वार्टर होता मगर ऐसा कहाँ था। उसे घर बैठने की मजबूरी कौन पूछे? नौकरी मे इन बातो का अर्थ ही क्या है। नौकरी है करनी पडेगी। फिर शहरो मे ही रहने वाले लोग तो इसे ट्रान्सफर करवाने का स्टड ही समझेंगे। उसकी इस परेशानी का वास्तव मे यही अर्थ लगाया गया। वह इतनी भयभीत हो गई कि उसे गाव जाने का साहस ही नही हुआ। अब उसकी साथी अध्यापिकाए भी उसकी कोई मदद नही कर सकती थी। कुछ लोग थे भी जो उसे रख सकते थे, मगर उनके पास मकान नही जिनके पास मकान हैं वो उसे रखेंगे नही। विभाग की नजर म यह ट्रासफर का कोई कारण नही। लगता है इसे नौकरी छोडनी पडेगी।

एक और स्वरूप

□ मीठालाल खत्री

वह अपने मकान की छत पर खड़ी-खड़ी बाल्टी में से एक-एक कपड़े को लेती और झटक-झटक कर सुखाने के लिये सुतली की अलगनी पर फैला रही है। तभी वह सोचों की गिरफ्त मे आ जाती है·· पत्र 'ड्रोप' किये हुए हफ्ता भर हो गया है, परन्तु अभी तक कोई प्रत्युत्तर नहीं आया है। न जाने क्यों ? जब डाकिये के आने का समय होता तो वह घर की दहलीज पर थोड़ी-थोड़ी देर बाद आ-आकर खड़ी हो जाती कि उसके नाम कोई पत्र होगा तो डाकिया उसे दे जाएगा। लेकिन जब डाकिया उसके घर के आगे से निकलकर काफी दूर चला जाता, तब वह जान लेती कि उसका पत्र नहीं है, और वह भीतर आकर बेमन से घर के काम मे हाथ डालने लगती। पिछले चार दिनों से ऐसा ही हो रहा है···।

·· खुद के ब्लाउज को सुखाते-सुखाते अनायास वह गुमसुम हो जाती है, और अन्तर की परिधि पर चक्कर लगाने लगती है। न जाने पत्र उनके हाथ लगा भी होगा कि नहीं ?·· और पत्र हाथ लगते ही प्रत्युत्तर देना भी तो सम्भव नहीं है। क्योंकि इजीनियरिंग की पढ़ाई है ! पत्र लिखने की फुर्सत ही कहां होती है। कालेज मे पढ़ने-लिखने वाले लड़के-लड़किया अक्सर अवकाश के दिन पत्र लिखा करते हैं। वैसे परसों 'सन डे' था। लिखा होगा, तो आज तीसरे दिन उसे मिल ही जायगा। लेकिन यह भी तो हो सकता है कि पत्र मे कहीं कोई गलत-सलत शब्द उसने लिख दिया हो !·· और उस शब्द से वह नाराज हो गये हों और पत्र को कचरेदानी का मुह देखना पड़ा हो·· परन्तु नहीं··· उसने ऐसा एक भी शब्द नही लिखा, जिसे पढ़कर वह उससे नाराज हो जायें

और पत्र का जवाब न दें । पत्र उसे ज्यों का त्यों अभी तक याद है, बगैर किसी आदरणीय सम्बोधन के सीधा लिख मारा था —

मेरे बापू आपके गाव जाकर कल साझ को ही आये हैं। घर आते ही खाट पकड बैठे हैं। क्या हुआ और क्या नही हुआ, यह सब जानने के लिए मैंने और मेरी बाई ने बापू से पूछा ताछा तो उन्होंने "कुछ नही कुछ नही" कहकर टाल दिया। पर मेरी बाई के अन्तर्मन म पता चल ही गया कि जरूर कोई कहासुनी आपके गाव आपके बापू के साथ हुई है। मेरे बापू ने आपके बापू स कुछ कहा है या आपके बापू ने मेरे बापू से कुछ कहा है। यह तो न मैं जानती हू और न ही मेरी बाई जानती है। पर कुछ भी हो, इतना तो है ही कि मेरे बापू के मन पर कहीं आघात अवश्य हुआ है। नही तो बापू आते ही खाट का मुह नहीं देखते। अवश्य उनके मन के दर्पण का एक टुकडा टूटकर कही खो गया है।

घण्टे-भर बाई ने उनके पैर दवाये। मैंने उनका माथा दवाया। पीठ पर पैर दिया। नीबू की सिकजी करके पिलाई तो कही जाकर उन्होने बाई की तरफ आँख उठाकर देखा। तव बाई ने पूछा, "क्या हुआ है सो आते ही पड गये हैं ?"

"हुआ क्या, वही जो होना था।" उनके चेहरे का रग उड-सा गया।

"फिर भी कहो तो सही ·।"

"फिर कहू !···आखिर बेटी के भाग मे जो होगा वह तो होकर ही रहेगा। उसे न तो तू बदल सकती है और न मैं बदल सकता हू।" कहकर उन्होंने करवट बदली।

"आखिर हुआ क्या है, साफ-साफ क्यू नही कहते ?"

"साफ-साफ कह दू !"

"आखिर मन मे अकेले कब तक घुटते रहोगे ?"

"तो सुन···पवन के सास-ससुर हमसे बहुत बडी आस लगाए बैठे हैं···।"

"क्या कहते हैं" बाई ने जानना चाहा।

"कहते हैं—हजार से काम नही चलेगा। इतने तो जमाई के हाथ मे देने होगे···उन्हे रेडियो चाहिए, साइकिल चाहिए, हीटर, कुकर, पखा, फ्रीज और जाने क्या-क्या गिनवाया था· ।" कहते-कहते बापू ने अपना माथा पकड लिया, "···मैं तो सब भूल ही गया। इतनी लम्बी लिस्ट सुनकर मेरा तो सर चक्कर खाने लगा···।"

"आखिर कुछ कहा तो होगा ?"

"मैंने ?"

"हां ···।"

"कह दिया, ठीक है, बेवाइजी । सब ठीक हो जायेगा ।"

"और कुछ माया-फोडी तो नहीं हुई ?"

"ऊ हू···।"

पाच मिनट वाद तक चुप्पी रही । फिर वाई वोली, "अच्छा तो अब कुछ खा लो ।"

"कुछ भी खाने का मन नही है···।"

'थोडा तो खा ही ला ।" कहकर बाई रसोई म चली गई और कासी के बडे कटोरे म वाजरे की घाट लेकर आई । वडी मुश्किल स थोडी-सी घाट बापू ने खाई और बची हुई घाट वाई न खा ली ।

फिर बापू सो गय थे । वाई भी बापू क खाट के पास ही, फर्श पर लेट गई थी । मैं भी वाई-वापू स थोडी दूर ही खटिया पर पसर गई । मेरी आखो म नीद कहा थी ! रात भर मेरे दिमाग मे यही घूमता रहा कि अब मेरे वापू क्या करें और क्या न करें आखिर इतना सारा सामान जुटाने के लिए रकम तो चाहिए न ! बापू के पास वाप-दादो की कोई मिल्कियत तो है नही कि सारे सामान का प्रवन्ध कर दें ! और बापू की कमाई भी इतनी नहीं है कि कुछ जोड सकें । आखिर एक थर्ड ग्रेड टीचर ही तो हैं । अगले वर्ष रिटायर भी होने वाले हैं । यह तो अच्छा ही हुआ कि बापू के मैं एक ही हू । फिर भी आधी कमाई तो बाई-बापू की बीमारी मे उडती रही और उडती रहती है·· । कभी हाफ पे होनी है तो कभी विदाउट पे । अब आपके घर वालों की इतनी लम्बी लिस्ट सुनकर बापू का दिल कपडे की चिंदियो की तरह बिखरे नही तो और क्या हो !

मेरे मन म बार-बार यही खुदता रहा है कि अब बापू क्या करेंगे · शायद वह मेरी वाई का सारा जेवर वेच देंगे । सोने के नाम पर सिर्फ कण्ठी और माथे का बोर है, और दूसरा सारा चादी का जेवर है—जो होगा एक किलो भर ! ये सारा जेवर मेरी वाई ने वापू का माथा खा-खाकर कभी बनवाया था । लेकिन इसम कुछ होने वाला नही है । फिर भी ये सारा जेवर बेच दिया जाये और मेरे हाथ पीले करवा दिये जायें, तो फिर मेरी शादी के बाद बाई-बापू अपन बुढाप मे क्या खायेंगे ? · कुछ भी हो, बापू तो मेरे सुख के के लिए घर बेचन को भी तैयार होंगे ही ! क्योकि जवान कुआरी बेटी अपने मा-बाप क घर खट नहीं सकती है ।

आखिर पत्र निग्रवर, आपसे मैं हाथ जोडकर निवेदन कर रही हू कि आप किसी भी तरह अपनी वापू-वाई को समझा-बुझा कर लम्बी लिस्ट रद्द

केरवा गनो तो मेरे बापू-बाई आपका यह एहसान मृत्युपर्यन्त नहीं भूल पायेंगे।

जब आप यह पत्र पढ़ रहे होंगे तो आपके अन्तर्मन में यह बात बार-बार बिजली की भांति चमकती रही होगी कि इनके यानी जीवन-संगिनी का प्रथम पत्र 'प्रेम-पत्र' होना चाहिए, यह 'दर्द-पत्र' नहीं। परन्तु मेरे भविष्य के रास्ते को चमकाने वाले सहयात्री जरा इतना तो सोचो कि जब आपकी सहचरी दर्द के तालाब में डूबती जा रही है तो वह 'प्रेम-पत्र' लिखे भी तो किस हाथ से।

आपकी,
पवन

...फिर वह उसके पत्र से नाराज हो भी जायें तो क्यों कर...? सिर्फ एक विनम्र निवेदन ही तो किया है उसने...! कोई कटु शब्द तो प्रयुक्त किया नहीं है...! विचारों की शृंखला के बीच, पास ही हिंगलाज माता के मन्दिर में हो रही आरती से वह सवेरे के दस बजने का अनुमान लगा लेती है।

वह सारे कपड़ों को सुखाने के लिए अरगनी पर फैला चुकी है। फिर अपने भीगे बालों को टॉवेल पर धुली-भीगी सुखाकी रिबन से बांधती है। भोजन बनाने के बाद बालों में सरसों का तेल डाल कर एक चोटी बना लेगी और और फिर खाली बाल्टी लेकर फुर्ती से जीना उतरने लगती है।

बाल्टी बाहर चौके में ही एक आले में औंधी रख देती है और फिर रसोई में आकर वह खाना बनाने लग जाती है...। जब वह तवे पर अन्तिम रोटी सेंक रही होती है तो बाहर सड़क पर डाकिये के मुख से पड़ोसी का नाम सुनकर वह फुर्ती से रोटी को तवे से उतारकर रसोई से बाहर आकर देखती है कि बाई घर की दहलीज पर खड़ी है। वह पुनः रसोई में आ जाती है, और फिर घी-लोटी लेकर रोटियां चुपड़-चुपड़ कर पीतल के डिब्बे में रखती है। उसका पत्र होगा तो डाकिया बाई को दे ही जाएगा, यह सोचते हुए वह तवे को चूल्हे से उतारती है। फिर लकड़ी के बड़े-बड़े अंगारों को चलनी से भर-भरकर हांडी में डालती है। फिर हांडी के मुंह पर ढकनी रख देती है। इस प्रकार जो कोयला बनेगा, वह दूसरे दिन सवेरे की चाय बनाने के लिए सिगड़ी में काम आएगा। तभी बाई आकर उसे एक लिफाफा पकड़ा जाती है, "तेरे नाम से आया है।"

रसोई से बाहर आकर वह लिफाफे को खोलने लगती है। खोलते-खोलते सहसा वह मन-ही-मन कह उठती है हो न हो यह उनका पत्र ही है। बाई बाहर चौके में गेहूं बीनने बैठ जाती है, और वह भी बाई के पास ही आकर, खड़ी-खड़ी लिफाफे के भीतर से पत्र निकालकर, बांचने लगती है। अभी वह

महज ''विश्वासी पवन !'' सम्बोधन ही पढ पाती है कि गेहू बीनती हुई बाई पूछने लगती है, ''किसकी चिट्ठी है ?''

''निर्मला की···।''

''कौन निर्मला ?''

''मेरे साथ पढती थी न !''

''क्या लिखा है ?''

''उसका ब्याह है । मुझे बुलाया है ।'' वह अपनी बाई को क्या जवाब दे और क्या न दे, इस ऊहापोह मे पडने की बजाय तपाक से किसी बहाने का अवलम्ब ले लेती है ।

''अच्छा, तो तू जाएगी क्या ?''

''ऊ हू·· !''

' तो कोई भेंट तो भेज दे डाक से···।''

''देखेंगे ।'' कहकर वह रसोई की तरफ बढने लगती है ।

''रसोई मे आकर पत्र पढने लगती है—

विश्वासी पवन !

तुम्हारा पत्र परसो दुपहर मे कालेज के केण्टीन मे चाय पीते वक्त मेरे मित्र से प्राप्त हुआ । लिफाफे के आगे-पीछे भेजने वाले का नाम व पता नही देखा तो मैंने लिफाफे पर डाकघर की अंकित मोहर देखी । तुम्हारे गाव की मोहर देखकर मैंने अनुमान लगा लिया कि हो न हो, पत्र तुम्हारे ही घर से भेजा गया है । इसीलिए मैंने लिफाफा कालेज मे खोला ही नहीं । क्योंकि भीतर कही तुम्हारा पत्र हो और मैं पढने लगू तो आस-पास खड़े यार-दोस्तो की नजरें पत्र पर अटक ही जाती और वे मुझे यह भी कहने लग जाते कि यार, किसका लव-लेटर है । इस झझट से बचने के लिए पत्र पैंट की जेब मे ही रख लिया ।

दुपहर हो चुकी थी । अगले पीरियड कोई खास थे नही । मैंने सोचा, होस्टल मे अपने कमरे पर जाकर पढ लिया जाए, और मैं अपने सब्जेक्ट लेक्चरार से पूछकर पेट-दर्द के बहाने कमरे पर चला आया ।

पत्र खोला तो कोई तारीख-वारीख और न ही कोई सम्बोधन ! सीधी मुद्दे की बात लिख मारी तुमने ! ''क्या सम्बोधन लिखू और क्या न लिखू !'' इस ऊहापोह मे कुछ नही लिखना ही तुमने बेहतर समझा होगा । वैसे इन दिखावटी सम्बोधनों मे है ही क्या ! वैसे तुम मेरी तरह 'मेरा नाम' लिख सकती थी । परन्तु तुमने अभी से लिखना अपना अधिकार नही समझा ! क्योकि नियति के कई खेल हैं । बनता नही हजारो मे एक काम, लेकिन बिगडते कदम-कदम पर हैं । इसीलिए तुम्हारे अन्तर की सौंन पर अपने सम्बन्ध विच्छेद

हो जाने का भय पसरता जा रहा है। पर मैं तुम्हे बगैर किसी लाग-लपेट के स्पष्ट कर दू, तो वह यह है कि मैं अपने मा-बाप की बात के खिलाफ कभी नही चलूगा। क्योकि वे मुझे आज इजीनियरिंग की शिक्षा दिला रहे हैं। यह अन्तिम वर्ष है। ईश्वर ने चाहा तो अगले वर्ष मैं सर्विस मे भी आ जाऊगा। तब क्या अपने माता-पिता का मुझ पर कोई अधिकार नहीं होगा…? इस वक्त *मैं उनकी खिलाफत करू तो गाव वाले मुझ पर थूकेंगे नही क्या…?* जिनकी बदौलत मैं अपने पैरो पर खड़ा होने वाला हू, उन्ही की बात का गला घोटू तो किन हाथो से!

वैसे मैं तुम्हारे पत्र का आशय समझ गया हू। तुम चाहती हो कि मैं अपने मा-बाप को समझा-बुझाकर तुम्हारे घरवालो के पक्ष मे खड़ा कर दू। यानी अपने मा-बाप के सपनो की अर्थी निकालकर मैं तुम्हारा हाथ थाम लू। पर मुझ से ऐसा हरगिज नही होगा। मैं मानता हू कि दहेज लडकियो के लिए अभिशाप है। मुझ जैसे अच्छे पढे-लिखे युवको को चाहिए कि वे इसका विरोध करें। लेकिन तुम्ही बताओ, जिन्होने आज हमे पढा-लिखाकर धन्धे के लायक बनाया, उन्ही का विरोध हम किस मुह से कर सकते हैं?

मैं तुम्हारे घर के हालात से अनभिज्ञ नही हू। पर मैं भी मजबूर हू। अपने ही मा-बाप की बात को मैं कैसे काट सकता हू! परन्तु तुम पर मुझे थोडा रहम आता है कि तुम उम्र की बीसवीं सीढी फलाग चुकी हो। कही ऐसा न हो कि मेरे पिताजी तुमसे रिश्ता तोड लें और तुम बदनाम सडक पर चलने के लिए बाध्य हो जाओ। इसीलिए एक बात मैं अपने मन मे सजो पाया हू कि तुम्हारे बापू मेरे पिताजी की बात को मान लें। फिर सवाल यही रहेगा कि सारी सामग्री जुटाई कैसे जाए… ? तो इनका बन्दोबस्त किसी भी तरह किया जा सकता है । यानी माँ के जेवर या घर का पट्टा गिरवी रखकर… क्योकि कैसे भी पहले तो तुम्हारे घरवालो को मेरे पिताजी और मा की बात माननी ही होगी…। लेकिन तुम विचार रही होगी कि इससे तो घर कर्ज मे डूबा ही रहेगा। घरवालो की स्थिति बदतर हो जाएगी। परन्तु नहीं… वह सारा कर्ज एक-डेढ साल मे चुक जाएगा । शायद तुम सोच रही होगी कि वह कैसे…! तो तुम जानती ही हो कि यह अन्तिम वर्ष है। अगले वर्ष सर्विस मे आ ही जाऊगा। ईश्वर की मेहरबानी से तनख्वाह भी अच्छी ही होगी। कुछ रुपये प्रतिमाह तुम्हारे बापू को भी हम भेजते रहेगे। इस प्रकार उनका कर्ज एक-डेढ साल के भीतर-भीतर चुक जाएगा। आई न बात तुम्हारे दिमाग मे! मेरे माता-पिता की इच्छा भी पूर्ण हो जाएगी और तुम्हारे बापू-बाई का काम भी बन जाएगा।

लेकिन मैं सोच रहा हूं कि मेरी यह बात तुम्हारे घरवाले मानेंगे भी या नही···क्योकि उनके दिमाग मे यही बात घूमती हो कि बेटी का माल कौन खाए···! खैर, छोड़ो इसे ! आखिर तुम मेरी यह बात अपने बापू-बाई मे किसी भी तरह मनवा ही लोगी तो हम भविष्य मे बेतनाव की स्थिति में प्रसन्नचित्त अपने गतव्य की ओर बढते जाएंगे।

तुम्हारा,
प्रवीण

···यह क्या लिख दिया उन्होने···! कितनी सहानुभूति है उनमे उसके प्रति। उसके अन्तर्मन मे सहसा उनकी तस्वीर चित्रित हो जाती है। वह जीवन-सगिनी बनकर भी मृत्युपर्यन्त उनके इस उपहार को भूल नही पाएगी···।

टोगड़ा बिका नहीं !

□ श्याम मिश्र

कुछ वर्ष पूर्व चतुरगढ मे सेठ गब्बरराम जी अपनी बैठक मे सुसता रहे थे कि इतने मे पडौस के एक गाँव से उनके समधी आ गये ।

आते ही वे बोले, "जय रामजी की सा ।"

"जय रामजी की शाह जी", प्रत्युत्तर मे सेठजी ने कहा ।

दोनो तरफ से पारिवारिक कुशल-क्षेम पूछने के बाद सेठ जी ने अपने समधी की पूरी आव-भगत की । गाँव वाले सेठ जी अपनी पुत्री के सबध के लिये स्थानीय सेठ घमण्डीराम जी के लडके से सगाई की बात पक्की करने अपने समधी को साथ ले गये ।

सेठ घमण्डीराम की हवेली पर पहुँचते ही उन दोनो लक्षाधीशो को सादर बैठाया गया । उपहार (जलपान) के लिये आग्रह किया गया, लेकिन उन दोनो ने लडकी पक्ष का बहाना बनाकर इन्कार कर दिया । बाद मे उन्होंने सबध की बात पक्की करने के लिए सेठ घमण्डीराम को अपनी माँगें रखने के लिये कहा ।

इस पर धन्ना सेठ अपनी बाँछे खोलते हुए बोले, "देखिये शाहजी, हमारे लाडले को डॉक्टर बनाने मे लगभग बीस हजार लगे हैं और वह एक अलग बगले मे रहकर उसी के नीचे वाले हिस्से मे अपना क्लीनिक खोलना चाहता है, सो इसके लिए एक लाख रुपया कम-से-कम चाहिए । डॉक्टर की मान-प्रतिष्ठा के लिए एक कार भी चाहिए ।"

यह सुनकर गाँव वाले सेठजी व्यग्य से बोले, "शाह जी और कोई फरमाईश ।" अरे भई, "जब आप समधी होने ही जा रहे हैं तो आपसे क्या

लुकाव-छुपाव ? सिर्फ पचास हजार का दहेज दे देना।" कुछ अस्पष्ट वाणी मे घमण्डीराम ने फरमाया।

"यह तो मात्र दो लाख बैठते हैं।" तीखा कटाक्ष करते हुए गाँव वाले सेठजी बोले, "इनके अलावा और कोई आपकी माँग बाकी है तो बता दीजियेगा।"

"बस इतनी-सी हमारी माँगें हैं," अपनी गर्दन को हल्की-सी मोडते हुए घमण्डीराम ने कहा।

इस पर गाँव वाले सेठजी बोले, 'शाहजी एक जरूरी खर्चा जो हमारी ओर मे लगना चाहिये, वह तो आप भूल ही गये।"

"बोलिये, बोलिये, खुशी से आप ही बोलिये," पालथी मारते हुए सेठ घमण्डीलाल ने उत्सुकता प्रकट की।

"कान खोलकर सुनिये, जब कँवरजी को सौ वर्ष पूरे हो जायेंगे, तब कफन-काठी और लकडी की आवश्यकता होगी। वह खर्च भी हमारा ही लगना चाहिये," आगाह कराते हुए गाँव वाले सेठ जी बोले।

घमण्डीराम सेठ उठकर क्रोध मे नथुने फुलाते हुए बोले, "ओ गाँव के गँवार बनिया तुम्हे शर्म नही आई कि विवाह-सबध की बात मे कफन-काठी की बातें करता है।"

"ओ शहरी डाकू ! तुम्हे जरा भी लज्जा नहीं आई कि अपने लडके को 'बिकाऊ टोगडा' बना लिया और उसका जन्म से लेकर मरण तक का मोल-भाव कर रहा है," तुनक कर गाँव वाले सेठ जी बरस पडे।

गब्बर सेठ ने बीच-बचाव करके दोनो को शान्त किया तथा वही सबध की बात टूट गई।

कविता की कहानी

□ मगर चन्द्र दवे

नियमित रूप से कालांश बदला। मास्टरजी कक्षा मे पहुँचे। परन्तु वहाँ जाने पर उन्हें लगा कि आज किसी बालक का पढने का 'मूड' नही है। बालको ने सोत्साह मास्टरजी से कहा—सर! आज तो उस दिन की तरह कोई अच्छी सी कहानी सुनाइए न! कहानी सुनने मे बडा मजा आता है, सर!

सर ने भी वातावरण का पूरा फायदा उठाना चाहा। उन्हे आज कक्षा मे 'मचल गया दीना का लाल' कविता पढानी थी। उन्होने सोचा, क्यो न इस कविता को कहानी का जामा पहिना दिया जाए? कहानी की कहानी और शिक्षण का शिक्षण। उन्होंने अपनी बात की शुरुआत इस प्रकार की—

जिस तरह तुम लोग आज मुझसे कहानी की फरमाइश कर रहे हो उसी तरह एक बार एक बालक ने अपनी माँ से कहानी सुनाने की जिद की थी। उसने इस प्रकार कहा था—

> कह माँ एक कहानी·· ···
> क्यो रे—समझ लिया तूने क्या
> मुझको अपनी नानी?
> नानी! नही-नहीं माँ—
> मुझसे कहती थी वह चेटी
> तू मेरी नानी की बेटी—
> कह माँ कह लेटी ही लेटी
> राजा था या रानी·· ···?

और फिर माँ ने एक राजा था—उसके एक रानी थी·· ···कहानी

सुनाई थी। १२ में आपको आज एक दूसरे प्रकार की कहानी सुनाऊँगा।

एक बार दीना नाम की एक भिखारिन अपने नन्हे शिशु को छाती से चिपकाए भीख माँगने निकली। भीख माँगते-माँगते वह थक गई और एक पेड़ के नीचे बैठकर सुस्ताने लगी। पास ही मे उसका नन्हा-मुन्ना अपने मिट्टी के खिलौने मे खेल रहा था। अचानक उसकी नजर सामने के राजमहल में खेल रहे शिशु राजकुमार पर पड़ती है। वह एक चमकीले खिलौने मे खेल रहा था। भिखारिन के बच्चे को शिशु राजकुमार का खिलौना मन को भा गया। माँ से उसने जिद की कि वह उसे उस खिलौने को ला दे। वह उसी चमकीले और सुन्दर खिलौने से खेलेगा। यह कहकर वह फूट पड़ा।

दीना बहुत दुखी हो उठी। सोचकर बताओ वह दुखी क्यो हुई? (बालक यहाँ कुछ भी उत्तर दे सकते हैं। अध्यापक को यहाँ विशेष रुकना नही है तथा जो भी उत्तर मिलता है—उसी मे सशोधन कर उसे आगे बढना है। कारण, यहाँ प्रश्न उत्तर पाने के लिए नही वरन् बालकों की एकाग्रता की जाँच करने हेतु किया गया है।)

हाँ, तो वह दुखी इसलिए हुई कि वह चमकीला खिलौना सोने का था। दीना गरीब थी अत वह अपने बालक को सोने का खिलौना खरीदकर देने मे असमर्थ थी। वस्तुत वह विवश थी और इधर दीना का लाल लगातार रोए जा रहा था।

इधर राजमहल मे उस शिशु राजकुमार के साथ और ही घटना घटती है। शिशु राजकुमार की दृष्टि सोने के खिलौने से खेलते समय दीना के लाल के खिलौने पर जा टिकती है। उस मिट्टी के खिलौने के प्रति उनके मन मे एक विशेष आकर्षण—एक विशेष अनुराग उत्पन्न हो उठता है और वह मिट्टी के खिलौने को लेने के लिए रो पड़ता है।

शिशु राजकुमार के रोने से सारे राजमहल मे एक हलचल-सी मच गई। सभी यह जानने का प्रयत्न करने लगे कि आखिर बालक राजकुमार क्यो रोया?

बालक राजकुमार ने जब बताया कि वह तो उस भिखारिन के खिलौने से ही खेलेगा। यह सुनकर दास-दासियाँ, नौकर-चाकर सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

सोचकर बताओ ऐसा क्यो हुआ? दीना तो गरीब थी। उसके पास इतना पैसा नही था कि वह अपने बेटे की इच्छा पूरी करने के लिए सोने का खिलौना खरीद पाती। परन्तु, शिशु राजकुमार के लिए तो मिनटो मे ढेर सारे मिट्टी के खिलौने इकट्ठे किए जा सकते थे? पर ऐसा क्यों नही किया गया? (उत्तर कुछ भी हो सकता है।)

हाँ, तो तुम समझ गए कि राजघराने का अपना एक विशेष बड़प्पन का

भाव होता है कि एक राजा का लडका मिट्टी के खिलौने से कैसे खेले ? लोग क्या कहेंगे ? राजा का बच्चा मिट्टी के खिलौने से खेलने पर राज-परिवार की प्रतिष्ठा, उसके गौरव पर आँच आती···।

पर तुम यह भी जान गए होगे कि बालक कितने निष्कलक होते हैं ? उनमे नाममात्र का भी दिखावा अथवा बडप्पन का अथवा ऊँच-नीच का भाव नही होता। हम लोग ही उसे इन सब बातो से परिचित कराते हैं···? ब्राह्मण है··· मैं क्षत्रिय हूँ·· वह चमार है अत उसका कुल नीच है· 'आदि।

एक बात और तुम जान ही गए होगे—वह है बालहठ। बालक जब किसी बात को पकड लेते हैं तो फिर आसानी से व उस छोडते भी नही।

और तुम लोग भी अभी शिशु ही हो। थोडे बडे हो अत बडे शिशु कहे जा सकते हो। तुम किस बात की हठ ले रहे हो · ? मेहनत कर परीक्षा मे ईमानदारी से अच्छे अको से उत्तीर्ण होने की न ? परिश्रमी और चरित्रवान बनने की न· ?

आज मास्टरजी और कक्षा को, दोनो ही को अपनी-अपनी उपलब्धियो पर सतोष था।

नया सायबान

□ गुलाम मोहम्मद 'खुर्शीद'

मैं पिछले तीन दिनो से अपने गाँव मे हूँ। लगभग पाँच वर्षों बाद लौटा हूँ मैं। पाँच वर्षों तक शहर मे अध्ययनार्थ रहा था। लगातार तीन वर्षों तक परीक्षा मे अनुत्तीर्ण रहने के कारण मुझे लौट आना पडा। लौटता नही भी तो करता क्या शहर मे ? बापू ने पत्र मे स्पष्ट लिख दिया था, "अब मैं आगे पढाने मे असमर्थ हूँ। तुम गाँव लौट आओ। यहा सारा कार्य अस्त-व्यस्त पड़ा है। बड़े भैया भी अब अलग हो गये हैं। खेत सभालने के लिए कोई नही रह गया है। मैं तो बूढा हो चला हूँ अब, आगे पढाऊँ भी तो कैसे ?..."

पत्री पढते ही मैं काप सा गया था, उस समय। एक साथ अनेक विचारो का गूढ सा जाल रच गया था मेरे मस्तिष्क मे।...क्या फिर खेत मे वैसे ही कार्य करना पड़ेगा मुझे, जैसे पाँच वर्ष पहले किया करता था ? इस विचार के आते ही बिजली सी कौंध गई थी। नगे बदन, नगे पैर, तेज धूप, गर्म लू, बजती डाफर, शीत लहर की ठण्डी हवा, उडती धूल, बरसता पानी आदि अनेक बाधाओ से जूझते हुए, वही खेत, वही हल और वही बैल । मुझे अपने सपनो का ससार टूटता सा प्रतीत हुआ, ठीक वैसे ही जैसे हाथ से छूट कर शीशा चटकता है।

कितने सपने सजोये थे मैंने शहर जाते समय ! कठिन परिश्रम से पढ-लिखकर अच्छा डिवीजन प्राप्त करूँगा, फिर अच्छे से पद पर नौकरी करूगा। यही आशाए थी मुझ से मेरे घर वालो को भी।

किन्तु उसमे दोष मेरा ही था। शहर जाकर लापरवाह हो गया था मै। तभी तो निरन्तर असफल होता रहा। शहर का वातावरण

था ''। इतने पर यदि बापू पढ़ाने का साहस भी करते तो कैसे ? पीछे खेतों पर काम करने के लिए अब कोई जवान खून नहीं रह गया था। बड़े दा तो अपना हक ले ही चुके थे।

रात अधिक हो चली थी। मस्तिष्क में विचारों की उपज उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। एक तूफान सा उठ गया था मेरे विचारों में। विचारों की उधेड़बुन में नींद आँखों से कोसों दूर थी। अतीत की यादें कसक बन कर हृदय में चिह्न छोड़ रही थीं।

खैर छोड़ो, होना था सो हो गया जो कुछ होना था। अब क्या फायदा गड़े मुर्दे उखाड़ने से। अब तो शहर छोड़ दिया गाँव को आ गये हैं। कुछ अजीब सा ''कितना बदल गया है गाँव भी, इन पाँच वर्षों में ! शहर गया था तब कच्ची सड़कें थीं, झोपड़ियों के सामने घास-फूस से निर्मित सायबान तने थे। और अब ' अब उनका स्थान पक्की सड़कों एवम् नये सायबानों ने ले लिया है।

मुझे याद है अच्छी तरह से वे दिन बचपन के दिन ! उन दिनों की उज्ज्वल स्मृति मेरे मानस पटल पर अभी तक छाई हुई है। घास-फूस के बने सायबान की छाँव में ही बीता है मेरा बचपन। रात्रि में सायबान के नीचे बैल बंधते थे और अब भी बंधते हैं। बैलों की रक्षार्थ रात्रि में बापू सायबान के नीचे ही सोते थे, अपनी टूटी हुई खटिया पर जिस पर बिछी होती एक फटी सी गुदड़ी, और ओढ़ने को पुराना लिहाफ ! शरद गरम वायु के थपेड़े उनके क्षीण शरीर को काटते रहते किन्तु उसी परिस्थिति में रात बीतती।

सूर्योदय से पूर्व ही बापू बैलों को ले खेत पर चल देते, तो हम बहन-भाई सायबान के तले खेलते रहते। सन्ध्या होते ही बैल अपना स्थान पुन ले लेते और बापू का वही डेरा होता। हम झोपड़ी में सोते थे।

बरसात की रात तो जैसे कयामत की रात होती। बापू सायबान छोड़ झोपड़ी में आ जाते। बैलों को तिरपाल ओढ़ाकर भीजने से बचाया जाता। बैलों को रात खड़े रहकर ही काटनी पड़ती। झोपड़ी में भी पानी टपकता रहता और रात जागते ही बीतती।

जब से आया हूँ, तीन रातें हुई हैं मुझे इसी नये सायबान के नीचे सोते हुए। सायबान में कोई विशिष्ट बात नहीं है अन्तर इतना ही है कि वृक्ष के तनों एवम् मजबूत डालियों के स्थान पर लोहे के गोलाकार पाइप लगा दिये गये हैं, ऊपर जहां पहले घास-फूस बिछा था, अब लोहे की सफेद चद्दरें तनी हैं, इस शैड को गाव वाले सायबान ही कहते हैं। नया सायबान !

मेरी ये तीन रातें तो जागते हुए ही बीती हैं। विचारों के उठते हुए बवण्डर नींद को भी अपने संग उड़ा ले गये थे। यदि सोने की असफल चेष्टा

करता भी तो नया सायबान नीद मे बाधक हो जाता। शहर मे होस्टल जैसी सुविधाए कहां हैं यहा ? नही मही सुविधाए। शहर मे रहने से आराम तलबी की बुरी लत जो लग गई है, वह तो अब छूट ही जाएगी, लेकिन आज की रात···? कौन कह सके आज की रात कैसे बीते ? निरन्तर तीन रातें नीद न आने से आँखें भी बोझिल हो गई हैं। आज की रात भी सोने के लिए वैसा ही कुछ असफल प्रयास कर रहा हूँ। आँखें तरस गई हैं नीद को।

कैसी समस्या है यह ? इस नये सायबान के तले तो सोना दूभर ही हो गया है। नया सायबान सुविधा की दृष्टि से लगाया गया था लेकिन परिणाम तो विपरीत ही निकला है। लोहे की चद्दरो पर क्रीडा करते हुए जानवरो ने परेशान कर दिया है। कल रात आंख लगी ही थी कि दो बिल्लियो की झडप ने सहज ही जगा दिया। एक बारगी भगा दिया, तो कुछ समय बाद फिर वही युद्ध। लोहे की चद्दरो पर उनका उछल-कूद कर लडना और म्याऊँ म्याऊँ की आवाज नीद कैसे लेने देती ? आज·· आज ?·· आज ये कुत्ते चैन ही नही लेने देते। मृत पशु की हड्डी उठा लाए हैं कही से और बटवारा हो रहा है इसी सायबान की छत पर। महाभारत रचा रखा है इन्होने। कुत्तो एवम् चद्दरो की अप्रिय कर्णभेदी आवाज, लगता है कोई शूलें चुभो रहा हो।

क्रोध का बादल उमड पडता है अन्त म। विचार आता है—"इस नये सायबान को ही हटा दें।" पशुओ से निपटना अपने बस मे नही। बिन बुलाए मेहमान हैं ये तो, जैसे तैसे भगा भी दें तो कुछ समय पश्चात् फिर ··फिर वही युद्धारम्भ।

जाए भी तो कहा ? अन्यत्र शरण लें भी तो कहा जाकर ? अब तो रोज ही सायबान के नीचे सोना है। कुछ समय पश्चात् अभ्यस्त हो जायेंगे, जैसे अन्य ग्रामवासी अभ्यस्त है। फिर समस्या स्वत ही हल हो जाएगी। तब न तो सायबान हटाने का विचार आएगा और न ही कुत्ते-बिल्लियो पर खीझ एव क्रोध।

···फिर सोचता हूँ, बडे दा के अलग हो जाने से घर के सहारे का एक तो सायबान हट ही चुका है। बापू जैसे घास-फूस से निर्मित पुराने सायबान प्रतीत होते हैं। और मैं ··नये सायबान के रूप मे इस घर पर तनता जा रहा हूँ।

घुटन

□ नमोनाथ अवस्थी

मेरी बहिन सन्यासिन हो गयी !

अब मेरी उम्र चौबीस साल !

मैं ईसाई हो गया !

मेरा नाम—

मेरा नाम—हैक्टर हैराल्ड !

बहन का नाम''' ''शायद '''''

माँ महामाया''' ।

उसकी उम्र का अब कोई पता नहीं !

—लेकिन यह आप मुझसे क्यों पूछ रहे है। और फिर मुझ से परसों के लिए आने को कह दिया। हर बार परसों ! ओफ्फ !

परसों मैं और ! मैं और मेरी बहिन !!

जैसे लगता है—ये लोग मुझे नौकरी नहीं देंगे—भीख देंगे।

जब भी प्राइवेट—स्कूलों में गया हूँ—तो खाल इस तरह खींची गयी है जैसे मरे पशु की खाल को गिद्ध चोंच मार मार करके खींचते हों। फिर यहाँ तो लगता है—ये लोग मेरी खाल को सिर्फ खींचेंगे ही नहीं ठीक मेरे सामने ही आँखों के आगे टटका देंगे और मुझे बार-बार ये लोग ये दिखाते—रहेंगे कि देखो अपनी खाल को और पहिचानो कि किस तरह खाल खींची गयी, और पहिचानो कि खींच कर किस तरह लटकायी गयी है अन्यथा तो मेरी बहिन के संदर्भ यहाँ क्यों उठाये जाते हैं ?

परसों तीसरा इन्टरव्यू है और मैं जानता हूँ सत्यापन फिर वही प्रश्न पूछेगा।

क्या कुछ पुरानी बातें और याद आयी?

क्या बहिन का पता कुछ बता सकते हो?

क्या अपनी बहिन को पहिचान सकते हो?

तो ऐसा लगता है कि एक बार ग्रेजुएशन की डिग्री को फाड़कर जूतों की ऐडी से कुचल डालूँ और बी० एड० के कागजों की पोंगरी बनाकर सिगरेट सुलगा लूँ।

और इन लोगों से सीना खोल कर कह दूँ।

मेरे कोई बहिन नहीं है। मुझे नौकरी नहीं चाहिए। मुझे तुम्हारी दया भी नहीं चाहिये। मुझे तुम्हारा यह स्कूल भी नहीं चाहिये। लेकिन तभी लगता है—ये शब्द तो बहुत पुराने हो गये हैं। और हर बार हर स्कूल में घुमा-फिरा कर यही शब्द इतनी दफे कहे जा चुके हैं कि अब मेरे लिये इनका अर्थ खतम हो गया है—अब मुझ में यह आत्मविश्वास भी नहीं कि इन्हीं शब्दों को फिर एक बार आँखें लाल करके बाँह की मसल्स को ऐंठ करके-जबर्दस्ती के साथ कह सकूँ। नहीं · · नहीं······अब यह नहीं कहूँगा।

कोई मायने भी नहीं है अब इन्हीं बुगद शब्दों को—बार बार दोहराने से।

तो ठीक है। अब एक और भाषा बोलूगा।

कहूँगा—जी। मेरी बहिन बड़ी खूबसूरत थी—खुशनुमा थी। नीली नीली आँखें थी उसकी। और शरीर इतना कोमल कमजोर था कि अब टूटा—अब टूटा।

और कहूगा—मैं आज भी उसे खूब पहिचान सकता हूँ। जैसे ही आप मुझे नौकरी देंगे मैं पूरा प्रयत्न करूँगा कि उसे ढूँढकर मेरे पास ला सकूँ। और आप विश्वास करिये मैं उसे अवश्य ही ढूँढ लूगा। वह ज्यादा से ज्यादा वृन्दा-वन में होगी। ऋषिकेश में होगी। हरिद्वार में होगी। नाथद्वारा में होगी कहीं भी तो होगी। मैं अवश्य उसे ढूढ लूँगा।

और तब वे लोग नौकरी दे देंगे। क्योंकि वे जान जायेंगे कि मैं अपनी सम्पूर्ण खाल खिंचाकर लटकाने के लिये खुशी खुशी सहमत हूँ।

शाम उतर आयी है।

और ट्रैफिक मक्खियों की तरह भिनभिना रहा है। आदमी जंगल हो गये हैं। और सूने एकान्त का कोई छोटा सा झरना यहाँ ढूँढना बड़ा मुश्किल है।

अपने पिता यीशू को याद करने का टाइम हो आया है। कहाँ जाऊँ। कहीं भी तो अकेलापन नहीं है। हर तरफ लगता है आदमी नहीं हैं—लंबे लंबे

चीड के वृक्ष हैं। और उनके ऊपर उल्लू बैठे हैं—ढेर के ढेर। आँखें टिमकाते हैं।

सामने की होटल में जाता हूँ।

देखता हूँ—सम्पूर्ण होटल में क्या कहीं अँधेरे का हिस्सा है ? कोई कोना ऐसा है—जहाँ आदमी इत्मीनान से नंगा होकर बैठ सके। औपचारिकताओं के गहनों ने आदमी की खाल कितनी छील दी है। ओफ्फ !

—ओफ्फ ! माफ करना सर ! मेरा ध्यान नहीं था। प्लीज एक्सक्यूज मी।—

आपकी चाय फैल जाने के लिये —मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ।···

—शर्मिन्दा नहीं ! हैक्टर ! ···और मेरे कान एकाएक चौंक कर खड़े हो जाते हैं—ठीक इस तरह जैसे आवारा पशु के एक कान को पकड़कर दूसरे कान पर इन्जेक्शन लगाया जा रहा हो।

और तभी मुझे हाथ पकड़कर बैठा लिया गया। एक धीमी-धीमी मुस्कान के साथ। ओफ्फ ! मेरे पिता ! मेरे यीशु !

ओफ्फ !······थैंक्यू सर। लगा जैसे फिर इण्टरव्यू शुरू हो जायेगा। सत्यापक महोदय का इस तरह से चाय घर में अनौपचारिक रूप में मिलना। मन कहता है— बेटे ! फिर ध्यान को ढीला छोड़ दो—और अपने आप को चमड़ी से एकदम अलग कर लो। दोनों हाथ जोड़ लो और मस्तक को आधा नीचा झुका लो। तभी उनकी आवाज आयी—

"हैक्टर ! कहाँ ठहरे हो ?"

"जी धर्मशाला में !"

"कौन सी में ?"

"—जी। सेठ विश्वनाथ बालू राम······"

और तभी बैंयरा चाय टेबुल पर रख जाता है। कमाल है बिना किसी आर्डर के इतनी जल्दी सप्लाई।

सर ! मैं चाय नहीं पिऊँगा। तभी दूसरी टेबुल से बैंयरा आया और चाय उठा ले गया—शायद उसने सुन लिया हो।

ठंडा लाऊँ—बाबूजी !

नहीं मैं ठंडा भी नहीं पिऊँगा ! सर ! मैं तो ऐसे ही जरा सुस्ताने आ गया था।······सत्यापक महोदय ने सिग्रेट जोड़ ली। और मुस्कराते हुये बोले···खैर ! तुम्हारी मर्जी है।

आज कहीं पिक्चर तो नहीं जाओगे ?

नहीं तो सर !

मैं दस बजे धर्मशाला आऊँगा। क्या मिलना पसंद करोगे ?

क्यों नहीं ! क्यों नहीं !

और मैं जरा जल्दी म हूँ—कहकर गरधापव महोदय हाथ मिलाकर चल गये। एक सैकिंड म लगा—होटल की भरी हगची चाय मेरे सारे शरीर के ऊपर फैल गयी है और सारे शरीर पर—चमडी पर बड-बडे फफोल उभर आये हैं।

अपने शरीर की खाल को इत्मीनान स देखता हूँ—आश्वस्त होता हू कि खाल है अभी—शरीर पर। खीची नहीं गयी ह।

पर तभी ध्यान आता है—दस बजे !

ठीक है—दस बजे सही। यह तो एक न एक दिन उतर जानी है—शरीर से। और तभी मैं कल्पना करता हूँ—वह कितना अच्छा मौका होगा—जब निर्भार होगा—मेरा शरीर बिना चमडी के। कितना हल्का फुल्का-और उसकी जगह हाथ म हगि सौ-सौ क दो-तीन नोट। आवारा पशु की तरह स भटकता भटकता होटल स निकल कर धमशाला म आ जाता हूँ।

एक और कैदी

□ रमेशचन्द्र शर्मा

मैं आज भी प्रात काल नियमित रूप से अपनी छत पर खडा हो उगते हुए सूर्य और उसकी सुदूर पूर्व म क्षितिज मे फैली लालिमा को निहारता रहता हू। वही पक्षियो का कलरव मन्द-मन्द बहती बयार, पशुओ की रम्भाह और पास के मदिर की फहराती ध्वजा, सब कुछ वही तो है। लेकिन इस वातावरण को अपने मधुर स्वर से अनुगूंजित कर देने वाली वह आवाज, "प्रभू जी म्हारा बन्ध छुडाज्यो सा" अब सुनाई नही पडती।

हरिया प्रात ही सूर्योदय से पूर्व ठाकुरद्वारे आता। रास्ते की सफाई करने के साथ ही पडे हुए पत्थरो को हटाता और तब मदिर की देहरी पर हाथ जोड "जय हो प्रभू" कहता हुआ अपना सिर टेक देता। साथ ही—"भगवान! सबका भला करज्यो! दाल रोटी दीज्यो! !" कहता हुआ सबकी मगलकामना करता। फिर तन्मय हो गाता हुआ घर घर सफाई करने चला जाता।

मैं मुग्ध हुआ विस्मय के साथ उसका ईश्वर के प्रति अटूट प्रेम, निश्छल अनुराग और राग-द्वेषता से परे जीवन दर्शन देखकर अवाक् रह जाता।। सोचता, कितना लगाव है इसे अपने कार्य से, कितना सतोष है जीवन मे। क्या मागता है बदले मे ईश्वर से, समाज से। लोग एक अगरबत्ती जला कर माला फेरने के बदले या फिर एक मुट्ठी चुग्गा डालने के बदले प्रतिदिन क्या-क्या याचनाएँ करते हैं ?—बेवी……कार…बगला … · सर्विस……चुनाव मे जीत……और न जाने क्या क्या!

यदा कदा जब मैं दिखाई पड जाता तो वह देखते ही हँस कर कहता—

"मास्टरजी ! जयराम जी की।" और अपने दोनो हाथ उठाकर माथे से लगा लेता। पूछता—"ठडी ठडी हवा लेर्‌या हो।"

मैं कहता "हाँ भई"। और बदले मे कुशल-क्षेम पूछता हुआ कहता हूँ—"कहो भई हरिया क्या हाल चाल हैं ?"

वो हसकर कहता "बस, सब ठीकठाक है साब। क्रिपा है तुम मिलाऊं बडा आदमीन की। लगर्‌या है दिनन कैं धक्का"।

"नही भाई, ईश्वर की दया चाहिये" मैं बदले मे कहता। फिर या वो या मैं चल देते।

आज उसके 'बडो की क्रिपा' और दया के शब्द गर्म पिघले शीशे की तरह कानो से पार होते हुए हिये म प्रवेश कर पीडा दे रहे हैं जिसने उसे तीन वर्ष की सश्रम कारावास दिला दी। यही कृपा है बडो की ? यही दया है उनकी ··? कितना व्यग लिए है उसके शब्द हम बडो पर।

पिछले तीन चार दिनो से ना तो वह दिखाई पडा, और ना ही उसकी आवाज सुनाई पडी। मन मे आशका मिश्रित जिज्ञासा रहने लगी।

क्या वह कही दूर के रिश्ते म चला गया ? या बीमार है ; या फिर···! नही· ·नही· । ऐसा नही हो सकता। फिर इतना बडा गाँव भी तो नही जो मुझे पता नही पडता। उसका न मिलना मुझे कुछ अपने आप बेचैन सा करने लगा। उसका अभाव खलता सा महसूस होने लगा। मन बार-बार उससे मिलने और सारी हकीकत जान लेने को व्यग्र हो उठा। पर मेरा मिथ्या बढप्पन का भ्रम मुझे रोके दे रहा था। सोचता, लोग क्या सोचेंगे उधर जाने पर ? सोचा, किसी से पूछ लूगा। तो फिर वही शका लोग······? आदि !

दिन बीतते गये। समय के अन्तराल से यादो का प्रभाव क्षीण होता गया। पर प्रात की मगल वेला मे उसका स्वराभाव अब भी खटकता है। कैसा मीठा स्वर था।

आज रविवार है, सोचा जगल मे चलकर खेत वगैरह ही देख लिये जावें। यू सहज ही छुट्टी का दिन बोर किये बिना निकल जायेगा। "गृहस्थ" के बिगडे हुये आर्थिक बजट को सतुलित करता हुआ, खयाली पुलाव पकाता, अभ्यस्त पदो से खेत की ओर चला जा रहा था। और यह क्रम तब टूटा जब यही परि-चित स्वर और भजन "प्रभूजी म्हारा बन्द छुडाज्यो सा" सुनाई पडा। स्वर मे अब भी वही एक मादकता, माधुर्य था। कितना धनी है स्वर का ? यह निर्धन मन असीम सुख से भर गया।

सामने हरिया था। वही नीली कमीज पहने हल की मूठ साधे तन्मय हो खेत जोत रहा था। मुझे याद आया पहली बार इस कमीज के पहनने पर उसने बताया था, उसका बहनोई कही रलवे म सर्विस करता है और यह उसी ने दी थी। मैं उसे अचानक देखकर एक बारगी आश्चर्यचकित रह गया। अरे यह यहाँ, गाव मे कब आया!! यह तो मगू सेठ का खेत है!!! उसी के बैल भी और न जाने क्या-क्या प्रश्न, शकाएँ, प्रत्युत्तर भी।

इधर-उधर आसपास कोई नही। जी म आया आज सब कुछ पूछ लू जान लू इतने दिनो से कहाँ था, क्यो नही आया मदिर।

रास्ता उसी खेत की मेंढ से गुजरता है, या यू ही कहूँ कि उस खेत की मेढ ही वहाँ रास्ता (पगडण्डी) बनी हुई है। मैं बबूल की छाया मे रुककर सुस्ताने का उपक्रम करता हुआ उसकी उधर आने की बाट जोहने लगा। अब वह पलटकर हल चलाता हुआ उधर ही आने लगा।

दूर से देखते ही बोला "मास्टर जी ढोक—आज तो खेत देखबा जा रह्या हो काई।"

मैंने उसके अभिवादन का प्रत्युत्तर देते हुए कहा—' हाँ भाई! सोचा, पडे पडे क्या करूगा? खेत ही देख आऊँ।" आगे कहा—"तुम कहो क्या हाल चाल है। आजकल मदिर नही आते?"

यह सुनकर उसने सदा की भाति वही पुराना प्रत्युत्तर दोहरा दिया—"सब ठीक है साब। तुम मिलाऊँ बड़ा आदमीन की कृपा है। दिनन कै धक्का लग रह्या है।" लेकिन आज उसकी वाणी म वह उल्लास, वह प्रसन्नता नही थी। वह जीवन से निराश थका ऊबा-सा दिखाई पड रहा था।

उसने मुझे रुकता हुआ देख कर बैलो को रोक दिया। बबूल की छाया मे बैठकर, अपनी बाँस की डण्डी से टूटी जूतियो से मिट्टी निकालने लगा। क्वार के महीने की प्रखर धूप मे गहरी छाया भली लग रही थी। सिर से बधा जीर्ण शीर्ण रुमाल हटाकर दोनो हाथो से खुजलाया और मुँह पर आये पसीने पोछें और कपडे म बधी तम्बाकू आकडे की (अर्कपात) बनी सुल्फी मे जमाकर बडे सतोष के साथ पीने लगा। चूकि वह जानता था कि मैं इस व्यसन से दूर हूँ। अत उसने इस बारे म मुझ से कुछ नही कहा।

बैलो ने मूत्र विसर्जन किया और खडे-खडे जुगाली करते हुए आराम करने लगे। पेड पर बैठी कमेडी का घटर घू का स्वर नीरवता मे बडा भला लग रहा था।

तम्बाकू के लम्बे कश के कारण उठी खास वह खो, खों·· खे · खे खस् ···खस करता हुआ धुआ छोडता हुआ बोला—"आज दीतवार है काई।"

"हाँ—" मैंने सक्षप मे कहा। वह फिर बोला—

"तभी खेत देखवा जार्या हो।"

"हा सोचा घर पर पडे-पडे क्या करेंगे। खेत वगैरह ही देख आऊँ।" मैंने कहा।

वह बात बढाते हुए बोला—"आज तेरस है या चौदस।"

पर मैंने इस सम्बन्ध मे अनभिज्ञता प्रकट की। और इस ऊबा देने वाले वार्तालाप को बदलते हुए बोला—"तू आजकल मदिर-वदिर मे नही आता है क्या झाडने भी नही जाता है ?।" मैंने इस बहाने हकीकत को जानने की जिज्ञासा प्रकट की।

वह दीर्घ नि श्वास छोडते हुए बोला—"कहाँ आता हूँ साब। कैसे आऊँ, पराधीन हूँ। दूसरे के आधीन हूँ। आपतो जाणो ही हो, "पराधीन सुपने सुख नाहि।" टूटी फूटी भाषा मे अपना सम्पूर्ण जीवन का अनुभूत अनुभव बताते हुए कहा।

मैंने तत्काल पूर्ण जानकारी पाकर कहा—"छोड दे नौकरी कोई जबर-दस्ती थोडे ही है। इच्छा हो तो रहो, नही तो नही।"

"और हाँ! तुम्हे मंगू क्या देता है ?" मैंने पूछा। जिज्ञासा भरी दृष्टि से उसके चेहरे की ओर देखने लगा। मैं सब कुछ जान लेना चाहता था।

वह एक दर्द की पीडा से आहत की भाँति बोला—"तनखा तो कांई साब समय पर अपणो काम चल जावै अर पाँच आदमीन मे इज्जत रह जावे वो काई कम है ?" और फिर सम्पूर्ण जानकारी देतें हुए उसने बताया।

उसने बताया एक वर्ष पूर्व उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था। घर मे धन का अभाव पूर्व में लिया कर्ज नही चुका। उसने अपना एक गाँव पहले ही गिरवी रख छोडा था। वह न तो अपने पिता की अस्थियो को ठडापानी (गगाजी) पहुचा सका और ना ही मृत्यु भोज कर सका। जाति बिरादरी वाले ताने मारते; भाई-बन्धु सभी फब्तियाँ कसते, रास्ते, पनघट पर औरतें उसकी पत्नी को बातों बातो मे व्यग करती चुटकियाँ ले ले हँसती।

इस सबकी असह्यता पराकाष्ठा तक पहुँच गई जब वह अपनी जाति वालो के यहाँ एक मृत्यु भोज मे गया हुआ था। पाति मे जीमने बैठा तो उसे दो दो पत्तल पुरसी, एक लौटानी चाही तो उसने व्यग कसते हुए कहा, एक तुम्हारे पिताजी की है। वह अभी तक मृत्यु लोक मे भूखा ही भटक रहा है। इस तीखे कटाक्ष से मैं तिलमिला उठा। उसके तन बदन मे आग सी लग गई। खून की सी घूट पीकर रह गया और बिना कुछ कहे सुने, खाये पीए आ गया। उसे याद है लोगों ने पीछे क्या-क्या कटाक्ष किए थे। "अब तो बिरादरी को जिमाकर ही जीमेगा! अरे इसी पूर्णमासी का नुक्ता है!"

वह वहीं से निश्चय करके आया कि जैसे भी बनेगा इस भार को

हटायेगा और अपनी बिरादरी मे स्थान बनाकर रहेगा। मूछें नीचे किए नही रहेगा !

वह गांव भर म इस खर्चे को पूर्ण करा देने का पैसे वालो के यहां मिन्नतें करता घूमा। पर उसकी ईमानदारी पर किसी ने विश्वास नही किया। या फिर सभी की नजरो मे उसके शोषण की भूख ललचा रही थी। सभी का एक ही उत्तर होता—यह कर्जा किस प्रकार और कहा से चुका पायेगा ?

और अत मे मगू सेठ के यहाँ उसको तीन वर्ष के लिए उसके कुटुम्बी भाइयो और बिरादरी वालो ने बदी बना दिया। बदले मे दो मन गेहूँ, मन भर गुड, एक पीपा घी और साग भाजी मसाले पत्तल, आदि साथ मे दो सौ रुपये *अलग से बडी छाक की व्यवस्था के लिए। बडी छाक का मतलब भोज की* आखिरी रश्म जिसमे सूअर का मांस एव शराब सभी पिलानी पडती है। नुक्ते की सफलता उसी पर निर्भर होती है। सभी कुछ सामान जाति वालो ने ले लिया।

और बदले मे टिकट लगे कागज पर लिखा-पढी करके अगूठा लगवाकर मगू सेठ को कागज सम्भला दिया। उस लेख स मुकरना बिरादरी और पचो के समक्ष झूठा हाना है। लेख के मुताबिक उसे तीन वर्ष तक मगू के यहा कार्य करना होगा। बदले म मगू उसे प्रात कलेवा तथा एक वक्त का भोजन एव उतरे हुए (पहने हुए) कपडे देगा।

बीच मे ही उसने प्रसन्नता के साथ बताया कि उसके बाप का नुक्ता अच्छी तरह सफल हुआ। बिरादरी वालो ने उसकी खूब सराहना की। रात्रि मे गैस के प्रकाश मे पाती बना-बनाकर लोग पुऐ-साग खुश हो होकर तारीफ करते खा रहे थे। कई तो यहा तक कह गए कि पुओ का रग-रूप उसके बाप की तरह सुहाना 'भूरा भक्क" (उज्ज्वल) बना है। ये प्रशसा भरे शब्द उसके हृदय को बाग-बाग कर रहे थे। उसके पैर खुशी से जमीन पर नही टिक रहे थे। यही उसके जीवन की सबसे बडी साध थी जा पूरी हो गई। उसे अब कोई चिन्ता नही थी।

मैंने उसे समझाने की दृष्टि से कहा कि "इस प्रकार तो तुम्हारा शोषण हो रहा है। तुम्हे प्रतिदिन एक रुपया भी नही मिलता। यह तो सरासर अन्याय है।"

तो वह हताश स्वर मे बुजुर्गाना अन्दाज मे बोला—"साहब भड पै ऊन कुण छोडै है। *म्हानें तो सभी खावणो चावै है।* मैं तो या बात मे ही खुश हू कि म्हारा बाप को पाछो सुधर गयो। या बात कम कोनी।"

यह सुनकर मैं सन्न रह गया। जुबान पर ताला-सा पड गया। आगे क्या कहता। ठीक ही तो है। इनका खून सभी को अच्छा लगता है। सब चूसना चाहते हैं। एक बार जी म आया कि कह दू सायकारा घर आकर छ सौ

रुपये ले जाना और उस मगू के मुह पर फेंककर मुक्त हो जाना। पर मन के अवचेतन मे बैठे उस लोभ ने ग्रस्त कर लिया जिसके चत्र मे यह शोषण कार्य पनप रहा है। मन चिहुक उठा —पागल हो गया है क्या ? कहा से देगा यह इतनी रकम, और यह तो ससार है, सभी का ठेका ले रखा है क्या ? किस-किसकी इमदाद करेगा। इसी समय कही-सुनी नानक की पक्तिया मुझे वरबस याद हो आईं, "नानक दुखिया सब ससार।"

और मैं अवाक् बिना कुछ कहे उठकर चलने को हुआ। परन्तु चेहरे पर झेंप इस कदर छा गई कि क्या कहकर उठूँ कुछ नही सूझा। अन्त मे उसने ही कहा "अच्छा साब चलू, बहुत देर हो गई आपको चलू।" और वह हल की मूठ थामे खेत जोतने लगा।

लेखक-परिचय

श्रीमती लीला शर्मा, ग्रामोत्थान विद्यापीठ प्राथमिक विद्यालय, सगरिया।
सांवर दइया, जेल रोड, बीकानेर।
अरनी रॉबर्ट्स, रा० उ० मा० वि० रामसर, अजमेर।
जनकराज पारीक, ज्ञानज्योति उ० मा० विद्या०, श्री करणपुर।
सावित्री परमार, श्री महावीर हा० से० स्कूल, सी स्कीम, जयपुर।
अब्दुल मलिक खान, प्रेस रोड, सिंधी कॉलोनी, भवानी मंडी, झालावाड़।
चुन्नीलाल भट्ट रा० मा० वि० भीलूड़ा, डूंगरपुर।
भगवतीलाल व्यास, व्याख्याता, लोकमान्य तिलक टी० टी० कॉलेज, डबोक।
दिनेश विजयवर्गीय, भैंरूगेट, बालचन्द पाड़ा, बूंदी।
सत्यपालसिंह, राजकीय उच्च मा० विद्यालय, मेड़ता सिटी, नागौर।
कमर मेवाड़ी, चाँदपोल, कांकरोली।
उषा सामरा, जीवन निवास, कमला कोलोनी, बीकानेर।
निशान्त, द्वारा हरिकृष्ण सूरजभान बसल, पीलीबंगा, श्री गंगानगर।
मुरलीधर शर्मा विमल, रा० उ० मा० विद्यालय, मेड़ता शहर, नागौर।
भगवतीप्रसाद गौतम, रा० उ० मा० विद्यालय, भवानी मण्डी, झालावाड़।
चैनराम शर्मा, उ० प्रा० विद्यालय, मावली, उदयपुर।
भगवतीलाल शर्मा, उ० प्रा० विद्यालय, हिंगोरिया, वाया कपासन, चित्तौड़गढ़।
कजोड़ीमल सैनी, रा० उ० मा० विद्यालय, फागी, जयपुर।
आनन्द कुरेशी, सैफियाह उ० प्रा० विद्यालय, डूंगरपुर।
प्रेम शेखावत पंछी, नागलकोजू, वाया इटावा भोपजी, जयपुर।
माधव नागदा, रा० उ० मा० विद्यालय, चावण्ड, उदयपुर।
सुरेन्द्र अंचल, रा० उ० मा० विद्यालय, भीम, उदयपुर।
चमेली मिश्र, रा० बा० मा० विद्यालय, सादड़ी (पाली)

रूपनारायण काबरा, रा० उ० मा० विद्यालय, जोबनेर, जयपुर।
अज़ीज़ आज़ाद, मोहल्ला चूनगरान, बीकानेर।
मीठालाल खत्री, रा० प्रा० विद्यालय, सांडवाव, जालोर।
श्याम मिश्र, सुजानगढ़, ।
मगरचन्द्र दवे, रा० मा० विद्यालय, हरजी, जालौर।
गुलाम मोहम्मद 'खुर्शीद', रा० प्रा० वि० सख्या ६, नागौर।
नमोनाथ अवस्थी, खण्डेलवाल वैश्य प्रा० वि० हीदा की मोरी, रामगज, जयपुर।
रमेशचन्द्र शर्मा, रा० उ० प्रा० वि० खोह, वाया रोनीजाथान, अलवर।

शिक्षक दिवस प्रकाशन

सम्पूर्ण सूची

1967

1 प्रस्तुति (कविता), 2. प्रस्थिति (कहानी), 3. परिक्षेप (विविधा), 4, गालिक ए गोहर (उर्दू) 5 दार की दावत (उर्दू)

196९

6 कैसे भूलूं (संस्मरण) 7. सन्निवेश (विविधा), 8. दामाने बागवां (उर्दू)

1969

9 प्रस्तुति 2 (कविता), 10 बिम्ब-बिम्ब चांदनी (गीत) *11 प्रस्थिति 2 (कहानी), 12 अमर चूनड़ी (राजस्थानी कहानी)* 13 यदि गांधी शिक्षक होते (निबन्ध), 14 गांधी-दर्शन और शिक्षा (शिक्षा-दर्शन) 15 सन्निवेश—दो (विविधा)

1970

16 मुस्ता गांव (गीत), 17 खिड़की (कहानी), 18 कैसे भूलूं—दो (संस्मरण), 19. सन्निवेश—तीन (विविधा)

1971

20 प्रस्तुति-3 (कविता), 21 प्रस्थिति 3 (कहानी), 22 सन्निवेश-4 (विविधा)

1972

23 प्रस्तुति 4 (कविता) 24 प्रस्थिति 4 (कहानी), 25 सन्निवेश 5 (विविधा) 26 माळा (राजस्थानी विविधा)

1973

27 धूप के पखेरू (कविता), 28 खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी), 29 रेजगारी का रोजगार (एकांकी), 30 अस्तित्व की खोज (विविधा), 31 जूना बेली · नुवां बेली (राजस्थानी विविधा)

1974

32 रोशनी बाँट दो (कविता) स० रामदेव आचार्य, 33 अपने आस पास (कहानी) स० मणि मधुकर 34 रङ्ग-रङ्ग बहुरङ्ग (एकाकी) स० डॉ० राजानन्द 35 आंधी अर आस्था व भगवान महावीर, (दो राजस्थानी उपन्यास) स० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', 36 बारखडी (राजस्थानी विविधा) स० वेद व्यास

1975

37 अपने से बाहर अपने मे (कविता) स० मगल सक्सेना, 38 एक और अन्तरिक्ष (कहानी) स० डॉ० नवलकिशोर, 39 समाळ (राज० कहानी) स० विजयदान देथा, 40 स्वग-भ्रष्ट (उपन्यास) ले० भगवती प्रसाद व्यास, स० डॉ० रामदरश मिश्र, 41 विविधा स० डॉ० राजेन्द्र शर्मा

1976

42 इस बार (कविता) स० नन्द चतुर्वेदी 43 सकल्प स्वरों के (कविता) स० हरीश भादानी 44 बरगद की छाया (कहानी) स० डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय 45 चेहरों के बीच (कहानी व नाटक) स० योगेन्द्र किसलय 46 माध्यम (विविधा) स० विश्वनाथ सचदेव

1977

47 सृजन के आयाम (निबन्ध) स० डा० देवीप्रसाद गुप्त 48 क्यों (कहानी व लघु उपन्यास) स० श्रवणकुमार 49 चेते रा चितराम (राजस्थानी विविधा) स० डा० नारायण सिंह भाटी, 50 समय के सदभ (कविता) स० जुगमन्दिर तायल, 51 रङ्ग वितान (नाटक) स० सुधा राजहस

1978

52 अधेरे के नाम सधि पत्र नहीं (कहानी सकलन) स० हिमाशु जोशी 53 लखाण (राजस्थानी विविधा) स० रावत सारस्वत 54 रचेगा सगीत (कविता सकलन) नन्दकिशोर आचार्य 55 द गाँव (उपन्यास) ले० मुबारक खान आजाद स० डा० आदर्श सक्सना 56 अभिव्यक्ति की तलाश (निबन्ध) स० डा० रामगोपाल गोयल।

1979

57 एक कदम आगे (कहानी सकलन) स० ममता कालिया, 58 लगभग जीवन (कविता सकलन) स० नीलाधर जगूड़ी 59 जीवन यात्रा का कोलाज/न० ? (हिन्दी विविधा) स० डा० जगदीश जोशी 60 कलम री कोरणी (राजस्थानी विविधा) स० अन्नाराम सुदामा, 61 यह किताब बच्चों की (बाल साहित्य) स० डॉ० हरिकृष्ण देवसरे।

ममता कालिया

जन्म—वृन्दावन, उत्तर प्रदेश।
शिक्षा—बम्बई, पूना, इन्दौर, दिल्ली।
काम—दौलतराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, एस एन डी टी महिला विश्वविद्यालय, बम्बई, महिला सेवा सदन डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद।

रचनाएं

कहानी संग्रह— छुटकारा
सीट नम्बर छह
एक अदद औरत।

उपन्यास—बेघर
नरक-दर-नरक

कविता-संग्रह—A Tripute to Papa & other poems
Poems' 78

बाल उपन्यास—ऐसा था बजरंगी
शाबाश धुन्नू
नन्हे-मुन्ने दो सपने

सम्पादन
गली-कूचे—रवीन्द्र कालिया
वर्ष—अमरकान्त
परिवार